# नीम के आँसू

(क्रांतिकारी उपन्यास)

चन्द्र प्रकाश जायसवाल

# आमुख

'नीम के आँसू उपन्यास में इलाहाबाद के बुद्धिजीवी, विद्वान, विशेषज्ञ, विश्लेषक, व्याख्याता, प्रोफेसर, प्रवक्ता, पत्रकार, वकील, डाक्टर, मास्टर, इन्जीनियर, राजनेता, मंत्री से लेकर मोटी अक्ल के संत्री, पहलवान, खोमचेवाले, रिक्शेवाले, ठेलेवाले, मजदूर-किसान, गुण्डे-बदमाश, रंगबाज-जुन्नीबाज चाकूबाज, अडीबाज, साधारणजन इसके खट्टे-मीठे-कडुए-कसैले कलेवर हैं जिससे इलाहाबाद की पहचान साफ नज़र आती है। ये सभी इस नगर की धड़कन हैं जिससे इलाहाबाद का दिल धक-धक करता है। यह नगर अपनी कुछ खास विशेषताओ-विशेषणों के कारण और नगरों-महानगरों से एकदम अलग-थलग असल अलख जगाने वाला है। यह सही है कि इसकी चाल-ढाल धीमी, ना के बराबर है जिससे यह नया-नवल तो हो नहीं पाता किन्तु पुरानेपन के चुगंल में बंद रहने के कारण पता नहीं क्यों मर-मिट भी नहीं पाता। यह महानगरों की रेलमपेल तूफानी जिन्दगी को न तो झेल पाता है और ना ही इतिहास के कब्र में जाने को ही तैयार है। बस उखड़ी-उजड़ी साँसों के झूले में झूल रहा है। इलाहाबाद की ज़िन्दगी बडी निराली-निष्ठुर है जो अपने चारों ओर इसे लपेटे है। इसकी चाल निराली है, ढाल निराली है। तभी तो बहुतों को निराला बना सका है। इसके पास अपनी तरकीब है जो बड़े तरतीब से अपनी तबीयत से राजनीति को साहित्य और साहित्य को राजनीति, खेल को राजनीति और राजनीति को खेल बनाने का फन जानता है। इसी से तो यह अन्य नगरों से बेहद निराला-निहाला है। कुछ ऐसी विशेषताएं भी इसमें हैं जिस पर इलाहाबाद का एकाधिकार है। उस पर इसे नाज तो है किन्तु लाज जरा भी नहीं। वस्तुतः उसी के दम पर ही तो इसकी पहचान कायम है। धार्मिक, शैक्षणिक, राजनीतिक कानूनी-कल्प के रूप में इलाहाबाद का वर्चस्व सर्वोपरि है। पुण्य कमाने, अमरत्व पाने में, शिक्षा में अद्वितीय स्थान पाने, कानूनी दांव-पेंच में बाजी मारने, राजनीतिक उखाड़-पछाड़ में बाजी मारने मे इसकी माया अपरम्पार है जिसे कोई इससे छीन ही नहीं सकता पुण्य कमाने के लिए आने वालों को तो मोक्ष मिलता ही है पढ़ाई लिखाई करने वाले

भारतीय प्रशासनिक सेवा या राज्य स्तरीय सेवाओं में स्थान प्राप्त कर प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त, सुदृढ़-सुघढ़ बनाते हैं। देश तथा प्रदेश को बेहतर प्रशासन देने मे जी-जान खपा देते हैं तो राजनीतिक दंगल में राजनीतिज्ञ विपक्षियों को चारो खाने चित्त कर प्रदेश को कौन कहे देश को भी उँगली पर नचाने का सामर्थ्य रखते हैं। इसके जोड़ का कोई नगर देश भर मे नही मिल सकता। तभी तो यह सभी की दिमागी चूलें हिलाकर उन जोड़ों पर अपना आधिपत्य रखता है।

इसके बाद भी यह नगर जगा हुआ, दौड़ता-भागता तो कहीं से नही लगता। सोया-खोया, नींद में डूबा ठमकता-ठसकता चलता सा नज़र आता है। कहने को ठगा सा ठहरा हुआ भी कहा जा सकता है। पर इस परिवर्तनशील ससार में जड़ तो कहीं से लग ही नहीं सकता। कालदेव के सामने यह मनमानी कहां चल सकती है। वे तो सभी को अपनी चक्की में पीस रहे हैं। कैसे कोई इस पिसाई से बच सकता है। कहते हैं इस नगर के चौक क्षेत्र में सात नीम के पेड थे जिन पर अंग्रेजों ने सन् 1857 में स्वतंत्रता के आठ सौ से अधिक दीवानो को फांसी पर इसलिए लटका दिया था क्योंकि उन्होंने गुलामी का जोरदार विरोध किया था। आज भी मात्र एक पेड़ बचा है जो उनकी गौरव गाथा का यशगान कर रहा है। एक जमाने में इसने स्वतंत्रता के दीवानों की दीवानगी देखी थी तो आज लुटेरों-लंपटों, देश को गर्त में ले जाने वाले नेताओं, भ्रष्टाचारियों की करतूतें और खुली लूट, न्यायालयों में न्याय का दम घुटता देख रहा है तो विद्यालयो, विश्वविद्यालयों में शिक्षा का नंगा नाच देख रहा है। ऐसी स्थिति में नीम के आँसू बहे बिना कैसे रह सकते हैं। सारे स्वप्न चकनाचूर हो रहे हैं। सब कुछ लुट रहा है। लोग लाचार हैं, दीन-हीन हैं। उनके भाग्य में आँसू बहाना बदा है। लोग आठ-आठ आँसू रो रहे हैं फिर नीम का रोना उसका आँसू बहाना स्वाभाविक और सार्थक है। यही इस उपन्यास की अवधारणा है।

**- चन्द्र प्रकाश जायसवाल**

# दो शब्द

पुराणों तथा प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार प्रयाग प्राग से बना है जिसका अर्थ त्याग अथवा दान की भूमि है। युग-युगान्तरों से प्रयाग सचमुच त्याग और दान की भूमि के रूप में विख्यात रहा है। प्रमुख रूप से यहाँ लोग अन्तिम कामना देह त्याग के लिए तो अवश्य आते रहे हैं जबकि काम-क्रोध-लोभ-मोह, ईर्ष्या-द्वेष का इस भूमि में त्याग करना जीवन में एक उपलब्धि है। इसी प्रकार भौतिक या आध्यात्मिक दान देने के लिए भी लोग इस पुण्य भूमि में आते रहे है। तीर्थराज प्रयाग में जब देव-दानवों के समुद्र मंथन से प्राप्त अमृत कलश के लिए परस्पर द्वंद्व से छलकी अमृत की कुछ बूंदें प्रयाग में गिरी थीं तब से प्रयाग अमरत्व प्रदान करने वाला पुण्य क्षेत्र बन गया था। इसीलिए कुंभ राशि त्रिवेणी मे स्नान करने से अमृत्व प्राप्त करने की आस्था से लाखों लोग पुण्य कमाने आते हैं। धार्मिक दृष्टि से प्रयाग इसीलिए तीर्थों में तीर्थराज है। वस्तुतः प्रयाग धर्मक्षेत्र का श्रेष्ठक्षेत्र है। इसीलिए इसमें आध्यात्मिक सुख-शान्ति का सागर अनन्त काल से प्रवाहित रहा है।

किन्तु जबसे प्रयाग भौतिक रूप से करवट बदल कर इलाहाबाद हो गया तबसे इसका सम्पूर्ण कायाकल्प ही हो गया। इलाहाबाद ने कुछ विशिष्ट क्षेत्रो मे अपनी पहचान बनायी है जिसमें इसके समकक्ष देश क्या दुनिया का कोई नगर नही है। इसने शिक्षा, विद्वत्ता, राजनीति, साहित्य, संस्कृति तथा न्याय के क्षेत्र मे इस शहर ने ऐसा स्वरूप अपनाया है जिसका देश भर में कोई जवाब नही। अपनी अनूठी छवि-छाया बनायी है। राजनीति के क्षेत्र में इलाहाबाद की भूमि इतनी उर्वर है कि यहाँ जन्मजात साहित्यकार, राजनेता, विद्वान, विधि विशेषज्ञ जन्म लेते हैं और निःसन्देह लेते भी रहेंगे। इससे यह नगर देश का सबसे अनूठा, अनुपम, अद्वितीय है।

श्री चन्द्र प्रकाश जायसवाल ने 'नीम के आँसू' नामक उपन्यास में समूचे रूप में इलाहाबाद को ही प्रतिबिम्बित किया है। अपने शब्दों में इसकी एक-एक विशेषताओं को गागर में सागर भरने जैसा श्लाघनीय प्रयास किया है इस

उपन्यास के माध्यम से श्री जायसवाल इलाहाबाद का कोना-कोना झाँकते हैं। इसमें मैंने उन्हें सफल पाया है। इलाहाबाद में जन्मा व्यक्ति ही यह कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न कर सकता है। यह संतोष की बात है कि श्री जायसवाल इलाहाबाद की माटी में ही जन्में - पनपे और पल्लवित हुए हैं।

मैं इलाहाबाद पर लिखे उनके इस उपन्यास 'नीम के आँसू' के लिए अनेक बधाई, धन्यवाद, शुभकामनाएं देता हूं। सचमुच सात पेड़ों जिन पर स्वतन्त्रता सेनानियों को फाँसी दी गयी थी में से अब मात्र एक बचा नीम का पेड़ आज इलाहाबाद की वर्तमान स्थिति पर चिन्ता का प्रतीक बन गया है। श्री जायसवाल का इस ओर इंगित करना मुझे अच्छा लगा।

**केसरी नाथ त्रिपाठी**
अध्यक्ष
उत्तर प्रदेश विधानसभा
कार्यकारी अध्यक्ष
हिन्दी संस्थान, उत्तर प्रदेश

# एक

आज से कोई पाँच सौ वर्ष पूर्व संत शिरोमणि गुसांई तुलसी दास ने कहा था कि - 'को कहि सकाइ प्रयाग प्रभाऊ, कलुष पुंज कुंजर मृग राऊ'। पापो के पुंज रूपी हाथी को मारने के लिए सिंह रूपी प्रयाग राज का प्रभाव कौन कह सकता है। सचमुच किसी के महत्व का वर्णन करने के लिए जिह्वा के पास शब्द शक्ति के अलावा और कोई दूसरा साधन नहीं है। यदि शब्द शक्ति से ही सारा जगत व्यवहार चल जाता तो ईश्वर दूसरी शक्तियों का निर्माण ही न करते। शब्द शक्ति तो एक तरह से बाहरी शक्ति है जबकि दूसरी एक शक्ति है आन्तरिक। वह अनुभव-अनुभूति से सब कुछ जान जाती है। इसीलिए गूँगे की जिह्वा गुड़ के स्वाद बताने में तो असमर्थ है किन्तु अनुभव से सब समझती-बूझती है। प्रयाग राज अर्थात् इलाहाबाद का प्रभाव जितना शब्दों से जाना जा सकता है उससे कहीं ज्यादा अनुभव किया जा सकता है फिर भी जो शेष बचता है वह यहाँ की मिट्टी-पानी-हवा-जलवायु और लोगों के आचार-विचार खान-पान से जाना-समझा जा सकता है।

देश के मानचित्र में इलाहाबाद का प्रभाव है ही इतना अधिक जिसका वर्णन एक नहीं सैकड़ों या हजारों - लाखों जिह्वा करना चाहें तो भी कम है। यह गुण-गंध-गर्व-की खान है और लोग खनिज पदार्थ हैं। विशेषताओं की उर्वर भूमि है तभी तो लोग विशेषता सहित पैदा ही होते जाते हैं। जब तक परिवार नियोजन द्वारा उनकी पैदाइश पर कारगर रोक नहीं लगायी जाती तब तक उनका बढना तय है। भूतकाल में इलाहाबाद अर्थात् प्रयाग का प्रभाव उँगलियों में गिनने जैसे थे तो वर्तमान काल में ये सैकड़ों-हजारों हो गए हैं और कोई आश्चर्य नहीं जब भविष्य में इसका प्रभाव लाखों-करोड़ों या अनगिनत हो जायेंगे। बहुत दूर-दूर तक देख कर ही संत तुलसीदास को कहना पड़ा था कि 'को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ।' उनकी दृष्टि अच्छी खासी थी। वे किसी भी दृष्टि दोष - मायोपिया, ट्रिकोमा, ग्लोकोमा कैटरेट आदि से ग्रस्त नहीं थे क्योंकि उनके जमाने मे

मिलावट का चलन ही नहीं था। इसलिए दूर दृष्टि से जो कुछ देखा था सब ठीक था सही-साट था संत-मंहत होते ही ऐसे हैं जो बड़ी दूर तक देखते हैं। खड़े रहते है तो वर्तमान में किन्तु आगे-पीछे दांए-बांए सब देखते हैं। वर्तमान-भूत-भविष्य को देखने वाले त्रिकाल दर्शी कहलाते हैं। जन साधारण से अलग उनके पास दो तरह की आँखें होती हैं। चर्म चक्षु तथा ज्ञान चक्षु। चर्म चक्षु सीमा में बंधी होती है जबकि ज्ञान चक्षु सीमा हीन होती है। एक से जो कुछ सामने है, सीमित-सकुचित है उसे ही देखने की मजबूरी है जबकि दूसरे से आज को ही नहीं कल को तथा परसों और आगे-पीछे के बहुत से दिनों को कल्पना की नज़रों से देखने का अपना-अपना नज़रिया है। ऐसे नजरवालों की नज़र राई-नमक-मिर्च को आग मे डालकर इसलिए उतारी जाती है कि उनका कोई अपशकुन न हो। किसकी नजर कब अपशकुन कर जाय कोई नहीं जानता। कहते हैं कभी-कभी अपनी ही नजर अपने को लग जाती है। जिसके लिए झाड़-फूंक का कोई उपाय भी नजर नही आता।

इलाहाबाद के वर्तमान-भूत-भविष्य को देखने वाली नज़रें पहले भी थी आज भी हैं और कल भी रहेंगी। यह जरूर है कि उनकी संख्या ज़रा कम ही होती है जबकि आज को देखने-दिखाने वालों को खोजें एक मिलते हजार है। ज्यादातर ऐसे भी मिल जायेंगे जो वर्तमान को भी न तो जानना चाहते हैं और न जानते ही हैं। वे अपने ही द्वारा फैलाये गए अंधकार में टटोलते-टकराते टहलते रहते हैं। अब इन्हें क्या कहा जाय कि इलाहाबाद क्या है जो इतना नही जानता उससे कैसे उम्मीद की जाय कि वह जाने कि इलाहाबाद क्या था और आगे क्या होगा। वे तो भैंस के आगे बीन बाजे भैंस खड़ी पगुराय की स्थिति मे जीते हैं। इनका जीता रहना ही सब कुछ है और मरना कुछ भी नहीं। जी रहे है तो पेट के लिए और पेट भर जाय तो समझते हैं कि सारी दुनिया की दौलत उन्हे मिल गयी और जीते जी स्वर्ग पा गए। पर दूसरे दिन पेट खाली रहता है तब तो समझते हैं नरक भोग रहे हैं और दुनिया का सबसे मरा-खपा कोई है तो वे अकेले हैं। रोज-रोज जीने-मरने वालों की संख्या वर्तमान में कम नही है। इसीलिए वे वर्तमान में रहते हुए भी वर्तमान के हाशिए में पड़े हैं। अपने से परे गोरख धन्धे को जाने तो क्यों जानें।

यदि उन्हें पेट का भस्मक रोग न हो जिसमें जो कुछ डालो सब तुरत झवाझार हो जाता है फिर नए सिरे से उन्हें पेट के लिए सब कुछ करना पडता

है। उनका यह रोग यदि मिट जाय तब तो वे कुछ कल और परसों को जाने समझें। पर यह रोग ऐसा असाध्य है कि उन्हें छोड़ने का नाम ही नहीं लेता। न उन्हें ऐसा डाक्टर, वैद्य या हकीम आज तक मिला जो उनके इस रोग का इलाज कर सके और ना ही वे इसकी अभी तक कोई दवा ही खोज सके हैं क्योकि उनकी सारी डाक्टरी-वैद्यकी और हकीमी ऐसे नेताओं के हाथ में आ गयी है जो यह भी नहीं जानते कि पेट का भस्मक रोग होता क्या है। इसी से तो वे सिर्फ अपना घर, अपना पेट भर जानते हैं। इससे ज्यादा कुछ जान गए तो अपना मुहल्ला अपना नगर बस।

वे अपने मुहल्ले को इलाहाबाद समझते हैं और इलाहाबाद को सारी दुनिया समझते हैं। और बची दुनिया में धरा ही क्या है जो इलाहाबाद में नही है। दैहिक दैविक भौतिक ही नहीं आध्यात्मिक सुखों की यहाँ दिन-रात बरसात होती रहती है। इसमें भीगने का सहज सुख यहाँ मुफ्त में उपलब्ध है तो हलाकान हैरान परेशान होने के लिए क्यों दूसरी-तीसरी दुनिया में जाया जाय। दुनिया को इलाहाबाद समझने वाले और पेट के भस्मक रोग से पीड़ित लोग आज को बाखूबी जानते हैं। इसी से आज में जीना उनका सबसे बड़ा सुख है। इस सुख को वे न छोड़ना चाहते हैं और ना छुड़ाना। वे कल और परसों की चिंता में चिता पर लेटे मुर्दे की तरह नहीं जीना चाहते। इसलिए वे सिर्फ आज को जानते है। कल और परसों जब उनका नहीं तो उस पर माथा-पच्ची क्यों करें और गिचपिच गच्चा क्यों खायें। दिमागी तेल व्यर्थ में क्यों जलाएँ। जिनके पास फालतू तेल बचा हो वे चाहे जो इसका करें। घर में अंधेरा कर मसजिद में चाहें तो दिया जलाएँ या सूरज को दिया दिखाएँ। हर हाल में तेल तो जलता ही है। इलाहाबाद के कुछ लोग इसी काम में पिले हैं और टेम-बेटेम दण्ड पेल रहे हैं कि इलाहाबाद क्या नहीं था, क्या नहीं है और क्या नहीं होगा। एक तरह से ये देश को अपने चारों ओर खादी की धोती की तरह लपेटे ही नहीं वरन् देश के सिर पर टोपी जैसा विराजमान हैं।

ऐसे इलाहाबाद पर कुर्बान होने का मन किसका नहीं होगा। इतना ही नही इस धरती पर बारम्बार जन्म लेने के लिए किसका मन नहीं मचलेगा। मत्स्य पुराण के अनुसार प्रयाग अर्थात इलाहाबाद प्रजापति क्षेत्र है। इसका महत्त्व सौ वर्ष तक वर्णन करने पर भी शेष नहीं हो सकता। साठ हजार वीर पुरुष गंगा की तथा स्वय सूर्यदेव यमुना की रक्षा करते हैं यहाँ का महात्म्य ऐसा है कि केवल

नाम लेने भर से ही पाप का क्षय होता है। इस तीर्थ म देहावसान होने से दीप्त काचन सदृश और सूर्य तुल्य तेजस्क विमान पर चढ़कर स्वर्ग गति को प्राप्त होता है। वहाँ पहुँच कर जीव गन्धर्व और अप्सराओं के मध्य वास करता है। ऐसी सुखद स्थिति कितनी बाँकी छैल-छबीली है।

अब भला बताइये किसका मन यहाँ जन्म लेने के लिए और मरने के लिए लालायित नहीं होगा। जिन्दा रहे तो लौकिक सुख भोगा और मरे तो स्वर्ग सुख भोगा अर्थात् दोनों हाथ में लड्डू और ऐसा लड्डू इलाहाबाद का कि जिसका स्वाद ही बेजोड़ है। ऐसा स्वाद वाला तो कहीं ढूंढ़े से भी न मिलेगा। हाँ यह बात जरूर है कि इससे भी बढ़िया स्वाद वाला खोजें तो मिलना मुश्किल है। मन के लड्डू जरूर खाये जा सकते हैं और ख्याली पुलाव भी पकाए जा सकते हैं कि इलाहाबाद से अलग बेहतर नगर है, लोक है। पर सचाई तो यह है कि नगर नही होगे नरक होंगे, लोक नहीं होंगे तो परलोक होंगे। इसमें यदि शंका-कुशंका हो तो साक्षात् दर्शन कर लीजिए प्रति नरक का जहाँ लोग रोज बिलबिलाते मरते-खपते जीते हैं। तो तरसते - तड़पते जीते जी मरते रहते हैं। यह नरकवास नही तो क्या स्वर्ग वास कहा जायेगा। जहाँ सभी हर तरह के अभाव में पिस रहे है और भाव दिखाते हैं कि  यही तो जिंदगी है। जिन्दा रहने की पहली शर्त है। लोक ही जब परलोक बन जाए तो क्या कहने हैं। ऐसे लोक में जब लोग सशरीर वास करें तो स्वर्गवास का कोई सुख अछूता रह सकता है क्या। भले ही ऐसे नगर या लोक के लोग अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनकर कुछ भी कहें पर इलाहाबाद के वे पासंग भी नहीं ठहर सकते। इलाहाबाद अपने आप में एकदम निराला, निहाल तथा निःसंग है। इसके स्व रूप को पाने के लिए स्वरूप का समाहार चाहिए।

पता नहीं किसकी प्रेरणा से मैं ऐसी अशिष्टता करने का साहस कर रहा हूँ जो प्रयाग की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल तो है किन्तु इलाहाबाद के अनुकूल है और इसकी शान में कुछ न कहा जाय तो ठीक नहीं लगेगा जैसे बिना नमक की दाल। शिष्टाचार की रेखा ही नहीं बाउण्ड्री, दीवार, नदी-तालाब, पर्वत फलांग कर चर्म चक्षुओं से साफ-साफ देख रहा हूँ कि प्रयाग करवट बदलते हुए ऐसा इलाहाबाद हो गया है जिसने अपनी सारी पुरानी पहचान ही खो दी है। इलाहाबाद शब्द मे वह सौम्यता, सहजता, सरलता, सुगमता, सुरम्यता तथा सुगंध कहाँ है जो प्रयाग के परम पावन प्राचीन शब्द में रची बसी है। प्राचीन ग्रन्थों का सहारा छोड

दे तो कोई प्रमाण ही नही बचता जिसके आधार पर देश के तमाम नगरो और महानगरों की भीड़ से प्रयाग को अलग से जाना-पहचाना और परखा-निरखा जा सके। इलाहाबाद तो अब ऐसा नगर हो गया है जिसके लोग आपसी दुश्मनी मे खून के प्यासे, भूखे भेड़िए, झपट्टा मारने वाले गिद्ध, डसने वाले नाग, जकडने वाले अजगर, सब कुछ डकारने वाले राजनेता, इज्जत लूटने, लूट-खसोट करने वाले समाज सेवक, आपसी ईर्ष्या-द्वेष, अहंकार में जलने वाले साहित्यकार, एक दूसरे की टांग खींचने वाले पत्रकार, वकालत चलाने के लिए कमीशन देने वाले वकील, डाक्टर, विद्यार्थियों पर अपनी पकड़ बनाने के लिए उन्हें प्रलोभन से पुष्ट करने वाले मास्टर, प्रोफेसर-लेक्चरर, धर्म, कर्मकाण्ड द्वारा शोषण करने वाले पण्डे, पुजारी, पुरोहित सब मिल जायेंगे। बात-बात में लड़ने झगड़ने, किसी की मदद के लिए जान देने वाले भी मिल जायेंगे।

इलाहाबाद इक़बाल करता है कि वह बहुत पुराना है इसलिए पुरानेपन की केचुल उतारना ही नहीं चाहता। यहाँ के लोगों के पास फुर्सत ही फुर्सत है। जो तूफान आज महानगरों में व्याप्त है और लोगों को अपनी पकड़ में समेटता जा रहा है और लोग उसके प्रभाव में पागलों की तरह सरपट भागे जा रहे हैं वैसा कुछ भी इलाहाबाद में नहीं है। बड़े ही संतोषी वृत्ति के जीव हैं। जो मिल गया खा-पी-पहन लिया। ज्यादा पाने-खाने, जमा करने-जुटाने का रोग नहीं है। हा कमाई से ज्यादा खिलाई पर ज्यादा ध्यान रखते हैं। जब लोगों को फुर्सत है तो भभक्कर पुरी अमरूद, गंगा-जमुना के कछार का तरबूज-खरबूज, ककड़ी, डटकर खायेंगे-खिलायेंगे खुसरू बाग का कटहल, आम खायेंगे-खिलायेंगे, लाद देगें और लादने वाला साथ भी दे देंगे। खाते-पीते लोगों को अपच-अजीर्ण हो जाय तो उनकी बला से। नमकीन-मिठाई, खस्ता-समोसा-समोसी, मलाई, रबड़ी, लस्सी, कुल्फी, रेवड़ी पेठा, गजक के गुन-गायक ही नहीं जी खोलकर खिलाने-पिलाने में पीछे नहीं। दुकानदार भी चखाने में पीछे नहीं। एक-एक पीस चखाकर छकाते हैं। तरमाल खान-पान में सबसे ऊपर। दो बेर तीन बेर के चक्कर में नहीं पड़ते जितनी बेर मन करे मजे से मुँह चलाते रहें। छककर सूते-सरपोटें कोई बात नहीं। भला इलाहाबाद की नगरी में जनम किसलिए लिया। सारा जहाँ छोड़कर इस नगरी में वास क्यों किया। खायें-पियें नहीं तो क्या भूखा-सूखा रहकर जान दे दें। अतृप्त आत्मा क्या दर-दर भटकेगी नहीं? यमराज क्या उन्हें लाल खम्भे में बाँध कर सजा नहीं देगा? ठण्डी के मौसम में एक घर मे ही नहीं पूरे इलाहाबाद में आलू-मटर की घुघरी-पूड़ी पराठा नहीं बने तो बात ही

नही बनती। गर्मी में चीनी, मगरा शक्कर, फालसा का शर्बत नहीं बने तो गर्मी कैसी? दही की लस्सी, बेल का शर्बत, पना तो लू का कारगर उपाय है जिसे सब जानते-मानते हैं। जोरदार मसालेदार कटहल, परवल की सब्जी गरम मसाले की सुगंध तो खास मौसम में हर चौके से उठेगी ही। जैसे यहाँ की सारी महिलाएँ मिसकाउट करके ही सब्जी बनाती हैं। इतने से साफ जाहिर होता है कि इलाहाबादी भुक्खड़ तो किसी भी हालत में नहीं हैं।

आज दूसरों की जान लेने वाले यहाँ कई हैं। वे कानून से ऊपर हैं। इसलिए कुछ भी कर सकते हैं। अब तो नामी-गिरामी काले खाँ उर्फ कल्लू खाँ, गँजा, इलाहाबादी, इलाही आदि से पूछ कर इलाहाबाद की हवाएँ - फिजाए चलती ही नहीं चलाती भी हैं। यद्यपि वे जिला बदर हैं फिर भी जिले के बादशाह भी हैं। थाने के सिपाही से लेकर एस.पी. कलेक्टर तक उसे मान से कुर्सी देते हैं। ठण्डा-गरम पूछते हैं। तभी तो वे सारे शहर की शान हैं। और अपने को इलाहाबाद की नाक मानते हैं। खड़े-खड़े किसी दुकानदार को दुकान से, किरायेदार को मकान से बेदखल कौन कहे बदहाल भी कर सकते हैं। किसी दुकान-मकान में डाका, तोड़-फोड़ करा सकते हैं। दिन दहाड़े बैंक डकैती, लूट-पाट करा सकते हैं। किसी पर बम फिकवा, कट्टा चलवा सकते हैं। बन्दूक - पिस्तौल का निशाना लगवा सकते हैं। किसी को मौत का पैगाम दे सकते हैं और किसी की सात ताले में भी सुरक्षित जान आसानी से ले सकते हैं। बस अच्छी तरह से कोई इनकी टेंट गरम कर दे तो ये मन की बात को अंजाम देकर सारी मुराद पूरी करने में कोताही नहीं करेंगे। इलाहाबाद में आज कल इनकी डिमाण्ड और सप्लाई पिछले जमाने से ज्यादा है। थानेदार से लेकर नेता-मंत्री तक से उनके रिश्ते बादस्तूर जारी हैं जिसके दम-खम पर उनकी रिश्तेदारी हीरोइन, स्मैक, ब्राउन शुगर के तस्करों से बरकरार हैं। आमतौर से जब ऐसे तत्व जेल मे रहते हैं तब इलाहाबाद के सामाजिक तत्वों के लिए मौसम माफिक होता है वरना कब किसके सिर पर गाज गिरे, नंगी तलवार गिरे कोई नहीं जानता। लोग उन्हे प्यार से नहीं डर से गुरु, उस्ताद, बादशाह कहते हैं। आम आदमी उन्हे किंग-कोबरा के नाम से पुकारते हैं। इनके यहाँ जब कभी कथा कीर्तन जागरण गृह प्रवेश, उद्घाटन, बेटे का खतना, ईद-बकरीद, शादी-ब्याह के खास मौको पर सौ-पचास नहीं वरन् हजार भी नहीं सारे इलाहाबाद को न्यौता दिया जाता है

जिसमें विधायक सासद से लेकर मन्त्री मुख्यमन्त्री तक पधारते है. तब सिक्योरिटी के नाम पर कई रास्ते-रोड भी बन्द कर दिए जाते हैं। कई छोटे-बड़े होटल, बीयर बार ऐसे मौके के लिए बुक कर लिए जाते हैं इससे उनका इलाहाबाद मे स्टेटस-स्टेण्डर्ड पता चलता है ये अपने को इलाहाबाद का आक्सीजन मानते है।

इलाहाबाद कई मसालों से बना पान बीड़ा है जो कई तरह के काम का बीडा उठाता है। वह चाहे देश की आजादी की लड़ाई हो या आम जनता के लूट की लड़ाई हो।

इलाहाबाद में एक से एक देशभक्त, देशप्रेमी, बलिदानी हो गए हैं जो देश की आज़ादी के लिए क्या नहीं किया। अपना सब कुछ तन-मन-धन लुटा दिया। सब तरह की मुसीबतों - विपत्तियों को न्यौता देने में पीछे नहीं थे। भारत माता की बेड़ियों को तोड़ने में अपने को होम दिया। लाठी-डण्डा, गोली-बन्दूक, जेल, कैद, कारावास, कुर्की कानून कुछ भी उन्हें डिगा न सका। वे हंसते-हंसते इसके लिए जान भी देने को तैयार थे। इलाहाबाद की मिट्टी में कुछ तासीर ही ऐसी थी जो लोगों को आज़ादी के लिए मर मिटने को प्रेरित करती थी।

वर्तमान में गंगा-जमुना जैसी बड़ी नदियों के नगर में पानी और बिजली की बदहाली अब तो इलाहाबाद की साँसों में समा गयी है। नल से पानी कब मिलेगा, बिजली कब आयेगी-जायेगी राम जाने। इसकी कोई गारण्टी नही दे सकता। इस मामले में नगर निगम, विद्युत मण्डल, शासन प्रशासन में बैठे अधिकारी लोग उनके हाल-बेहाल पर छोड़कर लम्बी चुप्पी साध लेते हैं। लोग अपने दम-खम, पौरुष पराक्रम पर अपना-अपना इन्तजाम अपना हाथ जगन्नाथ की तर्ज पर खुद कर लें तो खुदा को भी कोई गिला नहीं। पानी की पाइप लाइन घर के सामने गड्ढे में उतारते चले जायें या ट्यूबवेल लगवा लें तो स्वयं सेवा ही कही जायेगी। बिजली बत्ती के लिए घरघराते जेनेरेटर, इमरजेंसी लाइट, इनवर्टर या और कोई इन्तज़ाम कर लिया जाय तो शुद्ध स्वार्थ नहीं तो और क्या कहा जायेगा। अब तो सभी को मन से या बेमन से इलाहाबाद के इस नायाब तोहफ़े को जेब में सुरक्षित रखना ही चाहिए। कौन बताये कि इलाहाबाद की विरासत में यह सब कुछ पहले कभी नहीं था। चुल्लू भर गंगा जल लेकर या गगाजली उठाकर कोई कसम खाकर कहे तो भी अब कोई विश्वास नहीं कर सकता।

ढेर सारी विरासतें तो आज भी इलाहाबाद में बरकरार है। रिक्शों वालों की भारी भीड़ से सड़कें सिकुड़ती-सहमती चली गयीं। इलाहाबाद के गाँवों के किसान-मजदूर अपना पैत्रिक पेशा खेती-किसानी छोड़कर रिक्शा चलाते हैं और अपना फेफड़ा जीर्ण-शीर्ण करते हैं। फुटपाथों पर खोमचे, चाट वाले, फल-फूल वाले परम्परा से क़ाबिज हैं। भला उन्हें कौन इस अधिकार से बेदखल कर सकता है। ये उसका सिर नहीं फोड़ देंगे। घर के चबूतरों पर सुबह-शाम लोगों का जमघट-जमाव न हो तो पता नहीं कैसा लगेगा। अजीब सी मुरदानगी छाई नज़र आयेगी। सुबह-सुबह की बैठकबाजी में यदि लोगों का कम जमावड़ा होता है तो कोई खास बात नहीं। पेपर पढ़ने-सुनने के बहाने लोग सुबह के दो-ढाई घण्टे एक साथ बैठ लें तो चबूतरा संस्कृति जीती जागती चलती-मचलती लगती है। इसी प्रकार रात की बैठकों में कितने ही घर-द्वार की उलझी समस्याएँ सुलझ जाती हैं। बेटी-बेटों के रिश्ते रचे जाते हैं तो कुछ के चकनाचूर भी मुहल्ले के बुज़ुर्गों के मार्फत होते हैं। खास कर गर्मियों में मुहल्ले-गलियों में दरवाजो के आमने-सामने परिवार जनों के लिए चार-छह चारपाइयों का झुण्ड तो रात बिताने के लिए पुरखों के जमाने से बिछता ही आया है फिर आगे कैसे नहीं बिछेगा। यह तो जन्मसिद्ध अधिकार से जुड़ा मसला है। सड़ी गर्मी के दिनों में बच्चों-बूढ़ो औरतों का मनमानी ढंग से बिना बिस्तर के टेढ़े-मेढ़े सोना उनका प्राकृतिक अधिकार है जिसे कोई तोड़ नहीं सकता। रिक्शे वालों की गरज हो तो वे उन्हे उठाकर अपना रास्ता साफ कर रिक्शा ले जायें। जिन्हें हया-शरम हो वे इससे खुद को बचा लें। वे लोग जिन्हें इहलोक-परलोक सुधारने की ललक हो उन्हे सुबह-सुबह गंगा जमुना स्नान जरूर करना पड़ता है। इससे उन्हें आत्मिक तुष्टि मिलती है। जो पैदल स्नान करने जाते हैं वे अधिक पुण्य कमाते हैं किन्तु जो रिक्शे आदि पर जाते हैं उन्हें अनुपात में कम पुण्य मिलता है। इस हिसाब-किताब में लोग गंगा स्नान करते-कराते हैं। इसी कमाई की दिशा में कुछ पहलवान छाप लोग स्वास्थ्य की भी कमाई करते हैं। कुछ तो अखाड़ों में जाकर जोर आज़माइश करके यह काम करते हैं। इससे वे पुरानी परम्परा को पीटते चले आ रहे हैं। पहलवानी दंगल से अखाड़े आज भी अपनी पुरानी मशाल में बचे-खुचे ऐसे युवकों का तेल डाल रहे हैं जिन्हें मार्फत पुराने शौक़ के पहलवानी की प्यास है या जिनके परिवार वाले अनियोजित परिवार के पाँच-छह भाइयों मे से किसी एक को इस शौक़ में झोंक देते हैं कि कम से कम घर का कोई एक तो

हट्टा-कट्टा पहलवान रहे जो किसी मार-पीट, लड़ाई-झगड़े के मोर्चे पर वक्त जरूरत काम आए। नहीं तो कोई भी उनके परिवार को कभी भी दबोच लेगा। ऐसे पहलवान आज भी गुरुओ से गुर सीखते-सीखते उखड़ते-उजड़ते अखाड़ो के खम्भों को अपने कंधे का सहारा देकर गिरने से बचा रहे हैं। अपने गुरु और 'जय बजरंग बली तोड़ दुश्मन की नली' के विश्वास के साथ अखाड़े की सँकरी गली में चले जा रहे हैं। वैसे तो अब अखाड़े वीरानी में बहे जा रहे हैं। जबसे युवकों में बाड़ी बिल्डिंग, मार्शल आर्ट, जूडो-कराटे की लत बढ़ी है तबसे तो अखाड़ों में धूल उड़ने लगी है। उनकी ओर जाने वाले कौन कहे देखने वालो मे भी जबरदस्त गिरावट आयी है। पुराने खेवे के कुछ लोग पहलवानी को सेहतमन्द मानकर कसरत-क़बायदें करके मन में खुश हो रहे हैं कि चलो वे अपना स्वास्थ्य इस बुढ़ौती मे भी बरकरार रख रहे हैं और इमारत को ढहने से बचा रहे हैं। वे 'दूध पियो कसरत करो नित्य जपो हरि नाम' के हिमायती है। उन्हे देख कर भले ही लोग कहें कि लगता है कि यह इमारत जरूर कभी बुलन्दियों को छू रही होगी। लेकिन जो अब अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग-सहज हैं वे सार्वजनिक रूप से खुसरूबाग के खुशनुमा माहौल में आज भी सुबह-सुबह खुल्लम खुल्ला सारी हया-शरम को पीकर लँगोटा कसे कब्र के इर्द-गिर्द ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ बुढ़ापे में कब्र पर पैर लटकाए कसरत करते स्वास्थ्य बनाते मिल जायेंगे। इन पहलवानों की जर्जर सेहत की गवाह शाहजादा खुसरू उनकी माँ तथा बहन की कब्र में कैद उनकी रूह उन्हें इस मुकाम पर पहुँचा कर अहसास कराती हैं कि वाह! इलाहाबाद की जिन्दगी का रोजनामचा क्या मजेदार-मसालेदार है। इन्हीं पहलवानों के लिए सुबह-सुबह भीगे मसालेदार अंकुराये चने बेचने वाले भी मिल जायेंगे जो दावा करते हैं कि उनके चने खाने वाले बुढापे मे भी घोड़े जैसा ताक़तवर बन सकते हैं। इसमें कोई शक़-सुबह नहीं है ये पुराने पहलवान एक तरह से जवानी की पहलवानी के दिए को जलाये रखने के लिए जिन्दगी का तेल बुढ़ापे में भी डालते जा रहे हैं और आज के जवानों की जवानी पर थूकते हैं कि ये लोग बिना कसरत-पहलवानी के जवानी नास कर रहे है। तन-मन दोनों से ये कुविचारों के कीचड़ में धंसे हैं इन्हें कोई निकाल नहीं सकता। दूषित आचार-विचार तथा बुरी संगत के कारण इन्होंने अपनी ज़िन्दगी बर्बादी के कगार पर ला छोड़ा है। बस वहाँ से गिरना बाकी है। कभी भी किसी भी क्षण इनका गिरना तय है। ये तो हमारी जवानी के दिनों की धूल भी नहीं हैं। हम जिस

गली-रोड से निकलते थे तो वह गुलाब की सुगंध सी महक उठती थी और चिड़ियों के गान सी चहक उठती थी। मचती जवानी देखने वालों की आँखो मे समा जाती थी पर इनकी जवानी बुझे दिए के बराबर है। यह बूढ़े पहलवानो का बेबाक़ नज़रिया है।

सचाई का सागर हिलोरे लेते हुए हरहराता-हुँकारता कहता है कि इलाहाबाद दो बड़ी नदियों गंगा-यमुना के बीच का भू-भाग है जो प्राकृतिक ही नहीं शारीरिक मानसिक शक्तियों से सम्पन्न है। प्रकृति ने यहाँ की भूमि को सदा बहार बनाया है जिसमें हर मौसम की साग सब्जियाँ, अन्न, अमरूद, तरबूज, खरबूज तो इतना होता है कि यहाँ के लोगों से खाते नहीं बनता। वे परहित के भाव से आस-पास के जिलों तथा दूर-सुदूर के जिलों को खिलाने में विश्वास करते हैं इसलिए इन्हें अब दूर-दूर तक धकेलने लगे हैं। आकार इनका गोल है इसलिए बस जरा इन्हें धकियाते हैं तो ये लुढ़कते-पुढ़कते पता नहीं कहाँ-कहाँ तक पहुँच जाते हैं। देखने-सुनने मे तो अब यह भी आता है कि ये वस्तुएँ प्रदेश ही नहीं देश की सीमा को भी लाँघ कर धड़ल्ले से विदेशों में भी जाने लगी हैं। आम-अमरूद, तरबूज खरबूज द्वारा तो इलाहाबाद की पहचान दूसरी जगह बनी-बढ़ी है। सिर्फ इनका नाम लेने भर से इलाहाबाद का इतिहास-भूगोल नज़रों के सामने नाचने लगता है। जिन्होंने अपना बचपन यहाँ कभी बिताया- बिसारा है वे तो इसकी याद में तड़प-तड़प उठते हैं। इन सबसे मौसम ने इसे इतना मालामाल किया है कि आस-पास के जिले इससे जलते ही नहीं यहाँ आकर इसे दलते भी हैं।

प्रकृति को क्या कहा जाय किसी को नवाज़ा नायाब तोहफ़ों से तो किसी को एकदम नकार दिया। यह तो उसकी लीला है जो कहीं धूप तो कहीं छाया है। स्वास्थ्य के मामले में इलाहाबाद की सम्पन्नता जग जाहिर है। गंगा-यमुना सरस्वती नदियों के संगम का लोग जल ही नहीं पीते वरन् स्वास्थ्य भी पीते और पाते हैं। इससे वे बलशाली और बुद्धिशाली दोनों होते हैं। बलशाली के रूप मे वे पहलवानी में कई मैदान मार कर डंका बजाते फिरते हैं। जरा मोटी अक्ल होने पर भी नाम-दाम मन माफिक कमा ही लेते हैं। इनकी बुनियाद मिट्टी से जुडी होती है इसलिए ये असली माटी के सपूत होते हैं। माटी ही इनका बिछावन होती है और माटी ही ओढ़ावन होती है। यहाँ के अधिकांश तबक़े को यहाँ की माटी

इतनी मोहक मसालेदार मन माफिक होती है कि जिदगी भर इसे छोडकर कही जा ही नहीं सकते और स्थिति-परिस्थिति वश कहीं चले भी गए तो इस मिट्टी के खूंटे से अपने को बाँध कर ही रखते हैं। और जब-तब गाय की तरह खूंटे के चक्कर पर चक्कर लगाते रहते हैं। कभी खेती-बारी के बहाने, कभी ब्याह-शादी, नाते-रिश्तेदारों के जीने-मरने, तेरही-बरसी, बच्चों के मुण्डन-छट्टी-बरही, कनछेदन-नकछेदन के बहाने लोट-पलोट लगाते ही रहते हैं।

यहाँ की मिट्टी में ऐसी सुगंध समायी है कि यहाँ के आदमी का तन-मन सदा महकता ही रहता है। परदेश जाने पर अपने साथ अपनी सुगंध भी समेटे जाते हैं। और अपने आस-पास का वातावरण सुगंध से भर देते हैं। यह सुगध कुछ लोगों को दुर्गंध लगे तो वे जाने उनका काम जाने। झगडू को तो भैंस के तबेले से ऐसी सुगंध आती है कि वह पहचान जाता है कि उसका तबेला आ गया। भले ही वह नीम नींद में ही चलता हो पर उसके पैर तो तबेले के सामने ही आकर ठिठकेंगे। पैर तो उसके जगे रहते हैं भले ही आँखें नींद में डूबी हो। वह कमाई करने गाँव से बम्बई भगा था। भागना था तो उसे घूरपुर गाँव से इलाहाबाद ही भागता जहाँ वह रिक्शा चलाकर या मजदूरी करके पेट पालता। झगडू ने ज्यादा सोचा विचारा भी नहीं और एक ऐसी छलांग लगायी कि वह अपने एक साथी के साथ सीधे बम्बई पहुँच गया। पूछते-पछोरते वह पहुँच गया अपने फुफा रामअधार के पास जो बांदरा में रेलवे चाल में रहते थे। वे वेस्टर्न रेलवे में केबिन मैन थे और उनकी ड्यूटी अंधेरी में थी। अपनी खोली में अपने छोटे भाई के साथ रहते थे। उनकी पत्नियाँ गाँव में रहती थीं और पारी-पारी से बम्बई आती-जाती थीं। बाकी समय में गाँव में रहते हुए खेती-किसानी घर-गृहस्थी ब्याह बरही, छट्टी, पास-पड़ोस की औरतें से कहा-सुनी, लड़ाई-झगडा का काम काज भी निपटाती रहतीं और ऊब मिटाने के लिए बम्बई चली जाती थी। इन दिनों रामअधार की घरवाली अर्थात् झगडू की बुआ बम्बई में ही थी। फुफा अभी अंगड़ाई लेकर उठे ही थे और तम्बाकू-चूना मिलाकर हथेली पर रखकर मसलते हुए फटफट की आवाज करते हुए छोटा सा गोल मुँह बनाकर चुग्गा जैसा चुटकी भर खैनी अपनी चोंच में डाले ही थे कि अकस्मात झगडू ने उनका पाँव छूते हुए पै लगी की। हूँ करते हुए वे एक कदम उछल गए जैसे उनके पैरों पर कोई कीड़ा-मकोड़ा या काक्रोच आ गिरा हो। मुँह में तम्बाकू का रस भरा था इसलिए उनसे ज्यादा बोलते नहीं बना था।

- फुफा जी पै लगी। हम तुमरे सार के बड़का बेटवा हई।

- उहूँ। टब आये बेटौना। उहाँ टब राजी-खुसी बा ना।

- हाँ फुफा उधर सब राजी-खुसी। एकदम चकाचक है।

पिच्च से लम्बी पीच मारते हुए जो करीब दो हाथ का इन्द्रधनुष बनाकर जमीन में मिट गयी।

- तुम्हार का नाम अहै बेटवा।

- झगड़ू.... झगड़ुआ।

- इ तुम्हरे साथ कौन अहै। क इ एहीं का रहवैया बा।

- हाँ इ परेल में रहत है औ कपड़ा मिल में काम करत है। इ हमरे गाँवै का रहवैया बा। एही का साथ तो हमहू बम्बई करै चला आवा।

- चलो सब ठीक बा। तू पचन बइठो। हम तनी झाड़ा-मैदान होई के आवत हौं। तब तक अपनी बुआ से बतिआव।

रामअधार सचमुच रात भर में जो कुछ पेट में जमा किये था उसे प्राकृतिक नियम के अनुसार बाहर फेंकना भी जरूरी था। खैनी की खुराक वहाँ पहुँच कर हलचल मचाना शुरू कर चुकी थी। भूकम्प - भूचाल आने लगा था और बीच-बीच में छोटे-बडे विस्फोट भी होने लगे। अब रामअधार केबिन मैन को स्पष्ट प्रतीत हो गया कि लाइन क्लीयर है। गाड़ी को खोटी नहीं करना चाहिए। सिंगल मिल चुका है। वे झटपट बाल्टीनुमा डिब्बा उठाए नल की ओर दौड़े और लोगो को बगल हटाकर डिब्बे में पानी भरने लगे। ठठोलबाज रमेसरा उन्हें कुछ टोकते हुए कहा -

- नारद जी राम राम। बड़ी जल्दी में हो। किस लोक में जा रहे हो।

- संडास लोक में जा रहा हूँ। टोको मत नहीं तो टोक लग जायेगी।

कहते-कहते एक जबर्दस्त विस्फोट किया जिसे नल पर सभी सुनने वाले ठठाके लगा कर हंसने लगे। रामअधार उर्फ नारद जी की पहचान पूरे चाल मे बडी निराली है। उन्हें बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी पहचानते हैं। पहचानने मे लोगों की नज़रें भले ही धोखा खा जाय पर क्या मजाल की नारद जी संसार को समझने में गच्चा खा जायं। संसार को तो उन्होंने सूखा की डिबिया में बन्द करके रखा है। जब डिबिया को खोलकर तम्बाकू और चूना मसलने लगते हैं तब

उनका ससार-चक्र चालू हो जाता है। चाल की एक-एक खोली उनकी जिह्वा पर बैठ जाती है और खोली के प्रत्येक प्राणी के लिए वे प्राणायाम करने लगते है। फिर सभी में ऐसा प्राण फूंक देते हैं कि लोग प्राणवान हो जाते हैं। उनकी बातो का ऐसा बवण्डर उठता है कि लोग अपने को उड़ता अनुभव करते हैं। फिर नारद जी उन्हें स्वर्ग लोक पाताल लोक की यात्रा कराकर मृत्यु लोक के रेलवे चाल मे छोड़कर अन्तर्धान हो जाते हैं।

लोग बेमतलब ही उन्हें नारद जी नहीं कहते। उनका बाह्य रूप घुटी चाँद, चोटी, यज्ञोपवीत माला और आधे टाँग की धोती कंधे पर गमछा नंगे पैर तो उन्हें नारद की आकृति बनाती है किन्तु रेलवे की नीली टोपी, हफ्तों की बढी बेतरतीब दाढ़ी हाथ में डण्डा उनमें ऐसा कुछ मौलिक परिवर्तन उत्पन्न करता है कि वे नारद से शारद लगते हैं। पर उनके आन्तरिक रूप की छवि तो ऐसी निराली है कि लगाई-बुझाई में ही जीने का उन्हें मजा है। इस काम में वे इसलिए समर्पित हैं क्योंकि वे बड़े भक्त जो ठहरे। उनकी भक्ति का एक रूप यह भी है। वे करमा गाँव की मिट्टी-पानी-हवा से बने-ठने हैं। वहाँ की खासियत उनमें गुड की मिठास की तरह समायी है। तभी तो वे सारी बात जरा घुमा कर कहते हैं जिससे वह बहुतों के पल्ले तो पड़ती ही नहीं। उसमें कबीर की उलटवाँसियों का रस होता है। वे लगाई-बुझाई या लगाई-लतरी को संदेश पहुँचाने का तरीका मानते हैं। यदि संदेश एक जगह से दूसरी जगह न पहुँचाया जाय तो संदेश का मतलब क्या। यह तो साक्षात् लोक कल्याण का कार्य है जिसे आज डाक तार विभाग, दूर संचार विभाग कर रहा है तो प्राचीन काल में सर्वव्यापी नारद जी करते थे। इसमें उन्हें बुराई कहीं नज़र नहीं आती। यदि कहीं खोट है तो देखने वाली नज़रों में वे कहते हैं - अच्छा बताओ संदेश एक जगह से दूसरी जगह न पहुँचाया जाय तो क्या दुनिया ठहरी-ठसकी नहीं लगेगी।

केबिन मैन रामअधार उर्फ नारद जी करमा की धरती से ऐसे बंधे हैं जैसे वे इसके धरती पुत्र हैं और धरती की हर पुकार-पुचकार पर दौड़े चले जाते हैं। कौन उनकी गांठ से टिकट का पैसा लगता है। भारतीय रेल तो उनकी है और वे भारतीय रेल के हैं। कथा-कीर्तन से लेकर लल्लू, लल्ली, मुन्ना-मुन्नी की पैदाइश, निकासन, छट्ठी-बधावा, मुण्डन, कनछेदन - नकछेदन, मकान की नीव भराई, छत पटान, पटवारी द्वारा खेत पैमाइश, चकबंदी, हदबंदी, तहसीली,

कलक्टरी में मुकदमा पेशी, बूढ़े-बुजुर्गों की बीमारी-हकारी, मौत, मिट्टी, दसवॉ, तेरही, सगाई, लगन, फलदान, ब्याह, गौना, बिदाई पर उनका करमा पहुँचना उतना ही जरूरी है जितना नौकरी पर जाना। इसीलिए उनका एक पैर करमा मे तो दूसरा पैर बम्बई में रहता है जैसे वे नारद की भूमिका बिना रुके निभा रहे हैं। उनके इस आवा-जाही से तथा संदेशा पहुँचाही से लोग उन्हें नारद कहते है तो वे कोई गलती नहीं करते।

गलती तो वे लोग करते हैं या कर चुके हैं जो रामअधार उर्फ नारद जी के गुणों को न परख पाये हैं और ना परखने की क्षमता रखते हैं। बाह्य गुण देखकर लोग समझते हैं कि वे बहुत बड़े भक्त हैं। भक्त हों भी क्यों न प्रयाग राज के पुण्य तट से कोई पन्द्रह-बीस कोस दूर ग्राम करमा जिला इलाहाबाद मे बसतें हैं। भक्ति तो उन्हें भावार्थ में मिल गयी कि जगत को जानो फिर वैसा व्यवहार करो। वे अच्छी तरह से जानते हैं कि जगत बिना धर्म-कर्म के नही चलता और धन इसे चिकना बनाकर चलने काबिल बनाता है। अतः चिकनाई के बिना दूसरा मार्ग नहीं। इसीलिए धन की चिकनाई पर उनका सदा ध्यान रहता है। जाग्रत अवस्था में रहते हुए अर्थात् सुप्तावस्था को छोड़कर शेष काल मे नारद जी वक ध्यान सा धन पर मन-मस्तिष्क केन्द्रित रखते हैं। इसी टोह मे समय को टटोलते रहते हैं कि कहाँ से कुछ रुपए-पैसे की आमद हो। वे इसके नगदी और गैर नगदी दोनों रूपों को जानते हैं और इसकी भाषा-शैली को बाखूबी जानते हैं। तभी तो उन्होंने अपने गाँव के छोरों जिसे बम्बइया भाषा मे पोट्टा कहते हैं स्टेशन मास्टर की चिरौरी-विनती, चाय-मस्का-मालिश करते हुए पश्चिम रेलवे की नौकरी में ठसवा चुके हैं। दूर-दराज वाले पोट्टों से तो कडकी के बहाने पूजा के फूल माँग लेते हैं और जो यहाँ नहीं दे पाते उनसे देस जाने पर घर वालों से उगाह लेते हैं किन्तु नाते-रिश्तेदारों पट्टीदारों से एवज में घी-गुड, गेहूँ, दाल, चालव की वसूली से नहीं चूकते। हर हाल में उन्हें अपनी भक्ति का प्रसाद तो चाहिए ही। प्रसाद लिए बिना वे पिण्ड भी नहीं छोड़ते। यह उनकी खास विशेषता है।

इधर उन्होंने अपने गुणों में और भी वृद्धि कर ली है। महानगर में रहते-रहते उनमें एक रोग यह भी संक्रमण कर गया कि पैसा गुरु और सब चेला। पैसे के गुरुत्वाकर्षण में वे इतना खिंच गए कि उन्हें दिन-रात पैसे के ही दिवास्वप्न आते हैं अब इसके लिए उन्होंने रामफल के तबेले से रोज सुबह दो कैन दूध

लाकर रेलवे चाल के आस-पास बेचकर पैसा खड़ा कर रहे हैं। हालाँकि इस काम मे उन्हें अड़चन भी खूब आती है। ड्यूटी कभी रात पाली की आती है तो कभी दिन पाली की, कभी दोपहर तो कभी शाम को खटते हैं। वे ऐसे लड़के की तलाश में रहते थे जो दूध पहुँचाने के काम को संभाल ले। आखिर इस काम से भी वे कुछ कमा ही लेते हैं। सेठ रामफल तबेला वाले की तरह भले ही मलाई न खा सकें किन्तु करोनी-खुरचन खाने का तो उनका हक बनता ही है।

सण्डास में बैठे-बैठे झगड़ुआ को लेकर नारद जी जोड़-घटाने में जुट गए। अपने साथ इसे रखना लाभकारक होगा या हानिकारक। प्रतिदिन इससे कितनी कमाई आयेगी और कितना खर्चा जायेगा। अगले साल तक तबेला चलाने काबिल रुपए क्या जुटा नहीं सकेंगे। दो कैन के बजाय चार कैन दूध सुबह और चार कैन दूध शाम को सफर जाय तो दो-चार भैसों का तबेला पक्का है फिर गाडी पटरी पर आ जाय तो लोकल ट्रेन की तरह सटा-सट भागेगी। यह सोचते-सोचते नारद जी के हाजत की ताकत कमजोर पड़ गयी और वे ध्यान मग्न उसी दिशा में डूब गए। दूसरे व्यक्ति ने जब तक सण्डास का दरवाजा नहीं पीटा तब तक उनका ध्यान तबेला के चारों ओर घूम रहा था। पुनः अपने में लौटते हुए भरपूर ताकत लगाते हुए अन्दर से ही हाँक लगायी -

- कउन अहा हो। बहुत जल्दी में हो तो पटरी किनारे बइठ जा...। तू पचन तो आफत करथो।

- बइठे रहौ नारद जी। बइठे रहौ। गुन्ताड़ा बइठाय लेव। हिसाब-किताब करइ के ऐसे बढ़िया जगह ना मिली।

- तू पचन पता नै का का उड़ावत रहथो। जियब मुस्किल करे अहा।

- नारद जी रिसिआव जिन सबेरे-सबेरे। हरी के नाम लेव, हरी के।

इतने में उनका गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच चुका था। वे जल्दी-जल्दी शौच क्रिया करते हुए काछ खोंसते-खोंसते डिब्बा उठाए बाहर निकल पडे। जब तक वे समपतवा पर बरसते तब तक तो वह सिरे वाले सण्डास मे घुस गया था। सामने हरबचना के लौंडे को डिब्बा लिए खड़ा पाया तो उसी पर बरस पड़े और लगे खरी-खरी सुनाने। ऐसी हालत में उनका गुस्सा देखते बनता है। वे तमतमा कर कुछ भी बकने लगते हैं जिसका मूल भाव यही होता है कि सभी उनकी कमाई से जलते हैं। खुद तो कमाते नहीं और उनसे जलन करते है। यह भी कोई बात है। बम्बई के मजे लूटना चाहते हैं तो लूटें। फिर जलते क्यो

है। बम्बई के अक्खा सेठ पहले खूब खटे हैं। तब कहीं जाकर माता लक्ष्मी की कृपा पा सके हैं। तब क्या ऐसे ही एक दिन में सेठिया बन गए। हम भइयन की आदत बड़ी खराब है ससूरी। चार पइसा कमाइ लेते हैं तो आसमान में उड़ै लगत हैं। ज्यादा से ज्यादा यही करत हैं कि गाँव में खेती-बारी खरीद लेत हैं अउर पुराने मकान को तुड़ा-फुड़ा कर नवा कर लेते हैं। बस इसके बाद ठण्डे पड़ गए। इस भाव को अपनी दिमागी ताकत से उलचते-उलचते थक जाते तब चुप हो जाते। यह नारद जी का स्वभाव था।

है। बम्बई के अक्खा सेठ पहले खूब खटे हैं। तब कहीं जाकर माता लक्ष्मी की कृपा पा सके हैं। तब क्या ऐसे ही एक दिन में सेठिया बन गए। हम भइयन की आदत बड़ी खराब है ससुरी। चार पइसा कमाइ लेते हैं तो आसमान में उड़ै लगत हैं। ज्यादा से ज्यादा यही करत हैं कि गाँव में खेती-बारी खरीद लेत हैं अउर पुराने मकान को तुड़ा-फुड़ा कर नवा कर लेते हैं। बस इसके बाद ठण्डे पड़ गए। इस भाव को अपनी दिमागी ताकत से उलचते-उलचते थक जाते तब चुप हो जाते। यह नारद जी का स्वभाव था।

मुट्ठी भौतिकता तथा आध्यात्मकता का भी सटीक प्रतीक है। पांचों उंगलिया जब एकाकार होती हैं तो एकता का रहस्य समझाती हैं और शक्ति का परिचय देती हैं। भौतिक रूप में थप्पड़ का सही जवाब मुट्ठी है जो अच्छे-अच्छों को छठी का दूध याद दिला देती है। वे लोग अलग ही जाति के होते हैं जिनका मत है कि कोई एक थप्पड़ गाल पर जड़े तो दूसरा गाल भी उसके सम्मुख कर देना चाहिए। इस तरह के लोग बहुत धैर्यवान होते होंगे और उससे भी अधिक प्रचारक होते हैं कि थप्पड का जवाब ही नहीं देना जानते। इसके बदले मारने वाले के मन में ग्लानि उत्पन्न करना चाहते हैं कि हिंसा का जवाब हिंसा कदापि नहीं। लेकिन जब थप्पड़ का जवाब घूँसा-मुट्ठी से दिया जाता है तब पता चलता कि वास्तव में सेर से सवा सेर ही बडा होता है। यह तो मुट्ठी के भौतिक स्वरूप की बात रही।

अब मुट्ठी के आध्यात्मिक तत्व को देखें तो स्पष्ट पता चलता है कि पच तत्वों के मेल से ही शरीर निर्मित हुआ है। इसमें से किसी एक तत्व के अभाव से शरीर का अस्तित्व ही नहीं हो सकता। इस बात को सिद्ध करने के लिए विदुषी विद्योत्तमा और कालिदास के मौन संवाद भले ही प्रत्यक्ष अभिप्राय कुछ भी देते रहे हों पर परोक्ष भाव तो यही स्पष्ट किया कि पंच तत्वों के संघात से बने शरीर में एकनिष्ठ आत्मा वास करती है जो ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म और जीव जगत संबंध स्पष्ट करने के लिए मुट्ठी कितनी महत्वपूर्ण है। सांकेतिक शैली मे मुट्ठी की अभिव्यक्ति कितनी उच्चकोटि की है। इसे समझना आसान नहीं है। मैक्समूलर जैसा कोई विदेशी मुट्ठीगंज की व्याख्या करता तो इसे ब्रह्मावर्त से कम महत्व न देता। इस शब्द में ही सारे तत्वदर्शन खोज डालता। यह तो हमारी आलसी मानसिकता है कि हम स्वयं तो कुछ भी खोजबीन करते नहीं किन्तु जब कोई विदेशी हमें जता जाता है तब तो हम सब कुछ जानने समझने के योग्य हो जाते हैं। मुट्ठीगंज में भी हमें बड़े भारी-भरकम गम्भीर तत्त्व मिल सकते है। बशर्ते जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ का अनुसरण करें। एक बात और मन को बारम्बार कुरेदती है कि इस मुट्ठीगंज से लगे मुहल्लों के नाम भी थप्पड़गंज, घूंसागंज, मुक्कागंज, हाथगंज, पाँवगंज आदि होने चाहिए थे जिससे मुट्ठीगंज की सार्थकता-सामंजस्य चुस्त-दुरुस्त होता किन्तु ऐसा हुआ ही नहीं। मुट्ठीगंज के पूर्व में कीटगंज पश्चिम में कटघर, अहियापुर, उत्तर मे बहादुरगंज, हटिया और दक्षिण में गऊघाट, बलुआघाट बसे हैं। ये मुहल्ले बहुत कुछ सिकुड़ गए या मुट्ठीगंज ही अपनी सभ्यता संस्कृति समेत इनमें जा घुसा।

वही अतिक्रमण वाली रीति-नीति के तहत मुट्ठीगंज वाली व्यावसायिक वृत्ति के लोगों में घर कर गयी। मुट्ठीगंज की हवा-पानी-धूल-मिट्टी-धूल-धुआं से सराबोर हैं। इससे ये मुहल्ले अपने को बचा भी नहीं सकते। जिसकी मिट्टी-पानी-धूल-धुआं में सम्पन्नता समृद्धि व्यापार-व्यवसाय बसा हो उसे तो सिर माथे पर लोग लगाना चाहेंगे। यह तो इसके लिए चन्दन-वन्दन है।

मुट्ठीगंज इलाहाबाद का वह व्यस्ततम मुहल्ला है जिसे कभी भी चैन नही। दिन-रात लोगों की आवा-जाही, चलत-फिरत, उठ्ठक-बैठक चलती रहती है। सड़कें तो कभी सूनी होती ही नहीं। इन सड़कों पर जब रिक्शा, कार, ट्रक नही चलते थे तो इक्कों का राज्य था। ठेला-ठेलिया गड़गड़ाते-खड़खड़ाते चलते रहते थे। इनके चलने-फिरने से ही रास्ता रुक जाता था तब इक्केवाले ठेला-ठेलिया वालों की माँ-बहन तौलते थे तो कभी मुँह छूट गाली-गलौज करते थे। बेचारे देहाती मजूर उसे उसी तरह पी जाते थे। जैसे लोग पानी पीते हैं। पैदल चलने वाले आदमी-औरत-बच्चे बूढ़े-बूढ़िया रास्ता जाम करने के लिए उन्हें आँखें ततेरते और गालियों की बैछार किए बिना नहीं छोड़ते थे। कुछ ही ऐसे लोग होते थे जो अपनी भलमनसाहत का भोंपू बजाकर कहते - भइया तनी बगल होइ जा। रस्तवा तो दैइ देव। खुश होकर वे लोग या तो रास्ता दे देते या स्थिति-परिस्थिति भाँप कर कहते - अरे बुढऊ मरै खातिर एक्का के नीचे काहे आवत अहा। उ बगलिया से काहे नाही जात अहा। किसी डांगर-पातर बुढ़िया को घुड़क कर कहते - बुढ़िअऊ अबै जिन मरा। नाती-पोता के दुलहनिया देख लेव। काहे बरे घोड़ा के टाँग तरे जाति अहा। अबै तोर बहुत उमर बा। ठेलहा मजूर कहता - अरे बूढ़ा इधर न आयो। छल्ली से बोरा गिर जाई तो टें होई जाबू। पुलिस - दरोगा हमका धरिहैं। तुहका का तू तो दूसर दुनिया चली जाबू। सड़क के उ पट्टी काहे नहि जातिऊ। बूढ़ा-बूढ़ी बेचारे टिकुर टिकुर ताकते बगल चल देते। उन्हें न तो कुछ सुनाई देता न दिखाई यही तो मुट्ठीगंज की मिल्कीयत है।

# तीन

अहियापुर और दारागंज पुश्तैनी पण्डों की घनी बस्ती है जो अपने पैत्रिक पण्डागिरी के कार्य में उसी प्रकार लगे हैं जैसे बनिया का बेटा, सोनार का बेटा, बढई का बेटा, वकील का बेटा तथा डॉक्टर का बेटा आदि समर्पित भाव से अपने-अपने धन्धे-पानी, रोजी-रोटी, रोजगार-व्यवसाय में लग जाते हैं। इनके आवास किलानुमा, लम्बा चौड़ा, कई मंजिला गली-कूचे में कई मोड़ के बाद बेतरतीब कहीं चौड़ा तो कहीं सकरें रूप मे स्थित हैं। इनके आवास तक पहुँचने मे कभी दाएं कभी बाएं, कभी बाएं कभी दाएं मुड़ने की अच्छी खासी वरज़िश हो जाती है। आवास के कमरे, बरामदे, आंगन छत-छज्जे इतने विशाल होते है कि पचासों आदमी भी एक साथ आ जायँ तो इनके आवास में कोई कमी नही रहेगी। बाहर से आने-जाने वाले जजमानों के ठहरने, खाना बनाते, खाने-पीने, सोने, नहाने धोने के लिए हर प्रकार की सुविधाएं 'अतिथि देवा भव' के भाव से प्रदान करते हैं। वे भली-भाँति जानते हैं कि धार्मिक क्रिया-कर्म, पिण्ड दान, पितृ-विसर्जन, घण्ट क्रिया, कपाल-क्रिया आदि खट करम, खटराग के कर्ता-धर्ता वे ही हैं। उनके बिना यह कार्य सम्पन्न ही नहीं हो सकता। वे इस कार्य के पुरोहित हैं। अर्थात् यदि यह क्रिया-कर्म नहीं किए जाते तो जजमानों के पिता-पितरों की आत्मा भटकती रहेगी और उन्हें शान्ति नहीं मिल सकती। दूसरे शब्दो मे अतृप्त आत्मा को तृप्ति प्रदान करने का पण्डा जी के पास मंत्र होता है और उसे भटकने से बचाने का तंत्र भी होता है। तीर्थाटन, देव दर्शन से लेकर जजमानों के पितरों के लिए कर्म काण्ड, तर्पण आदि कराने की जिम्मेदारी पण्डा जी की होती है। वे जजमानों को वह चाहे पूरब से पश्चिम से उत्तर या दक्षिण से, दूर दराज से आया हो या निकटवर्ती, परिचित या अपरिचित, ज्ञात या अज्ञात कैसा भी हो सभी उनके धार्मिक साम्राज्य की प्रजा होती हैं जिनकी समूची देखभाल वे तथा उनका दलाल समुदाय बड़ी मुस्तैदी से करता है। अपनी बात

तथा व्यवहार से वे अच्छी से अच्छी छाप डालने का प्रयत्न करते हैं। यह बात अलग है कि अच्छी और बुरी की सर्वमान्य परिभाषा आज तक न तो बन पायी है और ना ही भविष्य में ऐसी परिभाषा बनने की आशा ही की जा सकती है।

पण्डा जी के धार्मिक साम्राज्य का जीवन्त दस्तावेज़ उनकी बही होती है जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी के खाते होते हैं। कौन-कौन पूर्वज कहाँ के निवासी कब आए थे इसका ऐसा ब्यौरा बही में मिलता है कि अविश्वास की जरा भी गुंजाइश नही है। आदमी तो बहका सकता है बरगला सकता है। किन्तु बोलती बहियाँ तो किसी को गुमराह नहीं कर सकतीं। उसकी प्रत्येक पंक्ति-शब्द चीख-चीखकर कहते हैं कि हमें पहचानों, हम तुम्हारे पुरखो-पूर्वजों के पण्डा जी के यहाँ आने के प्रमाण हैं। भारतीय होने के नाते कम से कम इस परम्परा का तो निर्वाह करो। और विश्वास करो कि तुम्हारे पूर्वजों को पण्डा जी स्वर्ग लोक में पहुँचा चुके है जो बचे हैं उन्हें भी स्वर्ग लोक पहुँचाने का बीड़ा उन्हीं के पास है। जिनकी आत्माएं अतृप्त हो इधर-उधर भटकते-भटकते चक्कर काट रही हों उन्हें भी तृप्त का तंत्र पण्डा जी बताते भर नहीं उन्हें ठिकाने भी लगाते हैं।

पंडितों की अभिजात पंक्ति में पण्डा जी भी आते हैं किन्तु ये कर्मकाण्डो से अपने को संलग्न कर लिया तो शुद्ध रूप से कर्मकाण्डी ब्राह्मण ही रह गए। ये तीर्थों में कर्मकाण्डों के अधिनायक हो गए। इनके बिना कोई भी कर्मकाण्ड सम्पन्न हो ही नहीं सकता। प्रायः इनके पास दो दृष्टियों से यजमान आते हैं। एक तो पापनाशिनी पुण्य दायिनी प्रयाग नगरी में त्रिवेणी स्नान-दर्शन के लिए जिसका माहात्म्य पुराणों में मिलता है। पर्वों पर स्नान करने से पुण्य लाभ होता है। बारह वर्षो में कुंभ छह वर्ष में अर्ध कुंभ और चौबीस वर्षों में महाकुंभ के पर्व पर स्नान हेतु दूर-दूर से यात्री आते हैं। स्नान कर पुण्य अर्जित करना एक बात है। इन पूर्वजों का तर्पण इस तीर्थ में करना दूसरी बात है। इन कार्यों हेतु जजमानों का आना-जाना होता रहता है। किन्तु पर्वों पर यात्रियों के आने-जाने की संख्या अधिक होती है।

पण्डों के प्रतिनिधि जिन्हें दलाल भी कह सकते हैं अपने पण्डा जी के लिए दिन-रात कार्य करते हैं। उनके निर्देशन पर वे नगर-नगर, गाँव-गाँव, प्रदेश-प्रदेश घूम-घूम कर जजमानों से सम्पर्क कर उन्हें भरोसा दिलाते हैं कि उनके पण्डा जी ही उनके पुरोहित हैं जिनका निशान झाड़ू है। या ऐसा ही कुछ और ये ही दलाल स्टेशन पर, चलती ट्रेन में, प्लेट फार्म पर, राह-डगर, घाट

सभी जगह यात्रियो की सूरत शक्ल देखकर, दो-चार बाते करके समझ लेते हैं कि उनके देह रूपी लिफाफे में किसका खत है और किसके नाम है। ये सारे दलाल गजब के मनोवैज्ञानिक होते हैं। वे मुखाकृति देखकर तुरंत ताड़ जाते है कि फलां जजमान किस भाषा बोली का है और कहाँ से उनका आगमन हो रहा है। जजमानों की परस्पर बातचीत से आशय निकाल लेते हैं कि इनसे कौन सी भाषा बोली जाय।

नन्दू पहलवान दृष्टि घुमाकर ऐसा फेंका कि वह यात्रियों के एक झुण्ड पर खच्च से गिरी। यात्री चौकन्ने होकर आपस में बतियाने लगे कि इस अनजान जगह में अपना कौन है। तभी नन्दू पहलवान अन्दाज़े बयां के अन्दाज़ में उस झुण्ड की ओर मुखातिब होकर एक नज़र अपनी बुर्राक धोती-कुर्ता की ओर डालते हुए मुँह में पान की गिलौरी को गाल के बाएँ ठिकाने पर टिकाते हुए कहा-

- आपण कोठून आलांत जिल्हा होणता व आपले नांव काय?

- आम्ही अहमद नगर आलो आहेत आमचा जिल्हा आहे अहमद नगर महाराष्ट्र।

- आपले नांव काय आपल्या वडिलांचे नांव काय?

- माझे नांव अनंत लक्ष्मण दांडेकर तसेच वडिलांचे नांव लक्ष्मण सदा शिव दांडेकर आहे।

- अरे वा म्हणजे आम्हीच आपले कुलगुरु हे पहा आपले आजोबा सदाशिव गोपाल राव दांडेकर। आमचे कडे आळे होते। आमचे चिन्ह केरसुणी। आम्ही केरसुणी वाळे पुरोहित म्हणून ओळखले जातो। आपळे पूर्वज क्रिया-कर्म, पिडदान वगैरे करण्यास आमचे कडे येन होते।

- आपण कोणाचे क्रिया-कर्म करण्या साठी आले आहेत।

- आई ये।

- यजमान आपण शहण्याची काहीं काळजी करु नका, आमचे घर आहे आपली सर्व व्यवस्था होईल। तरी सुद्धा जर आपण बाहेर खानावळीन जेवण घेणार असाल तर ती व्यवस्था सुद्धा होईल।

- आपल्याला जर पैसे कमी पडत असतिल तर सांगा संकोच करू नका त्याची सोय होईल।

आचमी दक्षिणा देण्या साठी आपले जवळ पैसे कमी पडत असतिलतर त्याची चिन्ता करू नका त्या निमित्याने आम्ही नगरला येरु व आपले घर पण पाहू।

इतना सुनकर मराठी समुदाय आत्मीयता और भक्ति भाव से सराबोर हो गया जैसे उनके सम्मुख भगवान प्रगट हो गए हों। वे अनुभव करने लगे जैसे उनका रिश्ता पूर्व जन्म का ही नहीं वरन् जन्म-जन्मातर का गुरु शिष्य के रूप मे है। भगवान दत्तात्रेय जो विष्णु के चौबीस अवतारों में एक माने जाते हैं और जिनके चौबीस गुरु थे उनमें से कोई एक गुरु के प्रतिनिधि के रूप में पुरोहित गुरु नन्दू पहलवान उनकी जीवन नैया को भव सागर से पार लगाने में समर्थ है। यद्यपि वे प्रयाग में इसी भक्ति भाव से अपने पूर्वजों तथा आई के पिण्ड दान के लिए आये थे। नन्दू पहलवान अपनी बातों की लकड़ी से उन्हें एक घेरे मे लेकर हाँकने लगे। उन आठ-दस लोगों को वे एक तांगे में ऐसा लादने लगे जैसे सब्जी मण्डी से थोक सब्जी खरीदकर दुकानदान उन्हें लाद-फाँद कर अपने ठिकाने ले जाते हैं। घोड़ा तो बार-बार बिदक रहा था उस भीड़ को देखकर किन्तु ताँगावाला तो सभी को एक ही खेप में नन्दू पहलवान के सुझाए ठिकाने पर पहुँचाने के लिए कमर कस चुका था। इस माल ढुलाई के असली मालिक तो नन्दू पहलवान हैं। अतः उसे तो उनके आदेश का ही पालन करना था। ऐसा न करके नन्दू पहलवान से कौन वैर मोल ले। आखिर ताँगे वाले को भी अपने बाल-बच्चों को पालना है। उसके परिवार में घोड़ा नामक एक जानवर भी तो है जिसके दम पर उसकी रोजी-रोटी चलती है। उसे तो हर हाल में दोनों समय चारा-भूसा खिलाना ही पड़ेगा। वह सबको लाद-फाँद कर घोड़े की पीठ पर सटाक से एक चाबुक मारते हुए टिक-टिक करने लगा।

इतने में पुन्ना पण्डा का पट्ठा दलाल मैकुआ साइकिल से उतर कर ताँगे के पहिए के सहारे टिकाते हुए सिर पर बँधे गमछे को खोलकर कमर में फेंटा बाँध कर घोडे की लगाम पकड़ गरजते हुए कहा -

- पहलवान ताँगा आगे नहीं बढ़ेगा। इ तो सरासर बेइमानी है कि तुम पुन्ना पण्डा के जजमान कउ रपट रहेउ हो।

- ओकर ऐसी-तैसी जो ससुर भेंड मराइ करै। क हमका जजमानन की कमी बा। जउन दोगलाई करी।

- नन्दू पहलवान सुनो मामला कुछ ऐसनन बा।

- जाव भाय जाव आपन काम देखौ। अलानहक हमार मूड जिन खराब करौ।

- नाही पहलवान हमार नजर चारौ तरफ रहत है। इ मामले में तो गड़बडी साफै लगत है। तू हमरे जजमान कौ धोखा दैके घसीटे जात अहा अउर हम कुछ न बोली। इ तो अच्छी अंधेरगर्दी हय पहलवान। हमार बही देख लेव ओहमे जरकौ अरक-फरक पड़ जाय तो तुमरे पिसाब से इ मूँछ मुड़ाय लेब। एसे जादा का कही।

- जादा टिल-टिल न करबे मैकुआ। हमका जानत हो की नाही। हमार नाउ का है इ भी जानत अहा की नही। अबहिन तुहार ढोंढ़ा पकड़ लेब तो कुछ कर न पउबो। छोड़ बे लगाम। सबेरे-सबेरे खोपड़ी गरम करथो। एकौ हाथ के तो नाही हो अउर बर्रात हो परसुराम जस।

- का कहे पहलवान। हम बर्रात हई अउर तू लक्षमन की नाई परवचन देत अहा। पहलवान हमरे मुँह जिन लगेउ। हम जितना सीध हइन उतनै टेढउ हई।

- देख बे मैकुआ रंगबाजी तो हमसे कर मत। नाही तो चीर के धर देब। सरऊ पेडकी जस तो बाटेउ अउर हाथी से टकराय चलेउ। चल बे फूट हियाँ से ...

नन्दू पहलवान गरमा गए थे। इस समय उनके शरीर का तापमान थर्मामीटर से नापा जाय तो वह एक सौ आठ डिगरी से ऊपर पहुँच चुका होगा और देह रूपी थर्मामीटर में खून पारा की तरह एकदम ऊपर चढ़ता ही जा रहा था। कोई आश्चर्य नहीं कि उनके ठस भेजे का खून अधिक गर्मी के कारण कब बाहर आ जाय किसी को भी अता-पता नहीं। इतना जरूर है कि पहले तो उन्हे गुस्सा आता ही नहीं और आता है तो परशुराम की तरह इक्कीस बार को कौन कहे बयालिस बार भी पृथ्वी से अपने शत्रुओं को मिटाने का संकल्प कर लेते हैं। वे कोई फरसा लिए नहीं घूमते-फिरते। उनके हाथ में तो बस एक डण्डा पण्डागिरी के प्रतीक स्वरूप रहता है। वैसे वह डण्डा मार-पीट की अपेक्षा कुत्तो को भगाने, उनकी राह में आए रिक्शे वालों को टरकाने के ही ज्यादा काम आता है। इससे भी अधिक जब वे कुर्ता-धोती, अंगौछा के साथ मोटा डण्डा लेकर पान चबाते चलते हैं तब जाकर उनके पण्डापन का गणवेश पूरा होता है। इस वेश-भूषा में वे बहुत दूर से ही लगते हैं कि वे जो कुछ कर रहे हैं उसमें लेश मात्र

भी उनका हित नहीं होता वरन् बच्चू पण्डा का ही हित समाहित होता है। यह बात अलग है कि बच्चू पण्डा इसके बदले में उन्हें अच्छी खासी रकम देते है जिससे उनका परिवार चरता-चलता है।

एक तरह से पण्डा और दलाल के मध्य अलिखित समझौता हो जाता है कि वह उनके लिए ज़िन्दगी भर काम करेगा। बाहर-भीतर सभी जगह उनके खर्चे पर जायेगा-आयेगा और जजमानों को उनके यहाँ लाता रहेगा। ब्रिटिश संविधान मे भी इतना पुख्ता अलिखित समझौता नहीं मिलेगा जितना नन्दू पहलवान और बच्चू पण्डा के बीच है। दोनों को यह भी याद नहीं कि ऐसे समझौते के लिए कभी कोई बैठक-बातचीत, बतकही भी हुई हो। बच्चू पण्डा को तो ऐसे दर्जनो लोगो की जरूरत रहती ही है जो उनके पण्डागिरी के सहायक हों। उन्होंने अपने बाप के जमाने में देखा था कि कम से कम पाँच-छह दर्जन दलाल तो काम पर लगे ही थे और उनके जमाने में इस काम में कुछ कमी भी आयी जिसका सीधा अर्थ वे यह लगाते हैं कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग धीरे-धीरे भरस्ट होते जा रहे है। क्रिस्तानी आचार व्यवहार, रहन-सहन अपनाने से उनमें अब पुराने कर्म काण्डो के प्रति उदासीनता आ रही है। पुरखों के उपकारों को भूलते जा रहे हैं। यह है तो नहीं ठीक लेकिन नकल ससुरी जो हमारे अकल में घुस गयी है उसका क्या करें। लोग पूर्वजों-पितरों का श्राद्ध-तर्पण-पिण्डदान सब भूलते जा रहे हैं सब मटियामेट हो रहा है। यह दुनिया कहाँ जाकर भरभण्ड होगी कुछ पता नही। दलाल बेचारे भी तो उन्हें काबू नहीं कर पाते। अब किसी को सनातन धर्म के कर्म काण्डों की पुड़िया तो पिलाई नहीं जा सकती। यह भाव तो मन में अन्दर से उपजना चाहिए। जो लोगों को लगे कि कर्म काण्ड, श्राद्ध पिण्डदान नहीं करेगे तो पितरों की आत्मा भटकती रहेगी। अब जो आत्मा ही नहीं मानते तो भटकना भी क्या जानें। सब भरभण्ड-भरस्ट होते जा रहे हैं। कैसा तो जमाना आ गया है। बनी-बनाई बँधी-बँधाई लीक मिटती-सिमटती जा रही है इधर पुश्तैनी पेशे मे टोटा-टकराव आ रहा है तो उधर भाई-बिरादरी के लोग गला काट होड़ा-होड़ी करते हैं और ऐसी धींगा-मस्ती मचा रहे हैं कि जीना मुश्किल कर रहे हैं। ऐसे मे क्या किया जाय और क्या ना किया जाय। इस सोच का केंचुआ बच्चू पण्डा तथा नन्दू पहलवान के दिमाग में बहुत दिनों से रेंगने लगा है जिससे इनकी खोपडिया खिचड़ी की तरह दिन-रात खदबदाती रहती है।

मैकुआ जब अलानहकै पैजामे से बाहर होने लगा तब तो पहलवान की मोटी कुड़मगज बुद्धि में यह बात आसानी से घुस गयी कि मैकुआ निपटना चाहता है तभी तो उसकी हिम्मत पड़ गयी घोड़े के लगाम पकड़ने की। नही तो वह नन्दू पहलवान के समाने हमेशा भीगी बिल्ली बना मिमियाता रहता था। ससुरा दिन दुपहरिहै में कुछ खाय - पी के तो नहीं आवा है। अस बात होय तो दो लप्पड़ या गरमा-गरम एकात बूंक में ठेकान पर आ जायगा। यही सोचते-सोचते नन्दू पहलवान ने मैकुआ की नटई उसी तरह दबोच लिया जैसे बन्द कमरे मे बिल्ली आदमी के कण्ठ पर झपट्टा मारती है। मैकुआ इसके लिए एकदम तैयार था कहाँ। उसकी आँखें जैसे बाहर निकलने को आयीं। पूरी ताकत से उसने नन्दू पहलवान को एक धक्का दिया। जिससे पहलवान थोड़ा छिटक गया। तब तक मैकुआ ने फुर्ती से अपनी जेब से छह इंची हलब्बी रामपुरी छुरा निकालकर उसके फल को हवा में खोलकर लहराते हुआ गरजा।

- पहलवान बहुत होइ गइ हमार तुम्हार दोस्ती। अब तनी दुसमनी का मजा चखो। तुमका बहुत सह लीन और सुन लीन। अब हद्द पार कर चुके तुम। जब तुम खून खराबै पर उतारू हो तो यही सही।

- अरे -- अरे तू इ का करत है बे। चाकू - छुराबाजी तो हमरे-तुमरे लाइन में आवत कहाँ है। बन्द कर इसे। सराफत से रहो। तुम्हार भला भईं।

- पहलवान सराफत बहुत देख लीन.....

कहते कहते मैकुआ नन्दू पहलवान के पेट में छुरा भोंक दिया। देखते-देखते पहलवान जमीन पर गिर पड़ा। उसके शरीर से खून का फौव्वारा फूट पडा। सड़क खून से रंग गयी तथा पहलवान के कपड़े खून से सन गए। दोपहरी की तेज धूप में एक ओर पहलवान के पेट में धँसा छुरा चमचम चमक रहा था तो दूसरी ओर उसकी मोटी सी आँत बाहर निकल आयी थी। पहलवान के मुख से एक चीख निकली और वह निढाल होकर सड़क पर पसर गया था। मैकुआ भावावेश में पगला गया था। वह समझ नहीं पा रहा था कि उसके हाथों यह क्या हो गया कैसे खून सवार हो गया। बदहवासी में वह झट से साइकिल पर सवार हो कहीं उड़ गया। इधर तांगे वाला तथा यात्रियों का बुरा हाल था। वे एकदम ठिठक गए थे। काटो तो खून नहीं। उन्हें लगा कि कैसी तो अनहोनी हो गयी। उनके सामने यह कैसा खून हो गया। अब क्या होगा। पुलिस-दरोगा तफ़तीश

तहकीकात, बयान-गवाही, कोर्ट-कचहरी थाना-कोतवाली सब एक साथ उनके सम्मुख घूमने लगा। कहाँ तो आए थे तीर्थ करने कहाँ यह लफड़ा हो गया। ताँगे वाला अलग सकपकाने लगा कि वह क्या करे। तड़पते हुए पहलवान को छोड़कर कैसे जाए। कहीं उस पर भी कोई जुर्म कायम न हो जाय। पुलिस तो पानी में डूबे को भी पकड़ लेती है। बेवजह हवालात में तो किसी को भी कभी भी बन्द कर सकती है। बाद में भले ही जमानत पर कोई छूट जाय। और कुछ न सही इस खून के मुकदमे में चश्मदीद गवाह तो पुलिस सभी को बना सकती है। मराठी यात्रियों में खलबली मच गयी। वे आपस में गिटपिट करने लगे।

जैसे तमाम पेशों के स्थापित मानदण्डों में आज गिरावट आयी है उसी प्रकार पण्डों के पेशे में भी जबर्दस्त झटकेदार गिरावट आयी है। मानदण्डो के मान तो कुछ लोगों के खाते में चला गया जो उसकी खतौनी में लगे हैं तो दण्ड उनके हाथ लगा जो इसे जहाँ-तहाँ अपने विरोधियों पर रंगदारी के लिए बरसाते हैं। गला काट प्रतियोगिता के जमाने में गला काटने, कत्ल करने से लेकर हाथ पैर तोड़ने, सिर फोड़ने की नौबत तो आती ही रहती है। ज्यादातर-जजमानों को लेकर ऐसी वारदातें इसलिए हो जाती हैं कि पण्डों के दलाल उन्हें बरगला कर दूसरे पण्डे के बाड़े में झोंक देते हैं। इससे असली का दान-दक्षिणा मारा जाता है तो नकली की चाँदी कटती है। जब नाई-धोबी-पण्डित की जजमानी परम्परा से चलती है तब इसमें सेंध मारी कौन करने देगा। यह भी तो पेश की रीति-रिवाज की बात है जिसे हर हालत में सभी को मानना ही चाहिए किन्तु गर्म खून के जोश में ऐसा होता कहाँ है। सारी परम्पराओं की धज्ज्यिाँ उड़ाने में सबसे आगे रहता है। सड़ी-गली, बुरी-बेकार परम्पराओं-प्रथाओं को तोड़े, चकनाचूर करे, आग लगाए तो ठीक भी है। उनके पीछे-पीछे जनता भी शामिल हो सकती है। दूसरे शब्दों में देर-सबेर जनता का दल भी शामिल हो ही जाता है। पर जब बँधी-बँधायी, बनी-बनायी, चली-चलायी रीति-रिवाजों पर किसी दुस्साहसी का गर्म खून उबल पड़ता है तो खून खराबे की नौबत आ ही जाती है। पण्डागिरी की अत्यन्त पुरानी प्रथा है कि हर पण्डा के पैत्रिक जजमान होते हैं और जजमान का पैत्रिक पण्डा होता है जो सारे कर्मकाण्डों को विधि-विधान से सम्पन्न कराता है। इसमें न तो कोई जजमान और ना ही पण्डा हेर-फेर, रद्दो-बदल करना चाहे तो प्रथायें और परम्परायें उन्हें अनुमति नहीं देतीं। यदि अलग से कोई धोखाधड़ी ठगी, झाँसेबाजी करता है तो परस्पर तत्कार-तकरार की नौबत आ ही जाती है।

बात-बतंगड़ से लेकर बात बढ़ते, बात बिगड़ते-बिगड़ते लट्ठ-फरसा उठ जाते है। जिससे खून-खच्चर, खून-खराबा होना कोई बड़ी बात नहीं है। इसके बाद पुलिस थाना, कोर्ट कचहरी जेल-हवालात का सिलसिला जारी हो जाता है। इस प्रकार एक बार सुदर्शन चक्र चलने पर वह वारा-न्यारा किए बिना रुकता ही नही। आज वही स्थिति सामने थी।

मैकुआ तथा नन्दू पहलवान के बीच छोटी-मोटी किच-किच, झिक-झिक तो कभी-कभार ही हो जाती थी जिसमें नन्दू पहलवान हमेशा भारी पड़ते थे। उनके ज़रा सी आँख ततेरने पर मैकुआ की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती थी। आवेश मे आकर वह भले ही थोड़ी सी ऊँची आवाज कर ले पर जैसे ही पहलवान- 'चुप बे। साले मुँह बन्द रख। नहीं तो मुँह में इ डण्डा घुसेड़ कर मुँह बन्द कर देब।' सुन कर उसकी मिट्टी पलीद हो जाती थी और वह एकदम ठिठक जाता था। पर आज पता नहीं कौन पीर-वली, जिन्न-भूत, प्रेत-पलीत उस पर सवार हो गया जो उसे मौत का हरकारा बना दिया। जो ताकत मैकुआ में कभी आ ही नही सकती थी वह पता नहीं कहाँ से उसमें आकर यह खून करा दिया। वह भौचक्का हो भकुआ बन गया था। ऐसी स्थिति में उसे एक ही बात सूझी। जान बचाने के लिए वह भाग खड़ा हुआ। इसके अलावा उसके पास और कोई चारा ही कहाँ था।

मैकुआ जाता भी तो कहाँ जाता। बेदम भागता हुआ वह अपने पुरोहित मालिक पुन्ना गुरु के बाड़ा में आ घुसा और जोर-जोर से चिल्लाकर घबराहट भरे लहजे में कहने लगा -

- गुरु .... गुरु.... गजब होइ गवा। जो नै होना था वह हमरे हाथ से होइ गवा। कहाँ हो। हमरे हाँथे नन्दू पहलवान का खून होइ गवा। सुनत हो की नाही।

(खूँटी वाली खड़ाऊँ पहने बनियाइन धोती पहने पुन्ना गुरु लापरवाही भरे लहजे में कहा)

- चल ठीकै भवा। तैने जो किया अच्छै किया। बहुत पुरानी दुस्मनी बच्चू महराज तोता-मैना की तरह पाले रहे। हमरे जजमानन के बहुतै भड़कावत भरमावत रहेन। जब कोई चारा नहीं बचा तो जो भा उ ठीक भा। हम बहुत दिनन से देखत चला आवत रहेन कि हमरे अउर उनके बीच कभऊं न कभऊं लट्ठ चले बिन न रही अउर कतल-खून भये मामला न निपटी। कब तलक ससुर इ अन्याय

देखत-सुनब रहब। निपटारा तो कबहू होइन के रहा। आजकल बच्चू गुरु की धोती आसमान में झुरात हय।

- गुरु उन पर गुस्सा तो दस साल से आप में भरा भा। अब इ बतावा कि जो हमसे नन्दू पहलवान का कतल होय गवा। ओका का होई। का हमका जेहल होई जाई अउर तू गुरु कुछ न करबौ।

- हम कहत तो हैं कि तोका कुच्छ न होय देब। आखिर हमरे पास भी तो कुच्छ ताकत है की नय। कइसे तोका जेहल होइ। क कनून सारा बच्चू गुरु की गाँठ में रहत है।

- नाही महराज तुमरे ही दम पर तो हम उछलत हैं। नाही तो हमारे टेट मे का बंधा है। कानी कौड़ी औ भूँजी भाँग भी तो नाही बा। हम तो तुम्हार मोहरा है। मोहर बनाय जहाँ चाहे लगाय देव अउर मोहरा बनाया थे जोका चाहे पीट देव। हम तो तुम्हार मुहर्रिर हैं जो काम चाहो वही करब। हम तो मुरीद है तुम्हार।

- अबे काहे बरे इतना गिड़गिड़ात है। कहय दीन ना....। जा तू मूत के सो जा...। हम सब समझ लेब। उ हल्के के दरोगा का हम खूब जानत हौं। तू इतना डेरात काहे है। पहिले तो तोका कुच्छ होई ना अउर अइसी-वइसी नौबत अउबै करी तो तोरे वजन के बराबर रुपइया-पइसा फूँक देब। सहर के बड़े-बडे वकील हमार जजमान अहैं की नाहीं। उ कउन दिन काम अइहैं....? सरउ मार डेरान जात अहा।

- नाही गुरु तुम्हार चेला होइके हम इतना डेराइत-ससाइत थोड़कौ अही। एकै बात का मुदा पछताव होइ रहा हय कि अलानहकै हमरे हाथ से नन्दू पहलवान का कतल होइ गवा। आदमी बेचारा इतना खराबौ नय रहा कि ओका हम दूसर दुनिया का रस्ता बताइत। कई बार तो उ हमार अदद-मदद करे रहा। पता नय कउन रौ में आई के हम उनकी इहलीला खतम कर दीन....।

- अबे जो कर दिया कर दिया। अब काहे बरे पछतावा की आगी में अपने को भूनत हो। कहि दीन ना हम सब आगे-पीछे देख लेब। तोर तो बाल भी टेढा न होई।

# चार

इलाहाबाद पवित्र गंगा-यमुना तथा अदृश्य सरस्वती नदियों के तट पर ऐसा बैठा है जैसे इसे खोना नहीं चाहता,यह अपनी जगह से ठस्स से मस्स होने वाला नहीं है। अनादि काल से बैठा है और अनन्त काल तक इन नदियो के पलग पर आराम से पसरा रहेगा। इतना जरूर है कि जैसे सोता हुआ व्यक्ति हाथ-पैर, गुदुर-मुटर करते कभी गठरी बनता हो या फैलाता-फिराता हो। वैसे ही ये नदियाँ इलाहाबाद के कुछ हिस्से को घटाती-बढ़ाती, बनाती-बिगाड़ती रहती हैं। इसे यों भी तीन नदियों का त्रिवेणी क्षेत्र कहा जाता है। इसका प्राचीन नाम प्रयाग है जो प्राग से बना है जिसका अर्थ त्याग अथवा दान की भूमि है तभी तो लोग त्याग और दान की परम्परा में अपना सब कुछ त्याग करने और दान देने आते हैं। वह चाहे अन्तिम इच्छा के रूप में शरीर त्याग या पण्डा जी से उधार लेकर दान करने की कामना बलवती होती है।

प्रयाग धार्मिक स्वरूप में बहुत प्राचीन काल से मोक्ष दाता तो माना ही जाता है। देवता और दानवों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था जिसमें चौदह रत्नो मे एक रत्न अमृत भी प्राप्त हुआ था। इसे सिर्फ देवताओं को देने तथा असुरो से छिपाने के लिए इन्द्रपुत्र जयन्त ने नन्दन कानन में रखा था किन्तु असुरों द्वारा अमृत का पता लगने पर जयन्त ने क्रमशः चार स्थानों - हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक में प्रतिष्ठित किया था। बारह दिन-रात तक यह संघर्ष चलता रहा। अंत में देवताओं और असुरों में संधि हो गयी। मोहिनी रूपी विष्णु ने असुरों को भी अमृत बाँटने का प्रस्ताव किया। यह योजना सफल नहीं हो सकी और देवता अमृत से वंचित रह गए। जिस-जिस स्थान पर अमृत कुंभ रखा गया था। वहाँ-वहाँ कलश उठाने से वह छलक गया। कहा जाता है कि वृहस्पति, सूर्य चन्द्र और शनि ने उस पवित्र कुंभ की रक्षा की थी। यह अमृत

गंगा, छिप्रा तथा गोदावरी में गिर कर स्नान करने वालों को अमरता देने लगा। जिससे प्रयाग हरिद्वार, उज्जैन तथा नासिक में लोगों को अमरता का टिकट मिलने लगा। यहाँ स्नान करने के पश्चात् लोग बेरोक-टोक स्वर्ग लोक जाने लगे। प्रयाग में मकर राशि में सूर्य ने प्रवेश किया था। बारह दिनों तक देव-दानव में संघर्ष चलता रहा। इसीलिए कुंभ पर्व बारह वर्षों के अन्तराल से निश्चित किया गया। देवताओं का एक दिन मानव के एक वर्ष के बराबर माना जाता है। इस पर्व की पवित्रता का वर्णन मानस में संत तुलसीदास ने भी इस प्रकार किया है। 'माघ मकरगत जब रबि होई, तीरथपतिहिं आव सब कोई'। ऐसे खुले निमंत्रण पर भला कौन प्रयाग नहीं आना चाहता। प्रयाग की महिमा ही बड़ी निराली है। इसी अवसर पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज मुनि को रामायण की कथा सुनाई थी। भला बताइये ऐसे पवित्र क्षेत्र में रहने वाले कितने पुण्यात्मा हैं जो पुण्य कमा-कमाकर अपने खाते में खतौनी करते रहते हैं। सचमुच यहाँ के लोग बड़े पुण्य पुरुषार्थी हैं।

इलाहाबाद को तीन नदियों का त्रिवेणी क्षेत्र कहा जाता है जिसका वर्णन पुराणों तथा वाल्मीकि रामायण में मिलता है। राजा भगीरथ के प्रयास-प्रताप, पराक्रम-पुण्य से गंगा ने भारत के बहुत बड़े भू-भाग को उपजाऊ हरा-भरा बनाया है। खेत-खलिहानों को धन-धान्य से भरपूर किया है। यह देश की सबसे बड़ी नदी है। इसके वरदान से लोग सुखमय जीवन यापन करते हैं। गंगा सबसे बड़े जलमार्ग वाली नदी है जिसकी गणना संसार के सबसे लम्बे जल मार्गों में की जाती है। इसका उद्गम हिमालय के हिमाच्छादित गंगोत्री गुफा के समीप एक हिम गुफा से है। यहाँ यह भगीरथ फिर आगे जाह्नवी बाद में अलखनन्दा से मिलने पर गंगा बनती है। प्रयाग में यह यमुना से मिलकर संगम का स्वरूप ग्रहण करती है। यह वही संगम या त्रिवेणी क्षेत्र है जहाँ गंगा-यमुना-सरस्वती नदियों का मिलन होता है। वास्तव में गंगा तो अनेक नदियों के मिलन का पर्याय है जिससे ऐसी पवित्रता निर्मित होती है कि स्नान मात्र से लोगों को अनेक पुण्य प्राप्त होता है और दुर्लभ मोक्ष भी मिलता है। इसी मोक्ष कामना से दुनिया भर में बसे हिन्दू इसे प्राप्त करने के लिए सदा ललचायी दृष्टि से देखते रहते हैं। यह भी घोर आश्चर्य किन्तु सत्य है कि संसार की सारी नदियों की तुलना में गंगा की पवित्रता अद्भुत अलौकिक अनुपम है। यमुना भी अत्यन्त पावन-पुनीत

गहन गम्भीर गहरी नदी है जो आठ सौ साठ मील लम्बी है, ये दोनों नदियाँ भौतिक भूख के साथ-साथ हमारी आध्यात्मिक पिपासा को भी शान्त करती हैं। गगा के संबंध में हमारी पुरातन मान्यता है कि यह सभी रोगों तथा पापों का क्षय करती है। इसमें एक बार के स्नान से जीवों के समस्त पाप मिट जाते हैं। जिनकी मृत्यु तथा दाह क्रिया इस नदी के तट पर होती है वे बेरोक-टोक स्वर्ग पहुँचते हैं इसमें कोई शंका नहीं। वे अनेक पापों के बाद भी उसी प्रकार स्वच्छ हो जाते हैं जैसे कोई साबुन लगाकर एकदम साफ-सुथरा झक्क हो जाता है। इस मान्यता को कोई जड़-मूल से हमारे मन से उखाड़ भी नहीं सकता।

सरस्वती एक पौराणक नदी है जिसका वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। यह अन्तवती तथा उदन्नवती के रूप में वर्णित है। इसके तट सदा जल से परिपूर्ण तथा प्रचुर अन्न उत्पादन में सम्पन्न है। कहा जाता है कि ऋग्वेद की रचना सरस्वती और उसकी सहायक नदी दृशद्वती नदी के क्षेत्र में हुई। ऋग्वेद काल मे सरस्वती नदी सिंधु नदी से भी विशाल थी। यह हिमालय से निकलकर उत्तरापथ मे हरियाणा, मारवाड़ और बहावलपुर होती हुई सीधे कच्छ की खाड़ी में समुद्र मे मिलती थी। इसके तट पर साम गायन हुए, यज्ञ-याग के अनुष्ठान हुए। इसके ही तट पर 1200 से अधिक बस्तियाँ और ऋषि आश्रम तथा अनेक नगर बसे थे जो हड़प्पा संस्कृति के अंग थे। ऐसा भी कथन है कि सरस्वती नदी पश्चिम गढ़वाल में हिमालय पर्वत के बन्दरपूंछ से निकलती थी और आदि बद्री, भवानीपुर तथा बालछापुर की पहाड़ी तराई से दक्षिण की ओर बहती हुई शतद्रु (सतलज) में मिलती थी। सरस्वती और दृशद्वती के बीच ही कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत का युद्ध हुआ था। इस प्रदेश को ब्रह्मावर्त भूमि मानते हैं। ऐसा भी मत है कि सरस्वती नदी पंजाब के सिरमूर राज्य के पर्वतीय भाग से निकलकर अम्बाला तथा कुरुक्षेत्र होती हुई कर्नाल जिला और पटियाला में प्रविष्ट होकर सिरसा जिले का दृशद्वती (कागार) नदी में मिल गयी। यह भी कहा जाता है कि प्रयाग के निकट आकर यह गंगा तथा यमुना में मिलकर त्रिवेणी बन गयी। तीनो नदियों की धाराओं का मिलना ही तो त्रिवेणी है। ऐसी धारणा है कि यह प्रयाग मे अब भी अन्तर्प्रवाही है जिसका वर्ण नाखूनी है। गुप्त होने पर भी सरस्वती को जन मानस त्रिवेणी के संगम के रूप में स्वीकार करता है। सरस्वती ब्रह्मा की मानस पुत्री हैं तथा विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं। वाणी, वाग्देवी, भारती, शारदा वागीश्वरी इसके पर्यायवाची नाम हैं।

बौद्धिक कार्य करने वाले समस्त जन सरस्वती के आराधक उपासक होते है। वे इस देवी की कृपा से ही अपने-अपने क्षेत्रों में कीर्ति ख्याति प्राप्त करते हैं। साहित्य जगत के साहित्यकार, संगीत जगत के संगीतकार, कला जगत के कलाकार, शिक्षा जगत के मास्टर, प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्री तथा कानून जगत के वकील-बैरिस्टर, जज, चिकित्सा जगत के डॉक्टर आदि सरस्वती के आराधक होते हैं। ये नवधा भक्ति भाव से इसकी उपासना-आराधना में तल्लीन रहते हैं। वैसे तो बौद्धिक कार्य करने वाले समस्त व्यक्तियों पर सरस्वती के वरदान का वर्षण होता है। किन्तु साहित्य-संगीत-कला से पोषित ललित कला के क्षेत्र में लगे समस्त समर्पितों पर तो वागीश्वरी की कृपा दृष्टि की वृष्टि निरन्तर होती रहती है जिससे उनका तन-मन अहर्निश-भीगता पसीजता पुलकित रहता है। इलाहाबाद तो कच्चे-पक्के, कनिष्ठ-वरिष्ठ साहित्यकारों का भण्डार-भाण्डा है। कच्ची उम्र से लेकर उम्र के लबालब पैमाना भरे लोग और पकी उम्र के कगार पर खड़े तक गली-टोले-मुहल्ले में साहित्य सेवा करते उसी प्रकार मिल जायेंगे जैसे यहाँ के पण्डे-पुरोहित-प्रयागवाल अपने जजमानों की सेवा में अपने को झोंक देते हैं। माल गोदाम की शक्ल में उनके अनेक मुहल्ले-टोले हैं। वे एक ही जात-बिरादरी, पेशे के रूप में मण्डी-मुहल्ला-गंज बाग-बगीचों में पेड़-पौधों की भाँति बसे हैं और लेखन की सुगंध दूर-दूर तक फैलाते रहते हैं। सुगंध सौंध फैलाने में वे भले ही मरते-मिटते खपते रहें। बाल-बच्चे खाने-पीने पहनने-ओढ़ने के लिए रोते कलपते कुढते हों। पत्नी मन मार कर गृहस्थी की गाड़ी अभावों में भी खींचती रहे पर क्या मजाल जो साहित्य सेवी के मुख-मण्डल पर चिंता की कोई रेखा दिखायी दे जाय। वे तो बीतरागी-वैरागी जैसा जीवन जीते हुए मर-मर कर जीने वाले बाल-बच्चों की ओर तो देखते नहीं पर अपनी साधना में सराबोर रहते हैं। यह जीव न्यूनतम आवश्यकताओं और अधिकतम साहित्य साधना के तालमेल में लीन रहता है। भले ही इसे कोई एकांगी - एकनिष्ठ कह ले किन्तु इनका सर्वांग तो योगी की भाँति साधनारत है। भला बताइये जिसे ब्रह्मानन्द सहोदर मिल गया हो तो वह अन्य संगी -साथी-सम्बन्धी-सरोदर की परवाह क्यों करे। वैसे भी यदि सेम्पल सर्वे किया जाय तो ये साहित्यकार यहाँ गली-कूचा, मुहल्ले तथा घर-द्वार सभी जगह जलकुंभी-चटक चान्दनी जैसे पनपे-फैले-फरफराते मिल जायेंगे। दूसरे शब्दो में इलाहाबाद में एक साहित्यकार को खोजें तो उसके इर्द-गिर्द कम से कम पाच

तो जरूर मिल जायेंगे। एक का पता पूछें तो वह पांच का ऐसा बतायेगा कि मर्जी-मन का साहित्यकार छाँट लो यहाँ तो ढेरी में मिलते हैं। हर क्लास-क्वालिटी कैटीगरी-कम्पनी के साहित्यकार मिल जायेंगे।

खेत खलिहानों में अनाज के उत्पादन की तरह साहित्यकार अपने आवास निवास में ध्यानस्थ हो साहित्य का उत्पादन करते हैं। वे साहित्य उगाते हैं, उठाते है, पालते-पोसते हैं। फसल बोते-काटते हैं। खाते-पीते, चर्वण-चाटन-उच्चाटन करते, बचाते-बखेरते, बरबराते-बर्राते, भण्डार भरते, भोगते रहते हैं। प्रकृति उन्हें भाव प्रवण बनाकर ऐसा चश्मा प्रदान करती है जिसे लगाकर उन्हें प्रकृति-जीव-जगत-ब्रह्म अनूठा ही दीखता है। वे 'चरन धरत चिता करत चितवत चारी ओर, सुबरन को खोजत फिरत कवि व्याभिचारी चोर' की भूमिका में जीवन-यापन करते हैं। ये विभिन्न हाव-भाव, वेश-भूषा, रहन-सहन, भाव-भंगिमा से ओत-प्रोत होते हैं तभी तो अन्य लोगों से अलग इनकी जान-पहचान होती है। दूर से ही इस जीव की चाल-ढाल, रंग-रूप, वेश भूषा रहन-सहन द्वारा बडी सरलता से पहचाना जा सकता है कि यह सृष्टि का निर्माता है। इस प्रकार यह ब्रह्मा की सृष्टि का ऐसा ब्रह्मा है जो प्रति सृष्टि का रचयिता है। इसकी रची हुई सृष्टि किसी से कम नहीं वरन् अधिक सुन्दर, सुखद, सौम्य है। इस सृष्टि मे धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीर प्रशान्त, दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल शठ, उत्तम, मध्य, अधम कुल अड़तालीस नायक तथा जाति, पति प्रेम, वय, मान, दशा, अवस्था तथा गुण-प्रकृति के अनुसार उत्तमा, मध्यमा, अधमा, कर्म-धर्म के अनुसार स्वकीया, परकीया, सामान्या नायिका के भेद-उपभेद मिलाकर साहित्यशास्त्रियों ने कुल तीन सौ चौरासी नायिका भेद का निर्माण किया है। ये उन्हीं चरित्र के चर्वित चर्वण कर्ता हैं।

राम रतन उर्फ निर्लिप्त जी का निर्माण इन सबसे कुछ अलग हटकर विषम परिस्थितियों में हुआ। वे 'मासि कागद कलम छुआ नहीं' की तर्ज पर विद्यालय-विश्वविद्यालय किसी में तो नहीं जा सके किन्तु गाँव के एक समाज सुधारक श्रेणी के मास्टर की दृष्टि जब उन पर पड़ी तो अड़ी रह गयी। उन्होने अक्षर ज्ञान से बढ़ते-बढ़ते बोध कथाओं, परी कथाओं, हितोपदेश, पंचतंत्र के सहारे-सहारे मानस-महाभागवत आदि ग्रन्थों की ओर मोड़कर निर्लिप्त जी को साहित्य की ओर लिप्त कर अन्य दिशाओं से निर्लिप्त कर सचमुच निर्लिप्त बना दिया। वे साहित्यिक-सांस्कृतिक तथा संवेदनात्मक अभिरुचियों से ओत-प्रोत हो

गए। मास्टर साहब की प्रेरणा से दोहा-कवित्त, सवैया, सौरठा, कुण्डलियाँ, दुमदार दोहे लिखने में पारंगत हो गए। जब दो-तीन कापियाँ दोहा-सवैया से भर डाली तो एक दिन अकस्मात मास्टर साहब को दिखाया। मास्टर जी बच्चे की प्रतिभा देखकर दंग रह गए। दाँतों तले उंगली दबाते हुए मन ही मन कहा यह लड़का तो सूर सूर तुलसी शशी की दिशा में जा रहा है। एक दिन जरूर साहित्य का सूरज बनेगा। क्या गजब के इसके हाव-भाव हैं। हर बात को परम्पराओं के अदाज़ से अलग हठकर नयी शैली में कहता है। कहने का ढंग बड़ा चंग है। लिखता है - *'ज़िन्दगी जहर है इसे अमृत बनाकर पियो तो जाने, दिया जो तूफानों से जूझे उसे ही सर्वस्व दिया माने'*- कितनी तो ऊँची और उत्कृष्ट बात इसके चिन्तन में समायी है। गीता के कर्म योग की कितनी सूक्ष्म बात व्यक्त कर रहा है कि - नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः, शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः

अर्थात् शास्त्र सम्मत कर्तव्य करो क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तो शरीर निर्वाह भी नहीं होगा। निश्चय ही इसके बाल मस्तिष्क में विधाता ने प्रौढ़ मस्तिष्क धर दिया है। कहीं भी आशा-निराशा नहीं। कर्म का केसरी है। एक दिन जरूर यह हिन्दी जगत में सिंहनाद करेगा। मास्टर साहब के चिंतन में आया कि गँवई गाँव में तो सिंह नाद की कामना सम्भव नहीं वहाँ तो सियार की हुआ... हुआ ही बहुत है। नगर और महानगर में सिंहनाद उसी प्रकार सार्थक होगा जैसे वन-प्रांतर को एक सिंह थर्रा देता है। बालक की आवाज़ में गर्जना उत्पन्न करने के लिए मास्टर साहब अंकस्मात अपने बड़े भाई के डेरे पर एक दिन उसे लेकर बम्बई पहुँच गए। बड़े भइया को ठेठ देहाती भाषा में समझाने में सफल हो गए कि गंवाई-गाँव के कूप से निकलकर बालक महानगर को देखे-समझे, अपने को सजाये-संवारे ढाले-ढोले तो अपने गाँव का ही नाम उजागर करेगा। बड़ा आदमी बनकर जब यह जाना जायेगा तो हमारा गाँव भी जाना जायेगा। इसका सारा खर्च मैं भेजूंगा आप खाना भर देना। सहकारी भाव वाला यह बालक एक दिन अवश्य समाज और सरकार को बदल कर रख देगा। इसमें जरा भी शंका मुझे नहीं दिखती। क्रांति दृष्टा मास्टर साहब की बातों को बड़े भइया को मानना पड़ा कि चलो कुछ न सही तो तबेले के दूध का हिसाब-किताब ठीक से रखा करेगा। जैसे पाँच-पाँच

भैंसे हैं वैसे ही एक भैंस बनकर यह छोरा भी खाता-पीता रहेगा और दूध के बदले दिमाग देता रहेगा तो वाँदा क्या? चाल के एक कोने में पड़ा रहेगा। अपनी तकदीर से पढ़-लिख लेगा तो मुझे क्या उज्रदारी? भाग्य से कभी बड़ा अफसर बन जायेगा तो यह दिन भूलेगा नहीं। इसी उधेड़ बुन को सहेजते हुए बड़कऊ भइया ने हामी भर ली।

बालक अब युवक हो गया था। भैंस के तबेले की सेवा करते-करते स्कूल की पढ़ाई खत्म कर सेंट जेवियर्स कालेज जा पहुँचा। मास्टर साहब की प्रेरणा प्रोत्साहन उसे निरन्तर आगे बढ़ाते रहे। उनकी सीख को उसने गाँठ बाँध लिया था कि विषम स्थितियाँ ही आदमी को लक्ष्य तक पहुँचाती हैं बस निष्ठा होनी चाहिए। इसी के सहारे युवक अग्रसर हुआ। साहित्यिक अभिरुचियों के कारण युवक ने स्नातक पाठ्यक्रम में हिन्दी साहित्य विषय लिया। कुछ आन्तरिक तथा बाहरी प्रभाव से वह साहित्य आराधना में जी जान से जुट गया। अब वह युवक निर्लिप्त जी के नाम से जाना जाने लगा। मराठी साहित्य का भी उसने जमकर तथा जोरदार अध्ययन-मनन, मंथन, चिंतन कर आधुनिक प्रवृत्तियों की धारदार पकड़ अपनी मुट्ठी में समेटी। हिन्दी मराठी पर समान रूप से अधिकार कर दोनो क्षेत्रों में रंग जमाने लगा। प्रायः सभी गोष्ठियों-संगोष्ठियों, सम्मेलनों, चर्चा परिचर्चा में अग्रिम पंक्ति में बैठकर भाग लेने लगा। जल्दी ही अपने धारदार अस्त्र-शस्त्रों से सभी पर आक्रमण करने लगा और समानधर्मियों को क्षत-विक्षत, आहत करने लगा। जहाँ कहीं भी जाता अपनी अलग उपस्थिति दर्ज करा कर रहता। निरन्तर प्रयत्न-प्रयास पूजन-अर्चन से सरस्वती जी उन पर इतनी प्रसन्न हुई कि निर्लिप्त जी की झोली आशीर्वचन-आशीर्वाद से लबालब भर दिया। निर्लिप्त जी ने काव्य की पुरातन प्रथाओं, परम्पराओं, प्रयोगों, रूढ़ियों, रुचियो, रुखों, प्रवृतियों को एक ही झटके में तड़ातड़ तोड़ डाला। छन्द अंलकार रीतियो के प्रचलित बन्धनों को ऐसा तोड़ा कि साहित्यिक बिरादरी में हड़कम्प-हड़बडी हल्ला-हंगामा मच गया। सनातनी पुरातनपंथी एक दूसरे का मुँह ताकने, नाक भौ सिकोड़ने, जीभ की बदली जायका का छिपा-छिपा विरोध दर्ज करने लगे। किंतु जितना ही कट्टरपंथी विरोध जताते उतना ही निर्लिप्त जी ज्यादा धारदार-मारकाट की लेखनशैली में उतरते गए। अब तो एकदम वे कबीर के अक्खड़-फक्कड व्यक्तित्व को अपना चुके थे। इस दौर में उनके दो-तीन दर्जन रचना ग्रन्थों की बाढ में छुटभइये कवि डूबते नज़र आने लगे या निर्लिप्त जी के ग्रन्थों के बोझ

तले अच्छे-अच्छे दबे-दबे लगने लगे और उनकी साँस उखड़ती-उजड़ती नजर आती। उनके दम घुटने लगे।

निर्लिप्त जी के साथ एक हादसा और हुआ कि वे जब बी.ए. की परीक्षा मे बैठे तो संयोग से वायवा में डॉ. शर्मा ने उनके ही काव्य की पंक्तियाँ बोलते हुए कहा -

*'रोटियों की लड़ाई कभी खत्म होती नहीं'*
*जिन्दगी लड़ते-लड़ते मिट जाती है*
*ऐसा कुछ क्यों होता नहीं*
*जीने वाला जीने के लिए रोटियाँ छीन ले उनसे*
*जो तिजोरियों-गोदामों-खत्तियों में बंद रखते हैं*
*सडने के बाद उसे फेंक देते हैं,*
*क्योंकि उनका खरीदार कोई मिलता नहीं*
*मुनुआ की बूढी माँ गिट्टी फोड़ते-फोड़ते, एक दिन असमय मर जाती है*
*तो कहा जाता है कि बीमार एक बुढ़िया चल बसी*
*और लवारिस मुनुआ को छोड़ गयी*
*ऐसे में मुनुआ बन्दूक उठाता क्यों नहीं*

इस कविता के माध्यम से आप क्या समाज में अराजकता लाना चाहते हैं। इससे समाज का आखिर क्या भला होने वाला है। मालूम है अराजकता की सज़ा देश द्रोह है जो एक गम्भीर अपराध है। आप भी उसके भागीदार हैं। आप को ऐसी कविताएं नहीं लिखनी चाहिए। ऐसी कविताएं रस विहीन है और सत्यं शिव सुन्दरं से विमुख हैं।

डॉक्टर शर्मा के मुख से इतना सुनते ही निर्लिप्त जी वायवा के बीच मे से ही उठकर चल दिए। उनके विद्रोही मन को यह सब स्वीकार नहीं हुआ। फेल पास की चिंता किए बिना वे सीधे खोली पर आ गए और बिना कुछ खाए पिए चारपाई पर लेटे रहे। उस समय खोली में कोई नहीं था। अतः अकेले पड़े-पडे उनका मस्तिष्क उबलने लगा। क्या समाज को ज्यों का त्यों रहने दिया जाय। उसमें कोई क्रांति न लायी जाय। अन्याय अत्याचार अनाचार, व्यभिचार का खुला खेल क्या चलने दिया जाय। इससे समाज क्या कभी सुखद-सौम्य-शान्त

बन सकता है। भारतीय मनीषियो चितको की परिकल्पना वसुधैव कुटुम्बकम, आत्मवत सर्व भूतेषु, अहिंसा परमोधर्मा: से लेकर काण्ट, हीगेल, मार्क्स के समाज नव निर्माण के प्रयास इसीलिए हैं कि समाज की सारी व्यवस्था बदली जाय। समाज के सुन्दर-सुखद निर्माण के लिए क्रांति हो जिससे समाज का सबसे निचला व्यक्ति भी न्याय पा सके। क्रान्ति लाने के लिए कई माध्यम हैं जैसे आन्दोलन, प्रदर्शन, भाषण, लेखन आदि। मेरे अनुकूल तो लेखन होगा। अब मैं इसे ही अपना हथियार, बनाकर जबर्दस्त प्रहार करूंगा। इसके लिए भले मै कितनी बार आहत अपंग-विकलांग होऊं पर अन्तिम सांस तक सारे अवरोधों-अवरोहों से जूझना रहूँगा। भले ही इसके लिए टूट-टूट कर कुंठित-लुंठित भी होना पड़े। इन्हीं विचारों की आंधी के बीच उसे झपकी आ गयी और वह सो गया किन्तु स्वप्न में भी यही सदा गूंजती रही।

बड़कऊ जब दिन पाली करके खोली पर लौटे तो राम रतन को लेटा देखकर चकित रह गए। वे कुछ समझ नहीं पाये कि माजरा क्या है। क्योंकि उसे इस तरह लेटा कभी भी न पाया था। कुछ न कुछ काम में सदा लगे ही पाया। उनके आश्चर्य का ठिकाना तब बेहद था जब देखा कि चूल्हे पर बटलोई और भगोनी ज्यों की त्यों रखी है। इसका मतलब बड़कऊ की अपनी छठी इन्द्रिय से लगा कि बचवा ने कालेज से लौटने के बाद खाना नहीं खाया। प्रेम सने झुंझलाहट-झिरझिराहट में कहा -

- काहो बचऊ का भा। का तुम्हार तबियत-ओबियत खराब बा का। जो खानौ नै खायेउ अउर चुपचाप खटिया पर उघार पौढ़े हऊ। तबियत ठीक न होय तो चलउ डाक्टर के पास। रेलवई के डाक्टर सरमा अपने उधरै के अहैं। चलउ ठीक-ठाक से जाँच-पड़ताल कराइ लेव....।

- नाही दद्दा हमका कुछ नाही भवा। न कोई बीमारी न हकारी। तनी तबियत नरम-गरम हय। सब ठीक होइ जाइ।

- बचवा तुम्हार इमत्हान तो आज खतम होइगा ना। सब ठीक-ठीक भवा ना...। चलो अच्छा भा जो तुम्हरे कपारे से पढ़ाई का बोझ उतर गवा। अब का करबो बचवा। कोई नौकरी-चाकरी में लगबो ना। कहो तो हम अपने इस्टेशन मास्टर से कुछ बात करी...।

- अभी रहय देव दद्दा तनी सोच-विचार, देख-सुन तो लेई....। फिर तो जिन्दगी भर काम-काम रही।

- अच्छा जइसी तुम्हारी मर्जी। उठो तनी हमरे साथ मुँह तो जुठार लो. ।

बचवा बड़कऊ के कथन को टाल नहीं सका और उठकर उनके साथ दाल-चावल के कुछ ग्रास गले के नीचे पानी के सहारे उतार लिया। ऊपर से ऐसी प्रसन्नता का दिखावा करता रहा कि बड़कऊ को तनिक भी शंका का सिरदर्द न हो जिससे वे सिर पकड़ कर एक कोने बैठ जायं और पुरानी आदत के अनुसार सारी खोली सिर पर उठा लें जिससे सभी के नाकों में दम हो जाय। बचवा ऊपरी दिखावा के लिए उनसे खूब घुल-मिलकर बातें करता रहा। उनकी रेलवे की नौकरी तथा भैंस के तबेला की आमद-खर्च के बारे में खोद-खोद कर खूब पूछने लगा -

- दद्दा तुमरे नौकरी में तो परमोसन यही साल होय के है ना...।

- जाय देव बचवा ससुरा समय पर तो परमोसन मिलबै करी। जब तकदीर मे होई तो जरूर मिली। हमार तकदीर तो कोई छीन सकत नहीं। काहे बेकार की फिकर में मरी।

- नाही दद्दा पहले की तरह हम एक अर्जी लिखे देत हई कल दफ्तर मे बाबू को पकड़ाइ देव। देखब ससुरेन ये के का जवाब देत हैं। जवाब तो उनका दिहेन पड़ी। भले गोल-मोल देयँ। ई तो सरकारी तरीका हय।

कहते हुए बचवा ने एक अप्लीकेशन अत्यन्त तार्किक तथा तर्राट शैली मे लिखकर दद्दा को साइन करने के लिए पकड़ा दिया जिसमें उसने ऐसे-ऐसे सटीक तर्क संदर्भ सम्बोधन किए कि न्यायधीश तक को तथ्यों को स्वीकार कर दद्दा के पक्ष में न्याय देना ही पड़ता। अर्जी देते हुए दद्दा को सचेत किया कि अर्जी देकर पावती जरूर ले लेना। देखहों तुम्हार परमोसन कैसे नै होत। कडक चेतावनी देते हुए बचवा बोला-

हक की लडाई कभी न छोड़ी जाय यह तो आखिरी दम तक छिड़ी रहै

- चल बचवा तोर कहा मान के अर्जी दै देब। देखब राम जी का करवइया आहैं। पर हमका लगत है बचवा कि कुछ दिन से तुमका पता नै का होय रहा है।

- दद्दा हमका का भा है? हम तो एकदम भला-चंगा है। अन्याय हमसे देखत नहीं बनत अउर नियाव के लिए हम जान देबै बरे तैयार हैं।

- चलो बचवा पता नहीं तू का-का बोलत है। हमरे जड्ड दिमाग के पल्ले कुछ नहीं पड़त। फिर भी लगत है कि तुम्हार बानी में वजन है।

थकावट - कड़ी मेहनत-मसक्कत के मारे सब जन रात में खोली में उल्टे सीधे, टेढ़े-मेढ़े पसर गए और नींद में गुम हो गए। जो कुछ जाग्रत संसार में देखते वही स्वप्न संसार में देख-देख बड़बड़ाने लगे। कोई तो रेलवे की भाषा-शैली में बुदबुदाते तो कोई भैंस के तबेले में बंधी भैंस को डाँटने-डपटने, घुड़कने लगे। कुल मिलाकर भैय्या लोगन का भैया संसार सजीव हो गया था जो वे घर-द्वार, गाँव-जिला पैसा कमाने के लिए बम्बई आये थे। स्वप्न में भी जाग्रत संसार को देखते हैं। बचवा यह सब बड़ी बारीकी से देखता-समझता बारम्बार करवट बदलता रहा। उसके मन में झटके से विचार आया कि अभी इसी दम खोली छोड़कर कहीं चल देना चाहिए। जहाँ प्रारब्ध ले जाय उसी ठौर चल दूं छोटी सी चिट्ठी लिखकर, बड़कऊ के सिरहाने रखकर चाल की धड़-धड़ सीढ़ियाँ उतरते हुए तेजी से बढ़ गया। फिर पीछे पलट कर भी नहीं देखा। चिट्ठी में लिखा था- हम घरै जाइत है।

बचवा उर्फ निर्लिप्त लोकल ट्रेन से सीधे वी.टी. जा पहुँचा। वहाँ उसे विदिल हुआ कि काशी एक्सप्रेस जाने ही वाली है। वह उस ट्रेन की बोगी में जा बैठा जहाँ भइयों की भारी भीड़ थी। प्लेट फार्म तो उससे भी ज्यादा भीड़ से भरा था जो अपने इष्ट जनों को देस पहुँचाने आए थे। निर्लिप्त को पहुँचाने तो कोई नहीं आया था। क्योंकि वह तो चोरी-छिपे जा रहा था किसी को देस जाने की खबर दिया ही कहाँ था। उसे लग रहा था कि इस भीड़ का कोई भी चेहरा तो उसे नहीं पहचानता। इससे वह निश्चिंत खाली जगह की तलाश में बोगी में आवा-जाही कर रहा था। इस बीच उसे सुमेर केबिन मैन मिल गया जो अपनी ही बिरादरी के एक भइया को छोड़ने आया था। बचवा को देखते ही तपाक से

बोला-बचवा कहाँ जा रहे हो। बचवा ने सिर्फ इतना भर कहा देस जा रहा हूँ। तब तक ट्रेन चल पड़ी जिससे सुमेर उससे खुलासा न पूछ सका और अधर मे लटका रह गया। इधर बचवा कहाँ जा रहा है, कौन से स्टेशन पर उतरेगा। क्या खाए-पिएगा उसे कुछ भी पता नहीं। सुबह उठकर उसे पुल के घड़घड़ाहट की जोरदार आवाज़ सुनायी दी कि ट्रेन जमुना पुल पार कर रही हैं। इलाहाबादी शहरी तथा ग्रामीण यात्री अपने सारे सामान असबाब ट्रेन के दरवाजों पर ऐसा जमाने लगे जैसे उनको छोड़ किसी और को उतरना ही नहीं है या ट्रेन ही उनके बाप की है तो क्यों किसी और को उतरने-चढ़ने दें। सामान भी किसी के पास कम न था। कोई तो अपने बेटा-बेटी की सगाई-शादी की तैयारी का सामान लादे था तो कोई अपने नए घर में बम्बई की रौनक लिए जा रहा था। भले ही बम्बई मे रहते हुए काट-कपट कटौती करते हुए, जीभ मरोड़-मरोड़ का जमा पूंजी बचायी हो पर गाँव समाज में तो कमाई का नगाड़ा पीट-पीट कर सभी को जताना चाहता है कि हम भी किसी से कुछ कम नहीं हैं। चार हजार अउर चार सौ रुपिया पगार उठाता हूँ। इस दम पर वे दिखावा न करें तो क्या करें। नैनी आते-आते उन पर दिखावे का भूत न चढ़े तो वह भूत कैसा। कपड़ा-लत्ता से लेकर चाल-ढाल तक का दिखावा उन्हें करना है तभी तो वे बम्बइया कहलायेंगे। नहीं गॉव-गिरॉव वाले उन्हें सेटेंगे ही क्यों।

बचवा उर्फ निर्लिप्त के पास ऐसा कुछ भी दिखावा नहीं था जिसे उसे दिखाने की जरूरत पड़ती। वह स्टेशन से सीधे दारागंज जा पहुँचा जहाँ उसका एक चित्रकार मित्र रहता था जो बम्बई प्रवास के दौरान निर्लिप्त के सम्पर्क मे आकर अनुरोध कर बैठा था कि इलाहाबाद आने पर मेरे निवास पर ही रुकना होगा और जब तक चाहो मेरे आतिथ्य में बने रहना। एक नए मित्र का इतना अनुरोध बहुत था। पता पूछते-पूछते निर्लिप्त जी चित्रकार मित्र के निवास पर जा पहुँचे। उसने देखते ही इन्हें गले से लगा लिया और बड़े ही आदर भाव से निर्लिप्त जी को बैठाया।

चित्रकार जी का कमरा कलात्मक चित्रों से सजा था। जगह-जगह प्राचीन अर्वाचीन तथा माडर्न, ऐब्स्ट्रेक्ट, कोलॉज आर्ट की पेण्टिंग्स दीवार पर लटक रही थी जिसे देखकर लगता था कि सचमुच यह किसी कलाकार का ही निवास

है। निर्लिप्त जी के स्नान आदि करने के पश्चात कलाकार चित्रायन जी स्वयं उन्हें लिवाकर जगन्नाथ हलवाई की दुकान पर गए और ताजी-ताजी गरम जलेबी समोसा का नाश्ता डटकर कराया। बीच-बीच में बताते रहे कि यह दुकान इस मोहल्ले की सबसे पुरानी और बढ़िया है। जगन्नाथ हलवाई के हाथ का स्वाद सबसे अलग सबसे बेहतर। लोग दोना-पत्तल चाट-चाटकर इनकी मिठाइया नमकीन खाते हैं। इस दुकान का स्वाद अद्‌भुत है। लोग दूर-दूर से यहाँ की मिठाइयां खाने आते हैं। उठते-उठते जगन्नाथ हलवाई से सम्पर्क कराते हुए चित्रायन जी ने कहा - जगन्नाथ भइया ये हमारे मित्र हैं। बाहर से आये हैं। इनकी अच्छी सेवा-आवभगत करना। जगन्नाथ हलवाई हाथ जोड़ते हुए मुस्कुरा कर बोला- हम तो सेवक हैं। आपकी संतुष्टि ही मेरी कमाई है। कभी शिकायत का मौका नहीं दूंगा। पण्डित जी आज का नाश्ता मेरी ओर से। आखिर ये भी तो मेरे मेहमान ठहरे। मेरी बात को टालना मत....।

उधर बड़कऊ अंगड़ाई लेकर जब उठने को हुए तो उन्हें तकिया के नीचे कुछ चुरचुराहट-खरखराहट की सी आवाज़ लगी। कागज के एक टुकड़े को मुड़ा चुड़ा पाया। बिस्तर पर पालथी मार बैठकर बाचने की कोशिश करने लगे। अक्षर से अक्षर मिलाते-जुलाते और बचवा की लिखावट पहचानते हुए अर्थ खोजने लगे। 'ह और म हम घ नहीं - नहीं म और रै मरै जाइत है! अरे बाप रे! बचवा का लिखके गा। हम मरै जाइत है। तनी कोई और से कगदवा बंचा लेई। पता नै का लिखे है। अब हम का करी राम। का ग्राण्ट रोड जाइ के स्टेशन मास्टर से पता करी। कटे-मरे लोगन के पहचान करी। अबहिन कल तक तो हमसे कितना परेम दिखावत रहा और ओका का सूझेस कि मरै चला गवा। बड़ा दगा देय गवा बचवा।' बड़कऊ के नख में प्राण समा गया। वे झटपट बगल वाली चाल के बीस नंबर वाली खोली में मास्टर हरे राम से कागज बचाने उघेल बदन ही जा पहुँचे। कागज बाँचते-बाँचते उन्होंने कहा कि लिखा है-हम घरै जाइत है। माने देस जा रहा हूँ। बिना बताये - जताये देस जाने की बचवा की खबर बड़कऊ को बड़ी कड़वी लगी। वे अपने थूक से मुँह गीला करते हुए मास्टर से बोले कागद से कोई ऐसी वैसी बात तो नहीं लगती ना। मास्टर ने साफ-साफ समझाते हुए कहा - बड़काऊ बचवा घर चला गया। कोई और माने मत लगाओ

परिन्दा पक्षी जस आवा रहा फिर फुर्र से उड़ गवा। सोच मत करो। समझेव बडकऊ जगत की रीत।

निर्लिप्त जी इलाहाबाद में रहते हुए शीघ्र ही यहाँ का इतिहास, भूगोल, सभ्यता, संस्कृति, राव, रंग आत्मसात कर इसके रंग में रंग कर रंगारंग हो गए। अब वे यहाँ की ऊर्जा से ओजवान होने लगे और अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा का उत्सर्जन करने लगे। वे लुप्त सरस्वती की खोज में नित्य संगम तट पर भटकने लगे। उसके दर्शन के लिए प्राणपण से जुट गए। उसके उद्गम-उद्गार, प्रवाह प्रवाद, लोल-लोप में लीन हो गए। अत्यन्त सात्विक भाव से ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-संगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की अर्चना करने लगे। इसके लिए वे अत्यन्त एकान्तवासी बनने की दिशा में बढ़ते गए। सर्व प्रथम कार्य तो यह किया कि चित्रकार चित्रायन जी का वह कक्ष जहाँ उनका निवास था उसे सरस्वती साधनालय के रूप में परिवर्तित करा लिया अर्थात् उनके साधनालय में सभी का प्रवेश वर्जित हो गया। वे दिन में ही आठ-आठ घण्टे लेखन पठन-पाठन मे लग गए और रात्रि तो जैसे उनकी ही थी। काफी देर तक वे जागरण करते। कभी गुनगुनाते तो कभी सस्वर जोर से संस्कृत के श्लोक, मराठी के भावगीत अभग, तुलसी, सूर के पदों का गायन करते। अड़ोसी-पड़ोसियों जिनकी नींद हराम होने लगी दबी जबान चित्रायन जी से शिकायतें करने लगे कि आजकल आपके घर की बत्ती देर रात तक जलती रहती है। खूब कीर्तन, संकीर्तन-भजन-पूजन होता रहता है। क्या देवी जागरण वगैरह होता है...।

निर्लिप्त जी से सीधे किसी की बात करने की हिम्मत न थी। परोक्ष रूप से सभी समझ गए थे कि ये सज्जन कुछ अलग ढंग के हैं। पता नहीं कब क्या कर बैठें। डील-डौल कद-काठी, आकार-प्रकार तो दो आदमी के बराबर अकेले ही है अर्थात् तन उनका पर्वत है तो उर सागर है। अब कौन ऐसे आदमी से रार मोल ले कुछ बोलकर जिसका परिणाम पता नहीं क्या हो। अन्ततः समझौतावादी-समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण सभी ने उन्हें सहन करना सीख लिया। अब किसी को न तो कोई आपत्ति थी और ना ही विपत्ति नज़र आती। निर्लिप्त जी सभी ओर से अपने को निर्लिप्त करते हुए केवल सरस्वती साधना में लिप्त होते गए। सर्व प्रथम उन्होंने सरस्वती आराधना में एक गीत लिखा। जिसे सामने की दीवार पर बड़े कलात्मक अक्षरों में अपने हाथों लिखा था -

हे शारदे! सुख सार दे माँ
जीवन में तू रस धार दे माँ
तन-मन को नव मुस्कान दे माँ
सुन्दर-सरस नव गान दे माँ
नव शब्द के भण्डार दे माँ
नव अर्थ के अम्बार दे माँ
वाणी में ऐसा ओज दे माँ
नव सृष्टि जिसमें खोज दे माँ
वेदो की उसमें गूंज दे माँ
चिरकाल की अनुगूंज दे माँ
गीता-गहन का ज्ञान दे माँ
गुणगान प्रभु का ध्यान दे माँ

निर्लिप्त जी साहित्य सागर में पैठकर अनमोल रत्न सीपी-मोती सग्रह करने लगे और माँ सरस्वती के कण्ठ का कण्ठहार गूंथने लगे। वे साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी धारा प्रवाह लेखनी चलाने लगे। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, खण्डकाव्य, महाकाव्य कुछ भी न छोड़ा। विषय वस्तु एकदम अनूठा-अछूता उत्कृष्ट रखा। सम्पूर्ण साहित्यिक परम्पराओं की तिलांजलि देकर ऐसा श्राद्ध किया, प्रयाग में रहकर ऐसा पिण्डदान किया कि गया जाने का लोभ ही नहीं बचा। नए शब्द, नए अर्थ, नवल भाव, नवल विभाव, नए छन्द, नई रीति, नए कथ्य, नए पथ्य का अन्वेषण कर साहित्यिक रचनाओं का अम्बार लगाने लगे। पता नहीं उनमें कहाँ से शक्ति का संचार हुआ कि वे दिन-रात लेखन में डूब गए। एक से एक बढ़कर उनके हाथों रचनाओं का सृजन होने लगा।

साहित्यिक जगत में उन्होंने ऐसा धमाका किया कि सभी साहित्यकार चौंक कर चुप्पी साध ली। एक से एक नए भावों में, अभिव्यक्ति में, शैली में उनका जादू सबकी बोलती बन्द करने लगा। एक ओर कुछ नत मस्तक होकर निर्लिप्त जी के सम्मुख हथियार डालकर उनकी अगुआई स्वीकार करने लगे तो दूसरी ओर प्रतिद्वंद्वी साहित्यकार ईर्ष्या से जल-भुनकर कोयला होने लगे जिसकी खबर निर्लिप्त जी के खुले कानों को मिल जाती थी। कौन क्या-क्या लिख रहा है, क्या-क्या लिखने जा रहा है। इसकी पक्की सूचना उन्हें घर बैठे मिल जाती थी।

इससे भी ज्यादा सशक्त धमाका क्या हो सकता है इस चिंतन में लिप्त होकर निर्लिप्त जी रचना की ऐसी त्रिशूल मिसाइल छोड़ने में लग जाते जो अचूक सिद्ध होती। इस स्थिति से प्रतिद्वंद्वियों-प्रतिस्पर्धकों को भी थोड़ा बहुत लाभ हुआ है किंतु साहित्य जगत को जबर्दस्त लाभ यह हुआ कि साहित्य भण्डार में आशातीत अभिवृद्धि हुई और रिकार्ड समय में वह फूलों-फलों से लद गया। साहित्यिक वाटिका में बहार वसंत आ गया।

# पाँच

जुलाई का महीना इलाहाबाद का बेहद बेतुका-बेवफ़ा, बेबाक-बेताब, बदगुमा-बदमज़ा होता है। न तो अच्छी खासी बरसात का, न गर्मी का, न सर्दी का बाल्कि सबका मिला-जुला मसाला होता है। इस मसाले से मौसम सारे इलाहाबादियों को सब्जी जैसा छौंक मारता है। इसीलिए सभी उमस भरी चिपचिपाहट, पसीने से लथपथ, देह से उठती दुर्गंध, उस पर जमी मैल की मोटी परत, कपड़ों पर, कंधों आस्तीन, मोहरी पर मैल और पसीने के बदबूदार दाग, भूमि से उठती पहली बारिश की सोंधी सुगंध साथ ही गर्मी की तपिश की उठती दाह लोगों को बेचैन-बेक़रार करती है। कहीं-कहीं बरसात की पहिल-लहरवा बेतरतीब बने नाली-नालों में तूफान ला देती है। सभी उफना जाते हैं। तटबंधों को तोड़ कर इधर-उधर ढलान पर तेजी से बहते हैं। इससे कीचड़-काँदो चारों ओर सड़क फुटपाथ-गलियों में ऐसा बहता नज़र आता है कि पैर रखने की गुंजाइश नहीं होती। समझदार लोग कदम-दर-कदम ईंट या पत्थर रख कर रास्ता बना लेते हैं और उसी को आने-जाने वाले लोग भी सार्वजनिक पेशाबघर जैसा इस्तेमाल करने लगते हैं। कहीं-कहीं तो गलियाँ बरसात में मल-मूत्र, कीचड-कूडा-कर्कट से ऐसी पटी पड़ी रहती हैं कि इनसे पैरों को बचाने को कौन कहे नाक तक को बचाना मुश्किल होता है। उधर जाने की मजबूरी होने पर नाक पर कपड़ा ठूंसे बगैर चारा नहीं बचता। बरसात अपना निरंकुश रूप छुट्टे सांड़ जैसा दिखाने लगता है। कहीं तो आहिस्ता-आहिस्ता बरस कर शान और शालीनता से बरसता हरसता जाता है तो कहीं क्रुद्ध होकर भयभीत करता जाता है। सकरी टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ तो छुट्टे सांड़ के अधिक उधम-उत्पात की शिकार होती है।

बरसात के इस बेलौस मौसम में नौजवानों-बच्चों पर एक नयी बहार छा जाती है। वे यूनिवर्सिटी-स्कूल-कालेज खुलने की प्रतीक्षा में सारी गर्मी बिता देते हैं। नए उत्साह उमंग के साथ बिना कुछ परवाह किए नए स्कूल कालेज तथा नयी कक्षा में जाने के लिए मचल पड़ते हैं किन्तु छोटे बच्चे जो पहली बार स्कूल का मुँह देखने जाने काबिल होते हैं। वे रोने-धोने में ऐसे लीन हो जाते हैं

कि उन पर बरबस तरस आती है कि वे सबेरे-सबेरे रोना-धोना बंद कर मजे से घर में खेलते-कूदते, खाते-पीते पड़े रहें। कौन उन्हें आज जिलेदारी करनी है। रोनी सूरत बना कर उठने से लेकर पुचकारते-फुसलाते-बहलाते स्कूल की तैयारी करते फिर आँखों के आँसू लुढ़क कर नाक-मुँह, गाल सबको एक बना कर ऐसा कुहराम मचाते हैं कि स्कूल पहुँचाने वाले का कलेजा भर आता है। वे कलेजे पर पत्थर रख उन्हें घसीटते, धकियाते-धकेलते ले जाते हैं उन पर बच्चों के रोने धोने का कोई असर नहीं पड़ता।

किन्तु नौजवान लड़के तो कालेज-यूनिवर्सिटी में बड़े उमंग - उत्साह मे जाते नज़र आते हैं। वहाँ की वीरानी चहल-पहल में बदल जाती है। पान-सिगरेट चाय-काफी की दुकानों पर, चौरास्ते-तिराहे-नुक्कड़ मोड़ पर नौजवानों की भीड सिद्ध करती है कि देश के भावी कर्णधारों के कदम कहाँ टिके हैं और वे किधर जा रहे हैं। उनके कदम तो खास इसलिए टिके होते हैं कि नए रंगरूट किधर-किधर से और कहाँ कहाँ से आ रहे हैं। जरा उनका जायजा लेकर देखा जाय कि वे कितने पानी में और पानीदार हैं। पुराने लड़के नए रंगरूटों पर फबतिया कसना, मज़ाक़ बनाना अपना पहला हक़ मानते हैं। इसी काम में उन्हें दो-चार महीने काटने हैं। वे रंगरूटों के चेहरे को उड़ती नज़र में ही पढ़ लेते हैं, जिस पर साफ लिखा होता है कि पहली बार वे यहाँ आ रहे हैं। तभी तो उनके चेहरे पर हिचक-झिझक, घबराहट-मुरझाहट, बैचेनी-बेअकली तैरती नज़र आती है। जिसे पुराने खिलाड़ियों को भाँपते देर नहीं लगती। नए पक्षियों के झुण्ड पर एक पुराना पक्षी उनके चारों ओर गोल-गोल घूमकर खड़ा हो गया। तभी उस पुराने पक्षी के एक साथी ने झपट्टा मार कर रंगरूट के गर्दन पर ऐसा झापड़ मारा कि उसकी अनुगूंज दूर-दूर तक सुनाई दी। और उस नए पक्षी की आँखों के सामने चिंगारियां बरसने लगीं। पुराने पक्षी ने कहा -

- क्यों बे क्या मां-बाप ने तुझे अदब लिहाज़ नहीं सिखाया सीनियर लोगो के लिए.....

- सर सॉरी मैं आपको पहचान नहीं पाया आज पहली बार कालेज आया हूँ।

- जाओ याद रखना। पहली बार का मामला है इसलिए माफ़ किया। बताओ जोर से तो नहीं लगी।

- नहीं सर! आपने तो जैसे मेरे ऊपर फूल बरसाये थे।

- अच्छा ऐसी बात है तब तो चलो तुम्हें चाय आफर है। हम तुम्हारे जवाब से खुश हैं।

ऐसी बहुत सारी दुर्घटनाए तो रोज रोज कालेजो मे जुलाई के महीने मे होना तय है। यह कोई एक कालेज की कथा नहीं है वरन संक्रामक रोग की तरह सभी कालेजों को कौन कहे यह तो युनिवर्सिटी से लेकर स्कूलों तक में इसका छूत लग चुका है। किशोर से लेकर युवा तक इसकी पकड़-जकड़ में आ गए हैं। पहले की बातें जाने दीजिए। जब गरीब गुरबा अंगूठा छाप माँ-बाप के बच्चों मे पढने-लिखने की लौ किसी मास्टर, पोस्ट मास्टर, पोस्ट मैन, पटवारी द्वारा लगायी जाती थी और वह लौ उन बच्चों में आग की ज्वाला सी धधक उठती थी और वे कुछ न कुछ बन ही जाते थे। उनका एक ही उद्देश्य होता था कि किसी तरह कुछ बन ही जाना है। मैट्रिक, एफ.ए. पास कर लेने पर वे पोस्ट मास्टर, पटवारी, मास्टर या दरोगा कुछ तो बन ही जायेंगे। ऐसे लड़के ज्यादातर किताबी कीड़ा बन जाते थे और किताबों को चाटकर या घोटकर पी जाते थे। तभी वे अपनी माँ-बाप की गरीबी मिटा पाते थे। ऐसा जमाना और ऐसे लोग जरा कुछ हट कर हुआ करते थे जो अपने समाज से कट कर कुछ कर ही दिखाते थे। उनके पाँव पालने में तो नहीं बल्कि खटिया के पैताने में दीखता था।

तब की बात कुछ और थी अब तो जुलाई के महीने से ही स्कूल-कालेज यूनिवर्सिटी में दो काम बड़े अहमियत से चलता है। पहला तो नए लड़कों की रैगिंग-रस दूसरा चुनाव-चकल्लस। रैगिंग की सही स्पेलिंग न जानने वाले स्कूली लडके भी आज इस खेल में वैसे ही शामिल हैं जैसे वे इसमें हस्तसिद्ध हैं और वे नए लड़कों या न्यू कमर को पूरा बेवकूफ़ या गधे का बच्चा समझ कर सलूक करते हैं। उनसे जबर्दस्ती अपनी हर आज्ञा का पालन कराते हैं। और इसमें ज़रा सी कमी-कोताही पर न केवल बातों की बरसात करते हैं वरन् हाथ-पैर की भी झडी लगाने में नहीं चूकते। इससे नौजवानी के खून में उबाल आ जाय तो अचरज नहीं। फिर तो नए-पुराने लड़कों के बीच रैगिंग को लेकर बात-बतंगड, लपट-झपट, मार-पीट, संघर्ष, खून खराबा कुछ भी हो सकता है। जबकि यूनिवर्सिटी और हास्टल के लड़कों में रैगिंग खास मक़सद से शुरू की गयी कि नए लड़के पुराने लड़कों के बीच झंपूपन न दिखाए और खुलकर अपने सीनियर के साथ बर्ताव-व्यवहार करें। सिर्फ पढ़ाई पर ही ध्यान नहीं देना वरन् व्यावहारिक जगत में एक व्यावहारिक व्यक्ति भी बनना है। इसी कसौटी पर कसने के लिए नए लड़कों को यूनिवर्सिटी कैम्पस से बाहर हास्टल में जमकर कसा जाता है। उस समय तो नए लड़कों की हालत और ज्यादा पतली हो जाती है जब उन्हें हास्टल के कमरों में पुराने लड़कों के साथ रहना पड़ता है। उस समय नए लडकों को ज्यादा खुला बनाने के लिए पुराने लड़के उन्हें हर तरह से खोलते रहते हैं।

कभी तो उनकी अनुपस्थिति में उनके डिब्बे, आलमारी, ड्रार की तलाशी लेकर खाने-पीने की चीजों को लूटकर हज़म करते हैं तो कभी घर से आए एम.ओ मे अपनी मजबूरी जताकर हिस्सा बँटाते हैं। कभी पाटनर को पटाकर नयी फिल्म देखने उन्हें सिविल लाइन्स के प्लाज़ा पैलेस टाकीज़ भी घसीट ले जाते, सिगरेट का शौक़ भी लगाते हैं। ऐसा नहीं है कि पुराने हास्टल के लड़के हमेशा नए लडकों पर ही लूटपाट मचाते हों। वे सीनियर होने का भाव जताने के लिए फिल्म शो दिखाने का बड़प्पन भी दिखाते हैं।

सीनियर श्री कृष्ण दास ने सण्डे के दिन जूनियर रूम पाटनर अजय कुमार को सुबह-सुबह लीडर पेपर की खास-खास खबरों पर अपनी लम्बी राजनीतिक टिप्पणी झाड़ते हुए वक्तव्य दे डाला-

-पाटनर कुमार मैं देखता हूँ कि राजनीतिक समीकरण देश का कितनी तेजी के साथ बदल रहा है। स्वतंत्रता बेमानी हो रही है। किसान-मजदूर गरीब-बीमार-कमज़ोर आज भी असहाय की स्थिति में सबसे पीछे खड़े हैं। उनकी चीख-पुकार-गुहार कोई नहीं सुन रहा है। यही हालत विद्यार्थियों की भी है। वे बेरोजगारी के कगार पर मरने-मिटने को खड़े हैं। उनकी कोई सुनने वाला नहीं है। दो रोटी का जुगाड मुश्किल है। कार्ल मार्क्स ने सही ही कहा था कि समाज में क्रांति होनी ही चाहिए। जो सर्वहारा हैं उन्हें अपने हक़ की लड़ाई लड़नी ही चाहिए। तभी देश और समाज में परिवर्तन आयेगा। हम कब तक मूक दर्शक की तरह सब कुछ देखते रहेंगे। जिनकी धमनियों में खून है और मस्तिष्क में विचारों की आँधी हैं। उन्हें बाजू तान कर कुछ करने के लिए खड़ा होना चाहिए। बैठने के दिन अब लद गए।

- दास साहब मैं कुछ ठीक से समझा नहीं। आपने जो कुछ कहा है वह सब तो एकदम ठीक है। इससे तो किसी का विरोध नहीं हो सकता। क्रांति या इन्कलाब तो होना ही चाहिये।

- इन्क़लाब कौन करेगा। बुड्ढ़े-सुड्ढे जिनमें चलने-फिरने का दम नही है या अपने प्रोफसर एच.ओ.डी.,वी.सी. वकील-डॉक्टर-इन्जीनियर जो मज़े से जिन्दगी गुज़र-बसर कर रहे हैं।

- नहीं ऐसा तो मैने नहीं कहा। क्रांति तो हमी नौजवान ला सकते हैं।

- हम नौजवानों में इसके लिए कौन आगे आये।

- मेरे मत से तो दास साहब आप ही आगे आयें हम सब आपके पीछे चलेंगे...।

- हियर... हियर तुमने ठीक कहा। मैं इसका बीड़ा उठाने को तैयार हूं। बस तुम लोग साथ देना...।

- हमें क्या करना है दास साहब? जरा विस्तार से कहें।

- मैं इस बार यूनिवर्सिटी प्रेसीडेण्ट का चुनाव लडूँगा तुम सबको जी जान से मेरी मदद करनी पड़ेगी इस चुनाव का संचालन सूत्र तुम्हारे हाथ में रहेगा।

- वादा रहा मैं सब कुछ करके दिखाऊंगा। आप नामिनेशन फाइल करें मै सेकेण्ड करूंगा और सारा हास्टल आपके चुनाव में जूझ पड़ेगा।

- ठीक है पाटनर, तुम्हारे उत्साह की मैं दाद देता हूँ। यही टैम्पो बनाये रखना है। यह महीना तो एडमीशन का है। लड़के आ रहे हैं। हास्टल में सेट हो रहे हैं। अगले महीने ही चुनाव होंगे। डेट भी अगले महीने आयेगी। लेकिन काम अभी से करना है।

- दास साहब हमें अभी से तैयारी शुरू करनी है। जीतने की स्ट्रेटजी बनाकर अभी से जुटना पड़ेगा। अब मैं आपके प्रचार में अपने को झोंक रहा हूँ।

विद्यालय या विश्वविद्यालय के चुनाव में या और कोई चुनाव उसे बडे फ़िरके और फ़ितरत से जीते जाते हैं। इसे इलाहाबाद का बच्चा जन्म से ही जानता है उसे घूँटी में यह नुसखा पिला दिया जाता है। वहाँ की राजनीतिक हवा हमेशा बहती रहती है। न कभी गुम होती है और न कम होती है। उसकी पकड़ में कोई पहुँचा नहीं कि उसके जैसा ही उड़ने लगता है। जैसे पानी में कोई गिरा नहीं कि हाथ-पाँव अपने आप चलाने लगता है। इसके लिए किसी को कुछ भी सिखाने की जरूरत नहीं पड़ती। जनतंत्र की नब्ज़ पर हाथ रखने और उसकी गति समझने में देर नहीं लगती। यह समझ बड़ी सरलता से लोगों में आती है। जनतंत्र है ही जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए। इसीलिए इलाहाबाद की जनता की भागीदारी सबसे ज्यादा है। जिसका की एक मुख्य कारण यह भी है कि अन्य स्थानों की जनता बहुमुखी होती है। उन्हें अपने विकास के लिए बहुत सारे काम-धन्धे जैसे उद्योग-धन्धे कल-कारखाने, खेती-बारी, बाँध-बिजली की ज्यादा चिंता सताती है। इससे गतिविधियाँ चहुंमुखी होकर बंट जाती है। परिणाम स्वरूप वे राजनीतिक दखलन्दाजी से परहेज करते हैं और राजनीतिक खेल भूल जाते हैं। किन्तु जिन्हें कुछ भी करना शेष नहीं है। घसनेट जैसा एक ही जगह बैठे रहना है। उन्हें विकास-विन्यास-विहान से मतलब क्या। इसीलिए वे एकमुखी होते हैं और राजनीति को अहार-विहार-निहार के रूप में ग्रहण करते हैं और उसी में निहाल रहते हैं। दूसरे शब्दों में इलाहाबादी राजनीतिक रस में पगे-पके होते

है और जहाँ भी ये रहते हैं इनके चारों ओर इस रस का वर्षण हुए बिना रह ही नहीं सकता वहीं रस-परिपाक भी होता है।

चर्चा कृष्ण दास की चल रही है जो रहने वाला तो मुट्ठीगंज का है किन्तु यूनिवर्सिटी हास्टल में इसलिए रहता है कि वह यूनिवर्सिटी-आग में पक कर ऐसा पात्र बने जो एकदम मजबूत अनब्रोकेबल राजनेता बन कर निकले। वैसे उसका परिवार सम्पन्न-संभ्रान्त तो है जहाँ किसी तरह की कोई कमी नही है। उसके परिवार के पास दर्जनों मकान-दुकान, सैकड़ों बीघा खेती-बारी, नैनी मे आयरन एण्ड फेब्रीकेशन का कारखाना जिसका वह स्वयं मैनेजर है। दादा जी नगर के प्रतिष्ठित डाक्टर और पिता जी नामी गिरामी वकील हैं जो फौजदारी मुकदमें खासतौर से कत्ल-डकैती-लूट-पाट-मार-पीट, बलवा, अपहरण, बलात्कार, तस्करी, जाली नोट आदि तरह के मुकदमों के वे विशेषज्ञ हैं। गैर जमानती मुकदमों में जमानत दिला देना उनकी पहली विशेषता है और हारे हुए मुकदमो को जीत में बदलवाना उनकी दूसरी विशेषता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वे दो ही विशेषता से पूर्ण हैं। राम जतन उर्फ बमबम वकील बड़े जतन के वकील हैं। जिन मुकदमों को उन्होंने अपने हाथ में ले लिया समझो जीत पक्की है। यही वजह है कि उन्हें हार का मुख देखना ही नहीं पड़ा। कुछ उनमे चमत्कारिक गुण हैं जिसके चमत्कार से हाकिम बेअसर हो ही नहीं सकता। वह तो असरदार के असर से असार हो जाता है। दूसरे शब्दों में बमबम वकील का जादू अदालत के सिर पर चढ़ कर बोलता है। और वे मुलज़िम को बेदाग बचा लेते हैं। कहीं कभी चूक हो भी गयी तो सेशन कोर्ट में अपनी जीत का परचम फहराये बिना नहीं मानते। इसी से उन्हें बेशुमार दौलत और शोहरत मिली है। बाहरी रूप से वे गुण्डों के गुण्डा, बदमाशों के बदमाश किन्तु अंदरूनी रूप मे निहायत धार्मिक व्यक्ति हैं। शिव-शम्भु भोलेनाथ के परम भक्त है। भोलेबाबा के नाम की एक सौ आठ की ग्यारह माला रोज जपते हैं और कुएँ से अपने हाथों पानी खींचकर शिव लिंग पर ग्यारह लोटा जल बेलपत्र सहित नित्य नियम से चढाते हैं। इस उपासना के समय वे जोर-जोर से बम-बम का घोष करते हैं जिससे आस-पास के सोने-जगने वाले जान जाते हैं कि बम-बम वकील की पूजा चल रही है अर्थात पाँच बज चुके हैं।

वैसे बम-बम वकील ने इलाहाबाद के लिए एक बार ऐसा इतिहास रचा था जो इलाहाबाद का सनद है। यहाँ एक बार ऐसी स्थिति बन गयी थी कि इलाहाबाद में दशहरे के दल जो कि पजावा और पत्थरचट्टी की ओर से विभिन्न मुहल्लों की सड़कों पर चल समारोह के रूप में तमाम मुहल्लों की सजी चौकियाँ

न उठाने का कलेक्टर का आदेश था। इसके पीछे शायद साम्प्रदायिक दगे की सम्भावना रही हो। इससे बचने के लिए प्रशासन ने यह कदम उठाया था। जब बमबम वकील तथा उनके अनुचरों सहचरों को प्रशासन की मंशा का ज्ञान हुआ तो वे साक्षात रुद्र हो गए और अनुचर रुद्रगण हो गए। अब क्या था बमबम वकील के नेतृत्व में कलेक्टर आवास पर धरना-अनशन के साथ माइक पर मानस का अखण्ड पाठ प्रारंभ करा दिया। पहले तो कलेक्टर ने सब कुछ अनसुना किया किन्तु जब शिवभक्त बमबम वकील ताण्डव की मुद्रा में आने लगे और लगा कि वे अब नाचने ही वाले हैं। तब कलेक्टर ने सिटी मैजिस्ट्रेट द्वारा प्रस्ताव भेजा कि दशहरा जुलूस के समय नगर में मुकम्मल अमन-अमान के लिए कौन जिम्मेदार होगा। बमबम गुरु तो इसके लिए उधार खाए बैठे थे। उन्होंने धरना स्थल पर ही छाती ठोंक कर कहा कि सारी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ कोई माई का लाल पत्ता भी हिला नहीं सकता। और सचमुच उन्होंने जिम्मेदारी क्या ली कि प्रशासन को मीठी-मीठी नींद का मज़ा ही दस दिनों के लिए मुहैया करा दिया। नगर में किसी ने जरा भी चूँ चपड़ नहीं किया और दस दिन की राम लीला सकुशल सम्पन्न हो गयी। जैसे राम राज्य ही आ गया था। सभी की जबान पर बमबम वकील ऐसे चढ़ गए कि वे जांबाज सहसवार बन गए। उन्होने इलाहाबाद में ऐसा इंकलाब लाया कि वे जिन्दाबाज हो गए। सब जगह उनका परचम फहराने लगा था।

ऐसे सुपिता के सपूत यदि इलाहाबाद में अपनी जमीन नहीं तलाशेगा तब क्या भटियारखाने में जगह ढूंढ़ेगा। जगह ढूंढ़ना ही नहीं जगह बनाने के काम मे कृष्ण दास उसी प्रकार लग गया जिस तरह उसके पिता बमबम महराज ही नही उनके भी पिता अर्थात कृष्ण दास के दादा जी राम प्रसाद दुबे उर्फ रम्मू दुबे ने इलाहाबाद में डाक्टरी फिल्ड में ऐसा डंका बजाया था कि लाइलाज रोगियों को भला चंगा कर हँसते-खेलते घर भेजते थे। मौत के मुँह में गए या यमराज के दूतों से घिरे रोगियों को साफ बचा लेने की हुनर उनके हाथों में थी। यहाँ तक की उमर की बोझ तले दबे काँपते हाथों से भी जिसकी नब्ज़ पर हाथ रख देते थे वह भी चुस्त दुरुस्त होकर ही उनके दवाखने से जाता था। कहने को तो वे सिर्फ आर.एम.पी. अर्थात रजिस्टर्ड मेडिकल पैक्टिशनर थे पर बड़े-बड़े डिग्रीधारी एम.बी.बी.एस., एम.डी., एम.एस. डाक्टरों के कान काटते थे। मरीजों का इलाज करते-करते वे जब थक जाते थे, तो साफ-साफ कह देते थे कि अब रोगी को राम भरोसे छोड़ दो। रोगियों तथा उसके तीमारदारों में रम्मू दुबे नयी जान फूँक देते थे और दस-पन्द्रह दिनों में ही रोगी के मुख पर मुस्कराहट और

रिश्तेदारों पर संतोष बिखेर देते थे। ऐसे नामी-गिरामी रम्मू दुबे का पोता यदि अपनी नयी जमीन न तलाशे तो उसे गंगा में डूब मरना चाहिए। उसे भी तो मैदानी सिपहसालार बनना चाहिए।

कृष्णदास पिछले कई सालों से इसी जमीन तलाशी में लगा रहा। इसीलिए उसने बी.ए. के दोनों वर्षों में छात्र-राजनीति का अध्ययन-अनुशीलन ही नही अनुषंगिक अनुसंधान भी किया जिससे राजनीतिक सूत्र उसकी पकड़ में आने लगे। फिर उसने पोलिटिकल साइंस में एम.ए. ज्वाइन करते ही सारे सूत्रों को समेटकर डोर बना छात्र राजनीति का सूत्रधार बनने का इरादा किया। इसके लिए उसने तेजी से डेलीगेसी और हास्टल के बीच अपने को स्थापित करने के काम मे जी-ज्ञान से जुट गया और छात्र संघ के अध्यक्ष बनने की दौड़ में अपने को झोक दिया। हर छात्र की जबान पर चढ़ने के लिए कृष्ण दास ने कई मोर्चे खोले। जैसे युद्ध के दौरान सेना कोई एक-दो मोर्चा खोलकर चुप नहीं बैठती वरन् उसे तो चौतरफा थल-जल और वायु के मोर्चे एक साथ खोलने पड़ते हैं। उसी तर्ज पर कृष्णदास अध्ययन संबंधी ठोस सुविधाएं समेटने, सिनेमा टाकीज़ में मनोरंजन सबधी अधिकाधिक सुविधाएं जुटाना, इलाहाबाद के दुकानदार छात्रों की माँग पर यदाकदा उन्हें पाकिटमनी देते रहें, पुलिस और प्रशासन छात्रों के छोटे-मोटे अपराधों को क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को अपराध की धुन पर उन्हें नजर अन्दाज़ करें, हास्टल में छोटे-बड़े हथियार जैसे डण्डा-लाठी, पिस्तौल, कट्टा, देशी बम रखने की छूट रहे क्योंकि कभी-कभी इसकी जरूरत आन पड़ती है। जो लड़के भूले भटके कभी-सभी पुलिस कार्यवाही तले आ जायं तो उन्हे जमानत पर छोड़ दिया जाय और मामला ज्यादा संगीन हो तो दिन के समय भले ही उन्हें सेण्ट्रल जेल नैनी में रखा जाय किन्तु शाम होते ही उन्हें हास्टल तक पुलिस पहुँचाने जाय। वर्ष में कम से कम दो बार फिल्मी हीरो-हीरोइन नाइट का आयेजन इलाहाबाद नगर निगम द्वारा किया जाय जिसमें इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टूडेण्ट्स के लिए फ्री पास रहे। स्टूडेण्ट्स को पालिटिक्स की जानकारी के लिए ससद का 'मॉक सेशन' सीनेट हाल में आयोजित हो आदि माँगों का मैनोफेस्टो बुद्धिमान विद्यार्थियों की मदद से कृष्ण दास ने बनवाया तो जरूर किन्तु आशा के विपरीत उसका तेजवलय उतना नहीं बन पाया जितने की जरूरत थी जिसका परिणाम तो चुनाव के बाद आए नतीजे से पता चला कि कृष्णदास का पत्ता साफ था। यद्यपि उसने अध्यक्ष के चुनाव में लाग-डाट के कारण पैसा पानी जैसा बहाया। विभिन्न आकार-प्रकार के कार्ड, उस पर विदेशी परफ्यूम का स्प्रे, पोस्टर, बैनर, नारे आदि से हास्टल, यूनिवर्सिटी बिल्डिंग की दीवारें रंग गयी

थी। गेट पर माइक लगे रिक्शे हफ्तों से डटे थे। जिन लड़कों के गले में तेज-ओज था और जो गर्जन-तर्जन के साथ भीषण भाषण देने क़ाबिल थे। उनका खुलकर उपयोग किया गया। धुँआधार भाषण के साथ-साथ शेरों शायरी, चुटकुले, कविता का दौर तो अच्छा खासा चला। पर सब कुछ ले-देकर प्रवाह उसके विपरीत साबित हुआ और कृष्णदास चारों खाने चित्त हो गया। दोस्तो ने जोरदार, ढाँढ़स बँधाया कि 'गिरते हैं सह सवार ही मैदान जंग में'। इन सबका पूरा पटाक्षेप इस रूप में हुआ कि कृष्णदास एम.ए. की पढ़ाई बीच में छोड़ दिया और अपने व्यावसायिक कारबार में लग गया। इस प्रकार उसने एक साल की कुर्बानी दी और अगले वर्ष के लिए अपने को स्थगित कर लिया।

जैसे केटली के ढक्कन को पूरा बंद कर दिया जाय और नीचे से तेज आग की गर्मी दी जाय तो पानी में उबाल आ जाता है और भाप की ताकत से ढक्कन गिर जाता है। इसी तरह कृष्णदास में एक साल की गर्मी ने उबाल उत्पन्न कर दिया। इस बार उसने ला ज्वाइन कर हिन्दू हास्टल में रहने का इरादा किया। उसे अच्छी तरह से ज्ञात था कि यह वही हास्टल है जिसने देश को कई बड़े नेताओ को दिया है। वह अपने को भी उन्हीं की पंक्ति का एक अनुयायी मानता था। पूर्ववर्ती नेताओं के पद चिह्नों तथा गत वर्ष के अनुभवों से पक कर जुलाई महीने से ही वह यूनियन इलेक्शन में प्रेसीडेण्टशिप के लिए भूमिका बनाने लगा। वैसे तो अभी यूनिवर्सिटी में चुनाव की कोई गर्मी नहीं थी किन्तु कृष्ण दास ने मौलिक रूप में गर्मी पैदा करने तथा उसमें तप कर शुद्ध बाइस कैरेट बनने की व्यूह रचना करने लगा। सबसे पहले उसने तय किया कि नामिनेशन फाइल करने के पूर्व ही विद्यार्थियों के हित के काम हाथ में लिए जाय। इसके लिए उसने हास्टल तथा डेलीगेसी छात्रों का एक दल जो उसके आगे-पीछे चलने वाले थे उनके साथ लम्बी-लम्बी बैठकें उसके कमरे में जमने लगीं। इन बैठकों में नए-नए, नरम-गरम मुद्दे खोज-खोजकर निकाले जाने लगे। इस बैठक का एक दृश्य ऐसा था।

कृष्णदास - मित्रों आप लोग ऐसे ज्वलन्त मुद्दों की तलाश करें जिसे उछाल कर हम चुनाव जीत सकें। यह भी याद रहे कि ये मुद्दे किसी और के हाथ मे जाने न पाये।

लाखन - यह कैसे हो सकता है। हम अपने मुद्दे चोरी तो होने नहीं देगे।

जगत - पाटनर! आज क्या चोरी नहीं होता सिर्फ वस्तुओं की ही चोरी नहीं होती। अब तो विचारों की भी चोरी होती है।

सुखदेव- मेरा नाम सुक्खा है। इलाहाबाद के लोग मुझे इसी नाम से जानते है। कौन साला हमारी चीज छू सकता है। मैं चीर कर धर नहीं दूंगा। किसमे ताकत है हमारी चीज छीनने या चोरी करने की। दो-चार को तो मैं अकेले ही निपटा दूँगा। जरा हमारे दल पर कोई हाथ लगा कर देख तो ले। हम उसे मिटा देगे किशन गुरू....।

कृष्णदास - सुक्खा पाटनर तू तो हमेशा मरने-मारने को तैयार रहता है। लडाई-झगड़े पर हम उतर आयेंगे तो चुनाव कैसे जीतेंगे। याद रखो पहला काम तो चुनाव जीतना है। मरने-मारने की तो उमर पड़ी है। हाँ चलो लाखन मुद्दे की बात चल रही थी। हम उसी पर आ जायें।

लाखन - मैं चाहता हूँ कि यूनिवर्सिटी में शहर के ही लड़के नहीं वरन् ग्रामीण क्षेत्रों के भी लड़के रोज-रोज इलाहाबाद आते-जाते हैं। उनके आने-जाने मे ही घर वालों का ढेर सारा पैसा खर्च होता है जो किताब-कापी के अलावा होता है। क्यों न विद्यार्थियों को रेलवे या बस में आने-जाने की निःशुल्क सुविधा दी जाय। इससे गरीब विद्यार्थियों को बहुत बड़ा लाभ होगा।

जगत - पार्टनर इससे भी बड़ा मुद्दा मैं बताने जा रहा हूँ जिसमें समूचे विद्यार्थी वर्ग का हित है। फिल्म इण्डस्ट्रीज़ के हीरो-हीरोइन साल में कम से कम एक प्रोग्राम सीनेट हाल में विद्यार्थियों के लिए दें ही। यदि वे इस पर तैयार नही होते तो हम उनका बम्बई से कलकत्ता आना-जाना बन्द करा देंगे। आखिर उन्हे इलाहाबाद होकर ही जाना है।

सुखदेव- तीसरा मुद्दा मेरी ओर से यह रहेगा कि हास्टल में पुलिस कभी न घुस सके....

कृष्णदास - आई आब्जेक्ट हियर। हास्टल में ही क्यों। यूनिवर्सिटी कैम्पस मे भी कभी पुलिस न आये। यह तो विद्या मन्दिर है सरस्वती का अपमान होगा।

लाखन - अरे...रे...रे... एक बेहतरीन और बड़ा मुद्दा छूटा जा रहा है। हम लोगों के हाथों से फिसला जा रहा है। अरे टाकीज़ की फिल्मों के बारे में तो कुछ नही सोचा गया है। हम चाहते हैं कि हर शो पर हमें आधा कन्सेशन मिला करे।

सभी लोगों ने एक मत से मुद्दों के बाल की खाल खींचने के बाद तय किया कि इसी पर अध्यक्ष पद के लिए कृष्णदास को खड़ा किया जायगा और उन्हें हर हाल में जिताया जाएगा। इसके लिए जान की बाजी भी लगा देंगे। आखिर जीतने के बाद हमी लोग तो यूनियन के कर्णधार रहेंगे। इस सुनहले अवसर को किसी तरह से हाथ से जाने नहीं देंगे। हर पहलू पर विचार-विमर्श कर लाइन ऑफ एक्शन

यह तय किया गया कि कल से ही विद्यार्थियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कुछ कार्यों का शुभारंभ किया जाय। इस निष्कर्ष और निर्णय के बाद हाई पावर कमेटी की मीटिंग समाप्त हो गयी और सभी अपने-अपने कमरे में जाकर कल की योजना पर चिंतन-मंथन करते करते सो गए।

दूसरे दिन फ्रण्ट खोलने की ग़रज़ से सुक्खा एण्ड कम्पनी को पता नही क्या सूझा कि वे मैटिनी शो देखने के बहाने मान सरोवर टाकीज़ जा पहुँचे और टिकट कन्सेशन को लेकर वहाँ मैनेजर से उलझ गए। मैनेजर ने फर्स्ट वीक शो की बात लेकर उन्हें लाख समझाने-बुझाने की कोशिश की किन्तु सब व्यर्थ था। वे तो लड़ने-झगड़ने को उधार खाये बैठे थे और जबर्दस्ती टाकीज़ में फिल्म देखने घुसे जा रहे थे। गेट कीपर के रोकने पर मारने-पीटने, हाथा-पाई करने लगे। बात-बढ़ते देख टाकीज़ के सारे कर्मचारी इकट्ठा होकर सुक्खा एण्ड कम्पनी की अच्छी आवभगत की। पिटे हुए प्यादा की तरह जब चारों हिन्दू हास्टल पहुँचे तब उनकी हालत देखने लायक थी। सभी के कुर्ते पायजामे फटे-कीचड़ सने थे। जगह-जगह खून के धब्बे सारी कथा अपने आप कह रहे थे। बस थोड़ा बहुत नमक-मिर्च मसाले की जरूरत थी जिसे लड़कों ने कही कुछ सुनी कुछ के आधार पर ऐसा रूप दिया कि एक हाथ ककड़ी और नौ हाथ बीज का रूप ग्रहण किया।

दोपहर तक सारे हास्टल में जंगल की आग की तरह यह खबर फैल गयी कि हिन्दू हास्टल के चार लड़कों को मान सरोवर टाकीज़ के कर्मचारियों ने इतना मारा कि दो की हालत नाज़ुक है। उन्हें कई टाँकें आए हैं और अस्पताल में वे भर्ती हैं। इतना सुनना था कि हिन्दू हास्टल के सभी लड़के जुलूस की शक्ल मे सड़क पर उतर आए। कृष्ण दास की अगुआई में सारे लड़के कलेक्टर के बंगले की ओर नारे लगाते हुए चल पड़े। हिन्दू हास्टल के नाम का एक बैनर लिए लड़के आगे-आगे चल रहे थे। बीच में बहुत सारे लड़के इस जुलूस में शामिल हो गए। इन्कलाब-जिन्दाबाद, स्टूडेण्ट यूनियन जिन्दाबाद, कृष्णदास जिन्दाबाद, हमारा नेता कृष्णदास.... कृष्णदास..... आदि नारों के साथ जुलूस कचहरी पहुँचा। वहाँ पता चला कि कलेक्टर साहब एक मीटिंग में हैं। इन्तज़ार के बाद पॉच लड़कों का डेलीगेशन उनसे मिलने गया जहाँ उन्होंने माँग की कि मानसरोवर टाकीज़ के मैनेजर को अरेस्ट किया जाय और उनके कर्मचारियों पर मुकदमा चलाया जाय तथा टाकीज़ को इनडिफिनिट पीरियड के लिए बन्द किया जाय। कलेक्टर ने उन्हें समझाया कि हम उन पर उचित कार्यवाही करेंगे आप लोग ला एण्ड आर्डर अपने हाथ में न लें।

लड़के तो उबल रहे थे। वे कुछ करना ही चाहते थे। जुलूस सहित वे विश्वंभर पैलेस के पास जमा हो गए और नारे लगाते हुए मान सरोवर टाकीज़ की ओर बढ़ने लगे। तभी पुलिस और पी.ए.सी. वाले मान सरोवर को चारों ओर से घेरने लगी। लड़कों ने उन पर ईट-पत्थर चलाना शुरू कर दिया जिसमें जनता भी भागीदार बन गयी। नौजवान लोग गलियों से निकलकर पुलिस वालों पर ईट-पत्थर बरसा कर भागने लगे। कुछ लोगों ने तो पुलिस वालों की ही लाठियाँ छीनकर उन्हें तबियत भर धुनकर रोड पर छोड़कर भाग खड़े हुए। हालत बिगड़ती देखकर सिटी मैजिस्ट्रेट ने हवाई फायर का आदेश दिया। बन्दूकें हवा मे धायँ-धायँ गरजने लगीं। जनता जान बचाकर भागने लगी। दुकानदार धड़ाधड दुकान बन्द करने लगे। खोमचे वाले अपना खोमचा लिए गालियों में छिपने-भागने लगे। सिर पर खोमचा लिए तेजी से आगने पर कितनों के खोमचे रास्ते मे ही गिर कर बिखर गए। रिक्शे वाले, साइकिल वाले जान बचाकर भागने लगे। पुलिस वाले भागती जनता पर दौड़ा-दौड़ा कर लाठियों की बरसात कर रहे थे। इस बीच बहुत बुज़ुर्ग किस्म के चार-छह व्यक्ति पुलिस वालों को हिंसा करने से रोकने के लिए बारम्बार हाथ जोड़ रहे थे। उन्हें क्या पता कि ये गांधीवादी अहिंसा के पुजारी हैं। उन्होंने आव देखा न ताव उन पर भी डण्डा चला ही दिया। उनमें से एक सर्वोदयी गनपत लाल तो दूसरे गांधीवादी अहिंसक जय राम दास थे। सर्वोदयी हाथों पर डण्डा झेलते-झेलते स्वयं भूमि पर गिर कर अस्त हो गए। अब उनमें उठने-चलने का ताब भी न था। अहिंसा की उपासना करने वाले जय राम दास हाथ जोड़े के जोड़े खड़े अहिंसा का पाठ पुलिस वालों को पढ़ा ही रहे थे कि वे इतने हिंसक हो गए कि उनके गंजे सिर पर टन्न से एक डण्डा जड दिया। उनका चश्मा चार भागों में बंट कर चारों दिशाओं में गिरकर हिंसा के बदले अहिसा का संदेश देने लगा। वे लहूलुहान होकर सिर पकड़कर भूमि पर बैठ गए। जहाँ से दो स्वयं सेवक नुमा नौजवान उन्हें उठाकर जल्दी से गलियो का रास्ता नापा। अन्यथा बूढ़े गाँधीवादी की इससे भी बुरी दशा होती क्योकि पुलिस वालों के सम्मुख हिंसा ही एक मात्र मार्ग है। दूसरे अहिंसक मार्ग को तो वे जानते भी नहीं।

कृष्णदास जब भाँप गया कि मामला उल्टा ही होता जा रहा है तब उसने सुक्खा एण्ड कम्पनी को इशारा किया कि अब यहाँ से नौ दो ग्यारह होना ही ठीक है। उधर जीरो रोड की ओर से गोलियाँ चलने की आवाज़ आ रही थी तो इधर लोग सिर पर पैर रखकर भाग रहे थे। तुरत-फुरत वे एक रिक्शे पर बैठकर साथियों समेत जोर जोर से चिल्लाते की ओर भागे जा रहे थे कि देख

लो भाइयों पुलिस के अत्याचार....निहत्थे लड़को पर पुलिस ने कैसा गोलियो तथा लाठियों से वार किया। हमारे साथी कृष्णदास को गोली लगी है। पुलिस की यह बर्बरता बर्दास्त नहीं की जायेगी। आजाद देश में विद्यार्थियों पर अकारण ही पुलिस का हमला घोर निन्दनीय है। हम नगर बन्द कर इसका प्रशासन से जवाब तलब करेंगे। चिल्लाने वाला लड़का जोर-जोर से चिल्लाते हुए- कृष्णदास जिन्दाबाद, कृष्णदास जिन्दाबाद के नारे लगाता जा रहा था।

कृष्णदास बाएँ पाँव में ब्लेड से एक चीरा बना कर तड़पता-चिल्लाता जा रहा था। पुलिस की गोली पाँव को पार कर गयी। हम इस खून का बदला जरूर लेगे। विद्यार्थियों के शान्ति प्रिय जुलूस पर पुलिस ने बड़ी घिनौनी कार्यवाही की है। इलाहाबाद का हर विद्यार्थी इसका जवाब माँग रहा है। और पुलिस को जवाब देना पड़ेगा। चिल्लाते हुए वे सब कालविन हास्पिटल जा पहुँचे और डाक्टरो से अपने इलाज की बात कहने लगे। उन्होंने देखा कि इन विद्यार्थियों का मामला उतना गम्भीर तो नहीं है जितना शोर-शराबा मचाया जा रहा है। उसी दिखावे के अन्दाज़ से वे उनके इलाज में जुट गए। उन्हें भर्ती कर वार्ड में बेड दे दिया। कृष्णदास के साथ सुक्खा एण्ड कम्पनी अस्पताल के कपड़े पहन कर बेड पर लेट-बैठ गए और आपस में राजनीति करने लगे। यह वार्ड अब तक विद्यार्थियो की भीड़ से भर गया और उनके हँसी-मज़ाक़ के दौर चल पड़े। वहाँ राजनीति की गोटें बिछने लगीं।

तभी अचानक इमरजेंसी वार्ड में सिटी कोतवाल मिश्रा साहब हताहत अवस्था में पाँच-सात पुलिस वालों के साथ भर्ती होने आ गए। वे नीम बेहोशी की हालत में थे। उनके आते से ही डाक्टरों का दल उन्हें घेरकर उनका उपचार करना लगा। उन्हें शीघ्रता से बेड पर लिटाकर उनके शर्ट की बटन खोलकर डाक्टर उनके सीने पर मालिश करने लगे। सम्भवतः उन्हें कोई पत्थर लगा था। जिससे वे पीड़ा से तड़प रहे थे। कुछ लड़के आस-पास खड़े थे वे इस भय से भाग खड़े हुए कि कहीं वे इस केस में फँसा न लिए जायें। सिटी कोतवाल को इन्जेक्शन और एक्स रे आदि की कार्यवाही डाक्टर जल्दी-जल्दी करने लगे। सिटी की स्थिति नाज़ुक होती जा रही थी। जहाँ-तहाँ लोग घायल होकर वे या तो पुलिस की लाठियों से या जनता की ईंट-पत्थरों से आहत अस्पताल पहुँचाये जा रहे थे। तीस-चालीस लोग तो थोड़े से अन्तराल में ही अस्पताल लाये गये थे। इससे शहर की नब्ज़ का अन्दाज़ यह लग रहा था कि शहर बिगड़ी हालत मे है और लड़कों का यह उपद्रव कोई भी रूप ले सकता है।

बिगड़ी स्थिति को ध्यान में रखते हुए पुलिस की एक वाहन में माइक द्वारा एनाउन्स किया जा रहा था कि मुख्य शहर के अधिकांश मुहल्लों में कर्फ्यू शाम सात बजे से सुबह सात बजे तक लगा दिया गया है। आप लोग जल्दी से जल्दी अपने घरो को पहुँच जायँ। पकड़े जाने पर सीधे जेल भेजे जायेंगे। दुकानदारों, दफ्तरवालो, राहगीरों सभी को इत्तला की जाती है कि सभी लोग अपने-अपने घरों में बन्द हो जायें। इस सूचना ने लोगों में जल्दबाजी पैदा की। लोग एक दूसरे से पूछते, पता करते बाजारों से अपने घरों को भागने लगे। सबसे पहले तो रिक्शे वाले, खोमचे वाले, सब्जी वाले अपने सामान समेट कर भागने लगे। दुकानदार जो फुर्सत से धीरे-धीरे दुकान बढ़ाते थे और लगे हाथ आए हुए ग्राहकों को भी निबटा देते थे अब ग़ज़ब की तेजी दिखाकर ताबड़तोड़ दुकान बन्द करने में जुट गए। कोई-कोई तो अपने बेटे, भाइयों या नौकरों को जल्दी दुकान बन्द करने को आँख दिखाते हुए कड़क आवाज में हुक्म दे रहे थे। देखते-देखते बाजारों में संध्या के साथ सन्नाटा उतरने लगा और कोतवाली की दोनों पट्टी में पुलिस और पी.ए.सी. के जवानों की गाड़ियाँ ठसा-ठस लग गयीं। बन्दूकधारी पी.ए.सी. के जवान तथा लट्ठधारी पुलिस वाले सड़कों पर चलहकदमी कर रहे थे। बीच में इक्का-दुक्का लोग चौकन्ने होकर अपने घरों को तेज कदमों या रिक्शे पर भगे जा रहे थे। धीरे-धीरे कर्फ्यू की छाया फैलती जा रही थी और पुलिस - प्रशासन के तले नगर आता जा रहा था।

प्रशासन ने अपने गुप्त निर्देश में यह तय किया कि इस सारे उपद्रव की जड मे कौन-कौन लोग हैं और उन्हें वारण्ट के तहत कैसे गिरफ्तार किया जाय। एक ओर उनकी यह योजना बन चुकी थी तो दूसरी ओर लड़कों को भी जानकारी मिल चुकी थी कि कृष्णदास और सुक्खा एण्ड कम्पनी का वारण्ट है। साथ ही मंगल मिश्र का तो गैर जमानती वारण्ट है। यदि वह पकड़ में आ जायेगा तो पुलिस उसकी खूब आवभगत-स्वागत सत्कार किए बिना नहीं छोड़ेगी। कोर्ट और जेल में तो बाद में भेजा जायेगा पहले तो उसकी जोरदार खातिरदारी की जायगी क्योंकि सारे झगडे की बुनियाद तो पुलिस की नज़र में मंगल मिश्र ही है। जिसके पकड़ने के लिए पुलिस का विशेष दल तो लगा था और खुफिया पुलिस भी हाथ धो कर पीछे पड़ी थी किन्तु मगल मिश्र का कहीं अता-पता नहीं लग रहा था। वह हास्टल बदल-बदल कर सदा लड़कों के बीच रहता था। कभी-कभार उसे दो लड़कों के कंधों के सहारे औसत से ज्यादा लम्बा कुर्ता पैजामा में बड़े बालों के घेरे में उसका मुख दीख जाता था। वह यूनियन भवन की भीड़ में सदा बना रहता था। और किसी भी स्थिति में यूनिवर्सिटी कैम्पस से बाहर न निकलने की शपथ ले चुका था क्योंकि उसे पुलिस की एक-एक चाल की पूरी जानकारी थी

कालविन अस्पताल में भर्ती सभी लड़कों को पक्की जानकारी मिल गयी थी कि किसी भी वक्त उन्हें पुलिस गिरफ्तार कर सकती है। इसलिए अस्पताल से चुपचाप भागकर सभी को हास्टल में ही छिपना चाहिए नहीं तो सुबह होने के पहले सभी अरेस्ट हो जायेंगे। सभी ने मिलकर जल्दी ही परामर्श किया कि अस्पताल के कपड़े उतार कर अपने-अपने कपड़े पहन कर बिना किसी को बताये वार्ड से रफू चक्कर हो गए। बाहर आकर दो-तीन रिक्शा कर वे सभी सीधे हिन्दू हास्टल में जा पहुँचे। उनके आते ही हास्टल के सारे लड़कों ने उन्हें घेर लिया। कुछ लड़के जो बिस्तर पर झपकी में थे या नींद में थे वे भी उठ बैठे और कल की आगामी योजना में उलझ गए। सभी ने मिलकर एक संघर्ष समिति का गठन किया जिसमें एक हाई पावर कमेटी बनायी गयी जिसमें सभी हास्टल के दो-दो प्रतिनिधि रखे गए। इस कमेटी के अध्यक्ष कृष्णदास तथा मंगल मिश्र, लाखन, जगत, सुखदेव आदि हाई पावर में पदाधिकारी बने। शेष प्रतिनिधियों को सदस्य बनाया गया। यह भी निर्णय लिया गया कि कल सुबह दस बजे यूनियन हाल में एक मीटिंग होगी। जिसमें निर्णय लिया जायेगा कि पुलिस के दमन के विरोध में कल क्या किया जाय। दूसरी उड़ती-उड़ती खबर यह है कि शायद कल से यूनिवर्सिटी अनिश्चित काल के लिए बन्द  होने वाली है। यह तो विद्यार्थियों के लिए सबसे बुरी खबर होगी। हमारे आन्दोलन को कमजोर करने की साज़िश चली जा रही है और पुलिस को दमन के लिए मारल सपोर्ट दिया जा रहा है। कितनी बेतुकी बातें होने जा रही है। इस पर कृष्णदास और मंगल मिश्र बहुत चिंतित नज़र आ रहे थे।

दूसरे दिन प्रातः काल लीडर, भारत अमृत बाजार पत्रिका में मान सरोवर काण्ड का विस्तार से फोटो सहित समाचार छपा था जिसमें घायलों की संख्या गम्भीर हताहतों का समाचार था। आगजनी, गोली चालन, लाठी-डण्डा की घटनाओं का रिपोर्ताज़ छपा था। सर्वोदयी और गाँधीवादी कार्यकर्ताओं की खबरें रोचक बनाकर बाक्स में छपी थी। समाचार पत्र की खबरें पढ़-पढ़कर लड़के उत्साह से भर गए थे। उन्हें अपने हीरोपन पर गर्व हो रहा था। एक ही दिन में कृष्ण दास, मंगल मिश्र, लाखन, जगत, सुखदेव सभी लड़कों की जबान पर चढ़ चुके थे। वे यूनिवर्सिटी के नायक बन गए थे। लेकिन इस खबर से बेहद परेशान थे कि यूनिवर्सिटी को अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिया गया है। वे सभी यूनिवर्सिटी एथरिटी पर क्रोध से उबल रहे थे। उन्हें सचमुच लग रहा था कि एथरिटी ने जानबूझ कर उनके मार्ग में काँटे बिछाकर परेशानी पैदा की है। सबने आगामी योजना के रूप में लाखन को हास्टल क्षेत्र तथा जगत और

सुक्खा को डेलीगेसी क्षेत्रों में कल सुबह माइक से एनाउन्स करने का कार्य भार सौपा कि ग्यारह बजे यूनियन हाल में एक हँगामी मीटिंग होगी जिसमें आगामी योजना तय की जायगी।

दूसरे दिन यूनियन हाल में समय से पहले ही लड़कों की भीड़ एकत्र होने लगी। जिसमें हास्टल वालों की संख्या तो लगभग शत प्रतिशत थी किन्तु डेलीगेसी वाले भी काफी आ गए थे। निश्चित समय से पहले ही माइक पर देशभक्ति संबधी गीत हाल में तथा हाल के बाहर गूँज रहे थे। लगभग ग्यारह बजे कृष्णदास, मंगल मिश्र, लाखन, जगत, सुक्खा आदि आ गए। मंगल मिश्र ने उन्हीं दो लड़कों के कधों के सहारे हाल में प्रवेश कर पहले माइक सम्भाला फिर विषाद भरी तथा लडखड़ाती आवाज़ में लड़कों को सम्बोधन से पूर्व यूनियन हाल के सम्मुख लाल पद्मधर सिंह की प्रतिमा के समक्ष शपथ लेने का अनुरोध किया। सारे लड़के वहाँ एकत्र हो गए। तत्पश्चात माइक पर मंगल मिश्र की आवाज गुंजी - साथियों पुलिस के दमन का बदला तो हमें लेना ही है। कल किस प्रकार पुलिस ने हमारे निहत्थे साथियों पर लाठी-डण्डा तथा गोलियाँ बरसायी थीं। इसके प्रमाण हमारे घायल साथी हैं जिसमें मैं भी शामिल हूँ। अब हमारे साथी कृष्णदास हाल में आप सबको सम्बोधित करेंगे। अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठा कृष्णदास माइक पर अपनी ओजमयी वाणी में कहना प्रारम्भ किया - साथियों पुलिस का दमन हमारे लिए कोई नयी बात नहीं है। सन् बयालिस में भी हमने इसका सामना किया था। लाठी-डण्डा-गोलियाँ सब कुछ अपनी छातियों पर झेला था। और स्वतंत्र भारत में भी यही सब हो रहा है। हर बार पुलिस प्रशासन को हमने परास्त किया। पुलिस ने जो हम लोगों के खिलाफ वारण्ट निकाले हैं वह बेमानी है। उसे रद्द कराना है। कलेक्टर से आज हम सब मिलेंगे और उसे निरस्त करा कर रहेंगे। हमने तो कोई गलती की ही नहीं है। जिन्होने गलती की है वे मजे से टाकीज़ में पिक्चर चला रहे हैं। थोडी देर में हम लोग जुलूस लेकर कलेक्टर के पास जायेंगे और उनसे मिलकर अपनी बात कहेंगे। ऐसा ही हुआ जुलूस कलेक्टर के पास गया और उनसे मिलकर अपनी सारी बात बता दी। कलेक्टर ने लड़कों के मामले को यहीं समाप्त करने के उद्देश्य से उनसे लिखित में स्टेटमेन्ट लिया कि अब वे इस तरह की स्थिति निर्मित नहीं होने देंगे बदले में लड़कों पर से सारे पुलिस केस वापस लेने की घोषणा की। लड़कों ने इसे अपनी जीत समझ कर शहर में जुलूस घुमाते रहे कि हमारी शानदार जीत हुई है। अभी तो यह अंगड़ाई है आगे और लड़ाई है। आगे की भी लडाई हम जीतेंगे। सभी विद्यार्थियों को विश्वास हो गया कि कृष्णदास यूनियन प्रेसीडेण्ट तो होकर रहेंगे

# छह

ज्यादातर लोगों का जीवन अत्यन्त सीधा-सपाट, ढलावदार, कम उतार-चढावदार, कम घुमावदार होता है जिस पर वे एक ही चाल से कदमताल करते चलते चले जाते हैं। ये ज़िन्दगी में न ज्यादा पाते हैं और ना ही ज्यादा खोते हैं। किन्तु कुछ लोगों का जीवन बड़ा घुमावदार-चक्करदार, उतार-चढ़ावदार होता है। वे एक ही ज़िन्दगी में कई-कई बार कई-कई ज़िन्दगी जीते-मरते, जन्मते-मिटते, डूबते-उतराते, चलते-चिल्लाते नज़र आते हैं। इसी लीक पर जानकी बाई भी चली थी। एक ही समूची ज़िन्दगी में कई बार मरी थी फिर जी गयी थी। मरने-जीने का क्रम कई बार उसकी ज़िन्दगी में धूप-छाँह की तरह आता गया और उसे अंधेरा-उजाला का अहसास कराता गया। वह बनारस के 'बरना पुल' मुहल्ले मे एक यादव परिवार में जन्मी थी। उसके पिता का नाम शिवबालक राम तथा माँ का नाम मानकी था। उसकी एक सौतेली माँ लक्ष्मी भी थी जो उसके पिता की रखेल थी। जानकी इसे चाची कह कर पुकारती थी। किन्तु लक्ष्मी का पुराना आशिक थाने का एक दीवान रघुनंदन भी था जो लक्ष्मी से गुपचुप मिलने शिवबालक की दूध-मिठाई की दुकान पर आता था। शिवबालक को इसकी कोई जानकारी न थी। जानकी सयानी हो चुकी थी उसे इसकी सब जानकारी थी। लक्ष्मी उसे अपने मार्ग का काँटा समझकर जब-तब झूठी शिकायतें कर शिव बालक से जानकी को डंडों से पिटवाती थी।

एक दिन घर में कोई नहीं था सिर्फ लक्ष्मी थी। रघुनंदन दीवान चुपचाप आ गया और लक्ष्मी के साथ प्रेमालाप करने लगा। इस बीच जानकी आ गयी। सब कुछ देखकर अनजान बनते हुए बाहर चली गयी। दोनों की बदकारी पकडी गयी। जानकी दोनों की आँखों की किरकिरी बन गयी। लक्ष्मी बाहर चली गयी। रघुनदन घूम-फिरकर फिर आया। जानकी से बातें करने लगा। किसी काम से जानकी

आगन में गयी तो पीछे-पीछे रघुनंदन दीवन भी चला गया फिर बर्फी काटने वाली छुरी से जानकी को मारने लगा। जानकी लहूलुहान हो गयी और आगन उसके खून से लाल हो गया। रघुनंदन पीछे के दरवाजे की कुंडी खोल कर ग़ायब हो गया। लक्ष्मी रोने-चिल्लाने का नाटक करने लगी जिससे भीड़ जमा हो गयी।

जानकी को अस्पताल ले जाया गया। जहाँ डाक्टरों ने उसका इलाज किया। उसके शरीर पर कुल छप्पन घाव थे। लगभग सात-आठ माह अस्पताल मे रहने और ठीक होने के बाद जानकी घर वापस आ गयी। इसके पहले ही एक दिन लक्ष्मी चुपके से सारे गहने, रुपए-पैसे लेकर चम्पत हो गयी। इससे शिव बालक की तो जैसे कमर ही टूट गयी। उधर रघुनंदन पर कत्ल के प्रयास का मुकदमा चलने लगा। शिव बालक पर सुलह के लिए पुलिस का दबाव बढने लगा। एक दिन वह भी चुपचाप घर से भाग खड़ा हुआ। बाद में रघुनंदन को काले पानी की सज़ा हुई।

अब माँ-बेटी मानकी और जानकी अकेली रह गयीं। उनकी दो जून की रोटी भी मुश्किल हो गयी। एक परिचित पार्वती भाटिन के जाल में फँस कर घर द्वार भैंस गिरवी रखकर दोनों पार्वती की दूर की मौसी जो नाचने-गाने का पेशा करती थी। उसके घर इलाहाबाद आ गयीं। मानकी जानकी को पता भी नहीं चला और यहाँ दोनों का गुपचुप सौदा हो गया। दोनों फूटफूट कर रोयीं और अपने भाग्य को खूब कोसा। इस बीच पार्वती की मौसी घर छोड़कर चली गयी। यह मानकी जानकी के हक़ में अच्छा ही हुआ। यहाँ जब जानकी कुछ गाने गुनगुनाती तो उसकी गुनगुनाहट में मानकी को दोनों का उज्जवल भविष्य दिखायी देने लगा। अब उसने जानकी को गाना सिखाने के लिए उस्तादों से बातचीत की। उसकी गाने की नियमित तालीम शुरू हो गयी। मंजे हुए उस्तादों, तबला वादको के ठेका, संरगी वादक मीरासी की धुनों के बीच जानकी बाई के गले की ध्वनि खुलती-खनकती गयी। वह चार-चार, पाँच-पाँच घण्टे रोज रियाज़ करती। जिससे उसके गाने का रंग जमने लगा। गाने के ईश्वरीय वरदान को उसने मन लगा कर सँवारा सहेजा। उसके पास गले का वह जादू था जो लोगों के सिर चढकर बोले बिना रह ही नहीं सकता था। साल भर बीतते न बीतते जानकी बाई छप्पन छुरी का कोठा नगर में मशहूर हो गया। अब वह मुजरा के लिए

इलाहाबाद के रईसो के यहा शादी ब्याह के अवसर पर पेशगी देकर बुलायी जाने लगी। उसने ऐसा गला पाया था कि जिसके दम पर जानकी बाई छप्पन छुरी भीड़ में कजली, सावन, झूला, लावनी, चैती, फगुआ, बारहमासी, भजन आदि ऐसे मोहक मधुर स्वर में गाती थी कि लोग सुनकर झूम-झूम उठते थे।

बिना विश्राम किए या पानी आदि पिये वह दो-दो तीन-तीन घण्टे लगातार गाती थी। उसके हर गाने में वही पैनापन, कशिश, खनक, खरापन होता मानो दिल की खराद पर चढ़कर गाने बाँकपन लिए झरने की तरह झरते थे। गानों की रियाज़ करके जानकी बाई ने उसमें वह रवानी पैदा कर लिया था कि लोग एक गाना सुनते थे तो दो की भूख बढ़ जाती थी और जब दो सुनते थे तो चार की प्यास बढ़ती थी। ऐसा होते-होते शुरू से अन्त तक उसके एक-एक गाने सुनते थे और जी भर कर दाद देते थे। बीच-बीच में वे जानकी बाई छप्पन छुरी को छूट देने में चाँदी के ठनकउवा रुपयों की बरसात करने में भी नहीं चूकते थे। ऐसी लम्बी रातें जानकी बाई की तथा उनके सुनने वालों की होती थी जो एक तरह से थम जाती थी और लोग सारी सुध-बुध खो देते थे। जब सुबह का सूरज चमकने लगता तब कहीं जाकर महफ़िल खत्म होने को होती। अब वह सिर्फ इलाहाबाद के रईसों के ही यहाँ नहीं वरन् मुजरे के लिए लखनऊ, बनारस, कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई आदि जगहों में जाने लगी। पाँच रुपये में मुजरा शुरू करते-करते अब जानकी बाई छप्पन छुरी हजार-बारह सौ रुपयों में मुजरा करने लगी। यह उसकी ज़िन्दगी के चमकदार दिन थे। सारे उत्तर भारत में उसने काफी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी।

पता नहीं क्यों जानकी बाई को उसकी जन्मभूमि उसे बनारस खींच ले गयी और वह आनन-फानन में अपनी माँ तथा साथियों के साथ बनारस चली गयी। वहाँ उसने मुजरा की दुनिया में बेजोड़ नाम कमाया। शहर के नामी गिरामी रईसों, राजे-रजवाड़ों तक उसकी तूती बोलने लगी। ऐसी स्थिति में एक ओर प्रतिद्वंद्वियों - विरोधियों की आँखों की किरकिरी बनना तथा दूसरी ओर क़द्रदानो के दिलों पर बढ़ता राज्य अत्यन्त स्वाभाविक है। सामान्य आदमी इतना नीचे भी गिर जाता है कि अपने सामने की सारी रुकावटें-बाधाएं-व्यवधान सब कुछ मिटाकर अपना रास्ता साफ रखना चाहता है। यह ऐसी मानवी प्रवृत्ति है जिससे

मानव मात्र ग्रस्त पाया जाता है। जानकी बाई के मुजरे की शोहरत से भयभीत किसी ने एक नामी गिरामी गुण्डे को जानकी बाई को हमेशा के लिए अपने रास्ते से हटाने का पुख्ता इन्तज़ाम किया। वह बदमाश कई दिनों से मौके की ताक मे था। जैसे दिन-रात का, सुख-दुख का, रोने हँसने, गरीबी-अमीरी का संयोग है उसी तरह भाग्य - दुर्भाग्य का भी बहुत नजदीक का संबंध है। इसे यों भी माना जा सकता है। कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। लम्बे समय तक जानकी बाई का भाग्य अनुकूल था। वह अकेले-दुकेले, दिन-रात, बाहर-भीतर कहीं भी पहले की तरह आती-जाती थी। उसे जरा भी शक़ सुबह नहीं था कि उसके पीछे कोई साज़िश बनायी गयी है। एक तरह से जानकी बाई बेफ़िकर थी कि भला उससे किसी का क्या लेना-देना किन्तु जब दुर्भाग्य आता है तो अपनी छाया भी नही देता। उसका दुर्भाग्य एक मुजरा मुकाबले में जीत के बदले में आया। जीतने और भारी भरकम नाम-दाम इनाम-इकराम पाने के बाद जानकी बाई सब कुछ भूल गयी थी किन्तु इन्तकाम की आग में जलने वाली को चैन कहाँ। उसे तो जानकी बाई के अन्त में ही चैन दिखाई दे रहा था।

एक दिन जानकी बाई दोपहरी में तांगे पर अकेले ही अपने घर लौट रही थी कि पीछे लगे बदमाश ने सुनहला मौका समझ कर दिन दहाड़े ही उस पर चाकू लेकर टूट पड़ा। और चाकू से लगातार प्रहार करता गया। जानकी बाई जब तक कुछ समझ पाती और बचने का उपाय करती तब तक तो बदमाश उसे चाकुओं से गोदता ही गया। वह लहूलुहान हो गयी और बचाव के लिए शोर मचाने लगी। लेकिन क़ातिल के हाथ में खून लगा चाकू और उसके वार करने के वहशीपन को देखकर बड़े-बड़े हिम्मतवालों का जोश कपूर की भाँति उडता नजर आ रहा था। किसी में ऐसी हिम्मत-हौसला नहीं था कि जानकी बाई को बचाने जाता। सभी खड़े-खड़े एक दूसरे का मुख देख रहे थे। उसकी चीख-पुकार सब बेकार जा रही थी। भीड़ में इतना साहस नहीं था कि एक साथ लोग मिलकर उस बदमाश पर टूट पड़ते और उसे दबोच कर, बेकाबू कर देते। जब चाकुओ से मारने का उसका जनून कुछ कम हुआ और जानकी बाई को मौत के दहलीज पर समझ कर वह चाकू सहित भाग निकला। अब तक वह चाकुओं के घावो से निढाल हो गयी थी और उसकी आवाज़ तक गुम हो गयी थी।

लोगों ने साफ-साफ समझ लिया कि जानकी बाई के प्राण पखेरू अब शायद ही बचे हों। वह तो लगभग अधमरी सी हो गयी थी। उस बदमाश के भाग जाने के बाद भी लोगों की हिम्मत जानकी बाई के पास जाने की नहीं हो रही थी। वे सब जानते थे कि बदमाश तो हक्का पहलवान है जो कि शहर का सबसे बडा गुण्डा है। क्या पता वह फिर आ धमके और जानकी बाई के टुकड़े-टुकड़े करके उसकी लाश बोरे में भर कर उठा ले जाय। उसके आतंक से सभी तमाशबीन बने खडे थे। तभी कहीं से महारानी जी की सवारी उधर से निकली। सारा दृश्य देखकर के चकित रह गयीं। कोचवान से बग्गी रोकने को कहा और सारा माजरा पता लगाने को कहा। रानी साहिबा को ज्यों ही खून का मामला पता चला तो तुरत ही उन्होंने अपने ए.डी.सी. को आदेश दिया कि इस घायल लड़की को तुरत अस्पताल पहुँचाओ और डाक्टर से कहो कि मेरा हुक्म है यह लडकी एकदम ठीक होनी चाहिए। इस पर जो भी खर्च आयेगा उसे मैं दूँगी। इसके इलाज में कोई कोर कसर कमी नहीं होनी चाहिए। शाम को मैं अस्पताल आ रही हूँ। अभी एक हजार रुपए साथ ले जाकर डाक्टर के हाथ में रख देना। शाम को मैं और रुपए लेकर आ रही हूँ।

शाम को जब रानी साहिबा अस्पताल पहुँची तो उन्हें देखते ही सारे अस्पताल मे हड़कम्प मच गयी। डाक्टरों का दल उन्हें अभिवादन सहित जानकी बाई के पलग तक लिवा ले गया। इस समय तक वह नीम होश में थी। कपड़े लत्ते, जेवर देखकर और डॉक्टरों से घिरी सम्भ्रान्त महिला को अपने पलंग के निकट पाकर वह अचरज में पड़ गयी। उसके दोनों हाथ अपने आप जुड़ गए और बडी कातर दृष्टि से उन्हें देखने लगी। इसके बाद जानकी बाई की आँखें छलछला आयी जिससे रानी साहिबा का हृदय ममत्व से लबालब भर गया। उसकी दयनीय स्थिति देखकर उनका रोम-रोम आर्द्र हो गया। वे अत्यन्त भावुक होकर डाक्टरों को ढेर सारे आदेश -निर्देश दे डाले कि हर हालत में इस लड़की की जान बचा ही लेना है। इसके लिए सारे खर्च की जिम्मेदारी मेरी है। रानी माँ के अन्तर्मन के किसी कोने से आवाज़ आ रही थी कि इस लड़की की जान बचानी ही चाहिए। इस पर किए गए अन्याय-अत्याचार को क्या चुपचाप देखते रहना चाहिए। हमारी न सही हमारे नगर की तो बेटी है ही। इसलिए इसकी जान बचाना हमारा फ़र्ज़ है। आखिर

इस नगर पर अपनी गायन कला द्वारा इसने कितना क़र्ज़ दे रखा है। यही तो इसके क़र्ज़ को चुकाने का हमें अवसर मिला है। यही सोचते-सोचते रानी माँ अपने मे कहीं गुम हो गयी थीं। इसके बाद वे चली गयीं।

इसी बीच जानकी बाई का तबलची उस्ताद कालू ख़ाँ रोता-बिलखता वार्ड में आ गया और डॉक्टरों को देखकर जोर-जोर से मुँह बनाकर रोने लगा। उसका हाल सचमुच बेहाल था। कपड़े-लत्ते अस्त-व्यस्त थे। लग रहा था कि वह तमाम अस्पतालों में चक्कर लगाकर यहाँ आया था। उमर तो उसकी प्रौढ़ थी किन्तु बच्चो से भी ज्यादा अधीरता दिखला रहा था। इसी समय दल का मीरासी मीर जो जानकी बाई के गाने के बोल या बंदिश को उठाने का काम करता था आ पहुँचा। वह भी होश-हवाश में नहीं था। कालू खाँ धाड़ मार कर रोते हुए कहा-

कालू खाँ - डॉक्टर साहब हमारी बाई जी बच जायेंगी ना

मीर मीरासी - डॉक्टर साहब हमारी बाई जी बच जायेंगी ना

कालू खाँ - उनकी जान के बदले मेरी जान ले लो पर मेरी बाई जी को बचा लो

मीर मीरासी - उनकी जान के बदले मेरी जान ले लो पर मेरी बाई जी को बचा लो

कालू खाँ - उनके न रहने से हम यतीम हो जायेंगे। बेमौत मर जायेंगे।

मीर मीरासी - उनके न रहने से हम यतीम हो जायेंगे। बेमौत मर जायेंगे।

डाक्टर उन दोनों का मुख देख रहे थे और कुछ समझ नहीं पा रहे थे। तभी नर्सों ने उन्हें डाँटते हुए तेज आवाज़ में कहा।

नर्स - तुम कौन लोग हो जो यहाँ पूछे बिना चले आये और गुल-गपाड़ा मचा रहे हो। देखते नहीं हो कि पेशेण्ट की हालत सीरियस है चलो यहाँ से दफ़ा हो जाओ।

कालू खाँ - हम लोग बाई जी के साथी हैं।

मीर मीरासी - हम लोग बाई जी के साथी हैं।

नर्स (क्रोध मे मीरासी से) - तुम इसकी ही बात को क्यों दुहराते हो। क्या मैं कोई बहरी हूँ जो उसी बात को दुबारा सुनूँ।

मीर मीरासी - माई-बाप मैं बाई का मीरासी हूँ। दुहराने की मेरी आदत है।

नर्स- अच्छा ऐसा करो तुम दोनों यहाँ से भाग जाओ। अपनी बाई जी को अच्छा होने दो।

कालू खाँ - हुज़ूर सिर्फ आप इतना भर कह दें कि बाई जी ठीक हो जायेंगी तो हम चले जाते हैं। हम कोई रहने थोड़ी न आए हैं। हम भी जानते हैं कि यह अस्पताल है।

मीर मीरासी - हां हुज़ूर सिर्फ आप इतना कह दें कि बाई जी ठीक हो जायेंगी तो हम चले जाते हैं। हम कोई रहने थोड़ी न आए हैं।हम भी जानते हैं कि यह अस्पताल है।

नर्स - तुम दोनों जाओ। उन्हें डिस्टर्ब मत करो। वे जरूर ठीक हो जायेगी। फिकर मत करो। हमारी जिम्मेदारी है।

नर्सों की ओर से दिए गए दिलासा से वे दोनों खुश हुए। उन्हें भरोसा हो गया कि यह तो डॉक्टरों की ओर से कही गयी बात है। उनकी जान में जान आयी। दोनों मन ही मन इमली वाले पीर बाबा को और दाढ़ी वाले की मज़ार पर बाई जी के ठीक होने पर ही शीरीनी चढ़ायेंगे, चादर चढ़ायेंगे। मनौतियों के बीच उन दोनों ने पता नहीं कितने देवी देवताओं को चढ़ौती की मन्नत कर चुके। जब इसान देख लेता है कि उसके हाथों कुछ नहीं बचता तो उसका शीश अदृश्य शक्तियों के सम्मुख झुक जाता है। यही दशा इस समय इन दोनों की थी। वे अपनी मोटी बुद्धि से सिर्फ इतना समझ रहे थे कि इस समय दवाएँ और दुआएँ हमारे खाते में हैं। हम सच्चे दिल से परवर दिगार से दुआएँ करते रहें और दुआओं के बल पर हम बाई जी को मौत के मुँह से निकाल लेंगे। यही हमारी तमन्ना है।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे जानकी बाई ठीक होती गयी। और एक दिन ऐसा भी आया जब उसे अस्पताल से छुट्टी मिल गयी। घर जाने से पहले उसने सीधे महल में जाकर रानी माँ से मिलने की बात कही।

उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसे अन्दर ही बुलवा भेजा। वैसे जानकी बाई का रनिवास मे बुलाया जाना कोई पहली बार नहीं था। वह मुजरा के लिए रनिवास में तथा सभा कक्ष की महफ़िल में कितनी बार तो जा चुकी थी। किन्तु ऐसी हालत मे जानकी बाई के जाने का पहला मौका था। रानी माँ ने उसे गले से लगाते हुए ढेर सारे आशीर्वाद देते हुए कहा था - जाओ तुम्हें मारने वाले हक्का बदमाश का मैने पक्का इन्तज़ाम करा दिया है। इस समय वह जेल में सड़ रहा है। कभी न कभी तो छूटकर आयेगा ही। मेरी राय है कि तुम इस शहर को छोड़ कहीं और चली जाओ। तुम्हारा दिन-रात का आना-जाना रहता है। पता नहीं कौन कब दुश्मनी निकाल लें। किसकी देखरेख में ज़िन्दगी बिताओगी। बुरा दिन बता कर तो आता नहीं। इसलिए मेरी नेक राय है कि जगह बदल दो।

कमजोरी तथा बीमारी की स्थिति में बिस्तर पर पड़े-पड़े जानकी बाई बराबर सोच-विचार करती रही कि रानी माँ ने सही राय दी है। काम क़ाबिल ठीक हो जाने पर इस शहर को छोड़कर कहीं और चलना चाहिए। दिन-रात विचारों का यह झोंका उसके मन-मस्तिष्क को खड़खड़ा रहा था। उसके साथ के साज़िंदे और गवैये भी कुछ समय बाद जानकी बाई पर दबाव डालने लगे कि पुरानी जगह इलाहाबाद ही चलना चाहिए। पहले के कुछ लोग तो हैं ही। वहाँ चलकर भगवान भरोसे फिर से अपनी जमात जमायी जाय। परवर दिगार की यदि मेहरबानी हो गयी तो सब कुछ चमक जायगा। अपने-पराये के राय के मध्य एक दिन उसने साहस कर ही लिया कि इलाहाबाद को अब पुनः कर्मभूमि बनाया जाय। यदि बंदा परवर दिगार को क़बूल होगा तो हम भी कुछ बन जायेंगे।

कहते हैं कि विचारों के मजबूत और महान होने पर किसी को फैसले से नही डिगाया जा सकता है। जिसने कुछ करने के लिए पक्का इरादा कर लिया हो वह तो पूरी ताकत से उस इरादे को पूरा किए बिना रह ही नहीं सकता। जानकी बाई अब इलाहाबाद जाने और वहीं रहने को ठान चुकी थी। सब कुछ भाग्य पर छोडकर कि देखें क्या रंग दिखाता है एक दिन वह बनारस को अलविदा कहकर इलाहाबाद चली आयी। इस भूमि को कर्मभूमि मानकर जानकी बाई अपनी जगह फिर से बनाने लगी। पहले वह विवाह-शादी के मौकों पर मुहल्ले-मुहल्ले अपने दल-बल के साथ बन्ना-बन्नी के गाने मुजरे के लिए बुलायी जाने लगी। रात-

रात भर चलने वाली महफ़िलों में इलाहाबाद की भूमि पर उसे भरपूर दाद तथा छूट मिलने लगी जिससे जानकी बाई का दामन भरने लगा। उसकी शोहरत इलाहाबाद की सीमा तोड़कर दूसरे शहरों में फैलने लगी। नौबत यहाँ तक आ गयी कि उसे मुजरा की पेशगी मिलने लगी। अब वह कानपुर, लखनऊ, राजस्थान, मध्यप्रदेश, आगरा, दिल्ली, अम्बाला, अमृतसर, पठानकोट, पेशावर, लाहौर भी बुलावे में जाने लगी। अनुभवों ने उसे सिखा दिया कि लोक गीत, कजली, सावन, पूरबी, होली, बारहमासी ही महफ़िलों में खूब चलते हैं। लोग भरपूर दाद और छूट भी इसीलिए देते हैं क्योंकि ये लोगों में खूब पसन्द किए जाते हैं। कई बार तो ऐसा भी होने लगा कि जानकी बाई का दल ठीक से कमर भी सीधा नही कर पाता था कि दूसरी महफ़िल में जाना पड़ता था फिर तीसरी के लिए ट्रेन से भागना पड़ता था। स्वयं जानकी बाई की ऑखें नींद पूरी न लेने के कारण महफिल मे झपकती जाती थीं। ऑखें एकदम लाल-लाल दिखायी देती थी जिसे देखकर दर्शक अवाजा कसते-हाय राजा अब तो बाई जी शराब भी पीने लगी हैं। देख बे कितनी हसीन लग रही हैं। बचा खुचा उनका गाना तो गजब ढाह रहा है- 'इन्ही लोगों ने ले लीना दुप्पटा मेरा, हमरी न मानो तो रंगरेजवा से पूछो जिसने रग दीना दुपट्टा मेरा।' अवधी का यह लोकप्रिय लोकगीत जब जानकी बाई नृत्य करते हुए पंचम से उठान भरकर सप्तक स्वर में गैस बत्ती की रोशनी में आधी रात के बाद गाती तो शोहदों के दिलों पर बिजलियाँ गिरने लगती थीं। छुरियाँ चलने लगती थी पर बड़े बुज़ुर्गों के भय अदब-लिहाज़ से चूं भी नहीं कर सकते थे। यद्यपि जानकी बाई की नागिन जैसी लहराती चोटी, पैरों के घुँघरुओं की रुनझुनाहट कलाइयों में भरी-भरी चूड़ियों की खनखनाहट लहँगा शरारा चुन्नी गागरा की चमक-दमक-घुमाव-घेराव उनके दिलों में मिश्री जैसा रस घोलती थी जिससे वे तृप्त हो बेसुध हो जाते थे। किन्तु मजाल नहीं कि मुख से एक शब्द निकाले। बड़े-बुज़ुर्गों का अनुशासन उनके सिर पर तलवार की तरह लटकता रहता था। बस चुप-चाप वे सबकी तरह रस विभोर हो सकते थे। मन्नी लाल अनंदीलाल गोटे वाले के यहाँ से कामदार जरीदार लहँगे, शरारे, गरारे बनने लगे जो बड़े कीमती होते थे। लखनऊ के उस्ताद हस्सू खाँ उसे गाना सिखाते थे। सारंगी की संगत मखदूम बख्श और घसीटे लाल करते थे। तबले पर रहीमुद्दीन और रामलाल भट्ट होते

थे। इन सब पर जानकी बाई जी खोल कर खर्च करती थी। भग्गू मियां, बद्दू मिया दो बावर्ची भी होते थे।

जानकी बाई शहरों में घूम-घूम मुजरा करने लगी जिसमें ज्यादातर शहर के सम्भ्रान्त, सेठ-साहूकार, रियासतदार, जमींदार, आदि पहली पंक्ति में बिठाये जाते थे। और उन्हें फ़र्शी हुक़्क़ा, पान के बीड़े, लौंग-इलायची की चाँदी सोने की तश्तरी आदि अदब से पेश किए जाते थे। उन दिनों की महफ़िलों का यही तरीका था जो सब जगह चलन में था। जानकी बाई के साजिंदों की इतनी तैयारी रहती थी कि उनका एक पैर बाहर रहता था तो दूसरा पैर इलाहाबाद में। बाहर जाने के नाम पर उनके तबले की बद्धी सदा कसी रहती थी हारमोनियम की रीड खुली रहती और सारंगी वाद्य मखदूम बख्श का अपना कुर्ता पायजामा जाकेट दुपल्ली टोपी झकाझक धुली और कलफदार तैयार रहती थी। अब तो ऐसा भी मौका आने लगा जब एक ही तारीख़ पर दो-दो, तीन-तीन जगह से बुलावा मय पेशगी के आने लगे। धर्म संकट की इस घड़ी से बचने के लिए जल्लू मियाँ जो कार्यक्रमो की लिखा-पढ़ी करते थे। उनकी मदद से बाद वाले बुलावे के लिए माफी माँगते हुए अफ़सोस का तार भेज देते थे। जल्लू मियाँ अपने को शुक्रगुज़ार मानते कि कुछ तो मैं बाई जी के काम आ रहा हूँ। अब तक जानकी बाई की शोहरत सारे उत्तर भारत में बुलन्दियों को छूने लगी थी जिसमें उसे इतना धन-दौलत, मान-मर्यादा मिलने लगी थी कि उससे संभाले नहीं संभलता था।

जानकी बाई ने अपने गले के दम पर जितनी शोहरत बटोरी उससे कही अधिक उसने धन-दौलत, जमीन-जायदाद भी हासिल की। उसके पास लगभग पद्रह-बीस मकान हो गए थे जिसमें से कुछ रेहन भी रखे गए थे। गर्मी से बचने के लिए गंगा किनारे रसूलाबाद में एक मकान बनवाया था। उसने रामबाग स्टेशन के सामने एक धर्मशाला भी बनवायी थी। आने-जाने के लिए उसके पास एक बग्घी भी थी। जानकी बाई गले से जितनी ग़ज़ब ढहाने वाली थी उतनी ही रंग-रूप से एकदम कुरूप - बदसूरत। रंग काला, चेहरे, शरीर पर गहरे घाव के निशान जिसमें कोई आकर्षण नहीं था। किन्तु महफ़िल में ऐसा जान फूंक देती थी कि सभी पर उसका नशा चढ़ जाता था। जानकी बाई शहर के बड़े रईसो लाला बिसेसरदास की बगिया, रानीमंडी की कोठी, बाबू राधेश्याम की हवेली,

दारागंज के राय साहब की कोठी आदि में अपने गानों का वह जादू चलाती कि सभी बैठे-बैठे सारी रात बिता देते थे।

जानकी बाई की महफ़िल हर साल जन्माष्टमी और होली पर विशेष रूप से कोतवाली और पुलिस लाइन में जमती थी। अलरसुइया की महफ़िल उसके लिए यादगार बन गयी थी। जब पूरा चबूतरा चाँदी के कलदार रुपयों से पट गया था। लोगों ने छूट में चौदह हजार से अधिक चाँदी के रुपए बरसाये थे। कलकत्ते की मशहूर तवायफ गौहर जान और जानकी बाई का मुक़ाबला इलाहाबाद के जार्ज टाउन में लगी नुमाइश में हुआ था जिसमें जार्ज पंचम भी आए थे। उसमे जानकी बाई ने जब रात के बारह बजे के बाद दिल से गाया तब गौहर जान के होश उड़ गए। वह पसीने-पसीने हो गयी और वहाँ से हवा हो गयी। इससे जानकी बाई की धूम मच गयी। उसे सरकार की ओर से पहले दर्जे का नागरिक माना गया। पिस्तौल-बन्दूक का लाइसेंस तथा सुरक्षा सिपाही भी दिया गया। सरकारी कार्यक्रमों में वह पालकी से जाती थी जिसके आगे-पीछे सुरक्षा सिपाही चलते थे।

एच.एम.वी. कम्पनी ने हिन्दुस्तान में सबसे पहला रिकार्ड जानकी बाई का बनाया था। जानसेन गंज, इलाहाबाद की एक दुकान पर जब रिकार्ड बजने लगा तो वहाँ भारी भीड़ लग गयी। लोग गाना सुनने के लिए टूट पड़े। बाद में भीड़ हटाने के लिए कोतवाली से पुलिस बुलानी पड़ी थी। कम्पनी ने जानकी बाई के लगभग सौ रिकार्ड बनाये जो इलाहाबाद के रईसों की कोठियों में बजने लगे। जानकी बाई दूसरे शायरों की ग़ज़लें भी गाती थी और खुद शायरी करती थी। अकबर इलाहाबादी के घर जाकर घण्टों उनके साथ शायरी पर गुफ़्तगू करती थी। जानकी बाई की एक किताब 'दीवाने जानकी' भी इलाहाबाद से छपी थी। बिस्मिल इलाहाबादी भी जानकी बाई के यहाँ जाकर शायरी की बारीकियों पर बातें करते थे।

इस शोहरत और शौकत के बावजूद उसने जिस भूमि को अपनी कर्मभूमि बनाया था। उसकी देन को वह कभी नहीं भूली और अन्त तक भूलना भी नहीं चाहती थी। इसके लिए उसने होली तथा जन्माष्टमी का दिन इलाहाबाद को देना तय किया। इसके लिए वह एक पैसा लेना भी हराम समझती थी। तमाम जगहों

के बुलावों को इंकार कर जानकी बाई वह रात इलाहाबाद को दिए बिना नही रह सकती थी। संध्याकाल से ही चौक बाजार में कोतवाली के सामने चौकियो, दरियों, जाजिम टाटपट्टी आदि की बिछात शुरू हो जाती। हजारों की संख्या मे लोगों के आने की उम्मीद होती। इसलिए दूर-दूर तक सारी सड़कों पर बिछात हो जाती और रास्ते रोक दिए जाते थे। बिजली-बत्ती का प्रबंध नहीं था इसलिए गैस बत्ती तथा मशालों का खासा इन्तज़ाम हो जाता था। पुलिस वाले भी समय से पूर्व ही अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद हो जाते। आगे बैठने की होड़ में लोग शाम से ही अपनी जगह बनाकर बैठ जाते थे। कुछ तो अपनी टोपी, अंगोछा, दुपट्टा रखकर जगह बना लेते थे। उन्हें पता होता था कि आज तो सुबह तक बैठना है इसलिए पूरी तैयारी के साथ खा पीकर लोग आ जाते। जितना उत्साह जवानो मे दिखायी देता उससे किसी तरह कम बड़े-बुज़ुर्गों में नहीं दीखता था। एक तो होली का रंगीन माहौल दूसरे शराब-भँग की खुमारी लोगों को सराबोर कर सिर चढ जाती थी। वे अबीर-गुलाल के बीच होली मिलते और मदमस्ती की छटा बिखेरते।

जानकी बाई जब दस बजे रात के बाद अपने साज़िंदों सहित मंच पर आतीं तब दर्शकों ने उनका तालियों सीटियों से स्वागत करते। लोग साज़िंदों की तैयारी बर्दास्त नहीं कर पाते थे और पीछे से कर्कश तथा मद्धिम स्वर मे चिल्लाते बाई जी मुजरा शुरु करें हम बेताब हैं। वे मुस्कुरा कर उनका स्वागत करतीं और मंच पर बैठ जातीं। विलम्ब किए बिना जानकी बाई अलाप उठाती। मीर मीरासी उससे भी ऊँची तान में बंदिश बढ़ाते। बाई जी ने मुजरा करते हुए फरमातीं - इलाहाबाद वालों! हम आपके शुक्रगुज़ार हैं। हमने आपका बहुत-बहुत प्यार पाया है जिसे मैं भुला नहीं सकती। आपका इतना क़र्ज़ है कि इस जनम में तो क्या अगले जनम में भी मैं उसे अदा नहीं कर सकती। आज की रात आपकी-हमारी है। मैं दिल खोलकर गाऊंगी और आप दिल खोलकर सुने। जानकीबाई फाग, दादरा, टप्पा, तोड़ी, लोकगीत आदि एक-एक कर बड़े भाव से सुनाने लगतीं। उधर बीच-बीच में फरमाइशों पर फरमाइशें आने लगतीं तो इधर जानकी बाई एक-एक फरमाइश का जानदार जवाब देतीं। सुनने वालों पर गानों का जनून चढ़ता जाता। उन्हें ऐसा स्वाद मिलने लगता जिसे सिर्फ जानकी

बाई ही चखा सकती थीं। इसके लिए लोग साल भर तक इन्तज़ार करते रहते तब कहीं जाकर उन्हें नसीब होता।

एक ओर रात ढलती जाती तो दूसरी ओर गानों का खुमार बढ़ता जाता। लोग टस से मस न होते और गाने के सागर में डुबकियों का आनन्द लेते अघाते न थे। जहाँ एक तरफ गाना सुनने की प्यास बढ़ती जाती वहीं दूसरी तरफ गाना सुनाने की प्यास बेताब करती जाती। दोनों ओर का हाल-बेहाल रहता। लेकिन जब वक्त व्यधान बन कर सामने खड़ा होकर रात को दिन में बदल देता तो सभी जी मसोसकर रह जाते। लोगों की आवाज़ें आती-अभी तो हमने वह सुना ही नहीं जो सुनना चाहते थे। बाई जी भी तुरंत जवाब देतीं- अभी तो हमने अपने लोगों को वह सुनाया ही नहीं जो सुनाना चाहती थी। इंशा अल्ला जिंदा रहे तो अगले साल फिर मुख़ातिब होंगे। दूसरी ओर से आवाज़ें आतीं- बाई जी आपको हमारी उमर लगे। आप हजारों साल जिंदा रहें। चलिए आपकी दुआएं क़बूल करती हूँ। अच्छा फिर मिलेंगे। अलविदा शुक्रिया कहते-कहते जानकी बाई की आँखें छलछला आतीं।

इलाहाबाद में जानकी बाई सब्जी मंडी में रहने लगी थीं। वहीं शेख अब्दुल हक नाम के वकील रहते थे। जानकी बाई के यहाँ उनका आना-जाना शुरू हो गया था। जहाँ जानकी बाई की महफ़िलें होती थीं वे वहाँ भी जाकर एकदम आगे बैठते और अन्त तक बैठे रहते थे। वे दिल-दिमाग दोनों से वकील थे इसलिए जानकी बाई से फायदा उठाने की ताक में रहते थे। वैसे वे थे नौजवान, गोरे-चिट्टे, रंगीले-रसीले कुंआरे थे जिसे जानकी बाई कनखियों से देख लेती थी। इसीलिए वकील साहब का भी दिल जानकी बाई के लिए धड़कता था। जानकी बाई ने शायद 'पान खायँ सइयाँ हमार, मलमल के कुर्ते पर पीक लाल लाल' वाला अवधी गीत गाते समय वकील साहब का ही बिम्ब अपने मन में सजाकर गाया होगा। उसके द्वारा गाया गया यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ कि हर महफ़िल में इस गाने की माँग की जाती थी। जिस तन्मयता के साथ जनता इस गाने को सुनाने की माँग करती थी। उससे अधिक डूबकर जानकी बाई इस अवधी लोकगीत को सुनाती थीं। इस गाने के साथ अब्दुल हक साहब उसकी जेहन में उभर आते थे।

जानकी बाई ने हक साहब से बाद में निकाह भी कर लिया था और उनको अपना एक मकान भी दे दिया था। ऊपर-ऊपर से वकील साहब जानकी बाई के लिए ज्यादा ही नेक इंसान बनते थे लेकिन वास्तव में ऐसी बात थी नहीं। वकील साहब ने हिस मास्टर वाइस के मैनेजर मि. जार्ज को एक चिट्ठी लिखकर जानकी बाई की गायकी की प्रशंसा में पूरा चिट्ठा खोल दिया। मैनेजर साहब पर वकील साहब की इस चिट्ठी का जबर्दस्त असर पड़ा। उनकी जानकारी में आ चुका था जानकी बाई एक बेहतरीन गायिका हैं जिनकी महफिल बड़ी कामयाब होती है। समूचे उत्तर भारत में उनके मुकाबले की गायिका कोई नहीं है। यह कुछ ऐसा सयोग बना कि वकील साहब जानकी बाई के भाग्य विधाता बन बैठे। जानकी बाई को धीरे-धीरे भनक पड़ गयी कि वकील साहब शादी शुदा हैं और उनके बच्चे भी हैं जिसे उन्होंने उससे छिपाया था। उसे पता चल गया कि उसके साथ बहुत बड़ा धोखा हुआ लेकिन कर ही क्या सकती थी। जानकी बाई को तो हक साहब दुधारू गाय समझते थे और उसे अपने तरीके से दुहना चाहते थे। मिस्टर जार्ज ने वकील साहब के माध्यम से हिस मास्टर वाइस के लिए कुछ गाने के रिकार्डिंग का कांट्रेक्ट जानकी बाई के पास भेजा। यह उसकी सफलता का नया छितिज था। वकील साहब उसके प्रोग्राम संबंधी लिखा-पढ़ी भी कर देते थे। जिनके एहसान तले वह दबी जा रही थीं। उनका बुलावा जब बम्बई से हिस मास्टर वाइस के गीत रिकार्डिंग के लिए आया तो वे झूम उठीं। वकील साहब के साथ वे बम्बई हिस मास्टर वाइस के आफिस पहुँचीं। जहाँ उनके चुने हुए गानों के दस रिकार्ड बनाने को कम्पनी तैयार हो गयी। जानकी बाई ने इन गानो के रिकार्ड पर एक ही शर्त रखी कि रिकार्ड पर जानकी बाई इलाहाबाद छप्पन छुरी जरूर लिखा जाय। कम्पनी इस बात को मान गयी और उनके नाम से बाजार में खूब रिकार्ड बेचा जिसकी रायल्टी भी कम्पनी रिकार्ड बिक्री के आधार पर जानकी बाई को भेजने लगी।

अब तक जानकी बाई के पास पैसा और शोहरत खूब आ गयी थी। वकील साहब ने उस पर किए गए अपने एहसानों को भुनाने का अच्छा मौका जाना। उन्होंने एक दिन जानकी बाई से कहा -

अब्दुल हक - आप रुपयों - पैसों के हिसाब-किताब कम्पनी की आमदनी के चक्कर में अब मत रहा करें। उसे मैं सब देख लूंगा। आप तो सिर्फ प्रोग्राम

देने भर का काम देखें। इधर आपका काम भी तो बहुत बढ़ गया है। मैं किस दिन काम आऊंगा। मैं भी तो कुछ आपका हूँ।

जानकी बाई - आप ठीक ही फरमा रहे हैं वकील साहब। कम्पनी का पिछला हिसाब तो हमें समझा दें। वहाँ से कितनी आमद अब तक हमें हुई है।

अब्दुल हक - आप फिकर मत करें। कभी फुरसत से सब समझा दूंगा।

जानकी बाई - मैं तो फुरसत में हूँ। बैठ जाइये सब समझा दीजिए ना।

अब्दुल हक - अभी तो मुझे कोर्ट जाना है। किसी दिन शाम को बैठ जाऊंगा।

जानकी बाई - वकील साहब आज तो इतवार है। कोर्ट कहाँ जाइयेगा। बैठ जाइये ना।

अब्दुल हक - नहीं घर पर कई मुवक्किल आने वाले हैं।

जानकी बाई - ठीक है इसका मतलब आप हिसाब नहीं बताना चाहते।

अब्दुल हक - जो भी समझ लें।

जानकी बाई अपने अनुभवों के आधार पर समझ गयी कि वकील साहब की नज़र सिर्फ उसकी कमाई पर लगी है। वह उसकी सारी आमदनी जायदाद हडप करना चाहता है। थोड़े से एहसान कर अब उसे लूटकर कहीं का नहीं रखना चाहता। चलो यह भी एक कड़ुआ अनुभव हुआ अच्छा हुआ। समझ गयी जो हमारी गाढ़ी कमाई पर हवा हमल बनाना चाहता था। पढ़े-लिखे समझदार लोग कितने मतलबी हैं। इससे अच्छे तो हमारे ना पढ़े साज़िंदे लोग हैं जो मरने-जीने तक साथ-साथ रहने की कसम ली है। चलो उन्हीं के सहारे जिए-मरें।

एक दिन अपने साज़िंदों के साथ रात में बैठकर जानकी बाई बड़े दार्शनिक भाव में अपनी बात कहने लगीं। आजकल तो वकील साहब भी नहीं आते। लगता है कि उन्होंने कोई दूसरा घर देख लिया है। दुनिया ऐसी ही है। मेरे पिता जी कहते थे कि दुनिया को समझना बहुत कठिन है। कब कौन बदल जाय कुछ नही कहा जा सकता है। खैर छोड़ो इन बातों को। मैं चाहती हूँ कि इस शहर में जिसने मुझे पनाह दिया कुछ ऐसा काम हो जाय जिसे लोग हम जैसी नाचीज को भी याद रखें। इलाहाबाद में एक धर्मशाला मैं बनवाना चाहती हूँ और दो

कुआं भी खुदवाना चाहती हूँ। इस पर जो भी खर्च आवेगा वह सब मेरा होगा। दूसरी एक बात और कहना है। मैं पता नहीं कब मरूँ। उस समय तो मैं कुछ बताने आऊंगी नहीं। लेकिन मेरा दाह संस्कार गंगा जी के तट पर जरूर करना और मेरा फूल बनारस की गंगा में ले जाकर बहा देना। इस तरह मैं अपनी माँ से जरूर मिल सकूंगी। वकील ठीक समझे तो मेरी जायदाद से मेरा मकबरा बनवा देगा कहते-कहते जानकी बाई के गालों पर आंसुओं की दो मोटी धार बहने लगीं। वे सुबगने लगीं।

# सात

प्रयाग में जब वृहस्पति, मेष राशि में और चन्द्रमा व सूर्य मकर राशि मे पडे तब इस तीर्थ राज में कुंभ लगना एकदम पक्का है। परन्तु वृहस्पति का एक चक्कर पूरा होने पर बारह वर्ष लग जाते हैं। फिर तो श्रद्धालु तीर्थ यात्रियों को स्नान कर अमर होने की जमानत पण्डे-पुरोहित आँख बन्द कर दे सकते हैं। इस अमरत्व को प्रसाद जैसा वे जिसे चाहें बाँट सकते हैं। वास्तव में प्रसाद बाँटना तो उनके ही बूते और बाएँ हाथ का काम है। इलाहाबाद का कुंभ माघ महीने मे लगता है जब दाँत कटकटाती ठण्ड पड़ती है। ऐसे भयंकर ठण्ड में भी लोगो की धार्मिक आस्था उन्हें धकेल-धकेल कर संगम में डुबकी लगाने के लिए प्रेरित किए बिना नहीं रहती। अमृत को लूटने और अमर होने की कामना से हजारों लाखों श्रद्धालु खिचें चल आते हैं जिसमें ग्रामीण जनों का बाहुल्य होता है।

इस अवसर पर प्रयाग में गंगा तट पर एक जीते-जागते जगमग नगर की स्थापना हो जाती है जिसे कुंभ नगर कहते हैं। वैसे तो यह नगर प्रति वर्ष माह भर के लिए अस्थायी रूप से सज-धज-संवर जाता है फिर इसके बाद उखड-उजड़ जाता है। यह नगर सारी सुविधाओं जैसे साफ-सफाई, पानी, बिजली, टेलीफोन, थाना, कोतवाली, अस्पताल, भूले-भटके मर्द-औरत-बच्चों के पहुँचाने का कार्यालय, नगर निगम कार्यालय, फायर ब्रिगेड, खाने-पीने की दुकानें सूती-ऊनी कपड़ों की दुकानें, जगह-जगह महिला पुरुष शौचालय-मूत्रालय, धार्मिक प्रवचनों के लिए सत्संग मण्डलों के पण्डाल जहाँ दिन-रात साधु-संतों-महंतों के प्रवचन की वर्षा होती रहती है निर्वाणी, बैरागी, निरंजनी, दिगम्बर, निर्मोही उदासीन, निर्मल, काली कमली वाले का अखाड़ा, नागा बाबा का अखाड़ा धर्म गुरुओं, महामण्डलेश्वर, योगी, तांत्रिकों आदि मुख्य मेला क्षेत्र से अलग हटकर गंगा पार झूंसी में उनके पण्डाल लगाए जाते हैं। जहाँ दिन रात लंगर चलता रहता और साधु संतों के धार्मिक प्रवचन आदि होते हैं। मेले में शंकराचार्यों का

भी आगमन होता है। इनके जुलूस, शाही जुलूस आदि पूरी गरिमा-गौरव, गध-सुगंध के साथ निकलता है जिसमें गाजे, बैण्ड-बाजे, हाथी घोड़ा, ऊँट, सजी धजी पालकियों, निशान, झण्डे, तरह-तरह के वाद्यों, लोगों को करतब दिखाने सहित शोभा यात्रा निकलती है। महन्त सोने-चांदी की पालकी या सोने चाँदी के हौदे युक्त हाथी पर बिराजते हैं। वैसे तो पूरे माह भर मेला चलता है किन्तु विशेष पर्वों जैसे संक्रांति, मौनी अमावस्या, वसंत पंचमी, माघ पूर्णिमा पर तो विशेष रेल-पेल होती है। श्रद्धालु जन संगम तट पर एक माह का कल्पवास करते हैं। इन अवसरों पर आमतौर से स्नान के लिए ग्रामीण लोग अधिक आते हैं। वैसे तो इस मेले में देश के कोने-कोने से धार्मिक लोग स्नान कर पुण्य कमाने आते हैं। हर बारहवें वर्ष संगम तट पर एक नया नगर बस जाता है जो जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा नगर हो जाता है। उस समय उन्हें दांत कटकटाती ठण्ड का अन्दाज़ भी नहीं होता। पर्व का मुहूर्त आते ही लोग आधी रात से ही घरो, डेरों, धर्मशालाओं, होटलों आदि से निकल पड़ते हैं। पैदल, सवारी जिससे जैसा बनता है स्नान के लिए चल पड़ता है। इस मेले में दुनिया के प्रत्येक भू-भाग का प्रतिनिधित्व होता है।

सारा मेला क्षेत्र बिजली की रोशनी से जगमगाता नहाया लगता है। लाउड स्पीकरों से कहीं तो धार्मिक कीर्तन, भजन प्रवचन, सत्संग की गूंज वायु मण्डल मे तैरती नज़र आती है तो दूसरी ओर व्यवस्था के लिए तरह-तरह के निर्देश, खोये लोगों की हुलिया का वर्णन, चोर, उचक्के, जेबकतरों, ठगों से सावधानी के निर्देश भी दिए जाते रहते हैं। फिर भी न तो शिकार की कमी और ना जालिया जाल-साजों की कमी होती है। वे अपने जाल में लोगों को पक्षी जैसे फँसा ही मारते हैं। जैसे कोई गाँव का सीधा-सादा व्यक्ति घाट पर स्नान करने की जुगाड में बैठा था कि एक चालाक सा लड़का आकर उससे कहा -

- फुफा जी राम राम .......

- बेटवा जय राम जी की। बेटवा हम तुमका पहिचाना नाही।

- हम तुमरे सारे के बेटौना हई ना। सब ठीक-ठीक है ना हुँआ। माघ नहाय आयौ है ना। जा नहाय के आय जाव। हम तुम्हार कपड़ा-लत्ता पैसा-कौड़ी सब देखत रहब।

- अच्छा बेटवा तुमका सौंप हम नहाय जात हई। थोड़ के रुपैया-पैसा, कपड़ा-लत्ता है। ठीक से संभारे रह्यौ। हम नहाय के जल्दी से आवत हई।

वह बुड्ढा बेचारा सौंप-सुपुर्द कर चला गया किन्तु जब गीली धोती पहने नहाकर लौटा तो लड़का गायब मिला। उस बेचारे को चक्कर आ गया। वह जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगा- का हो हम के के फुफा अही। हम के के फुफा अही। बेचारा सिर पीटकर रह गया पर अता-पता कुछ न पा सका। बहुत सारे लोग इस तरह की जालसाजी के शिकार आसानी से हो जाते हैं। पाकिटमारों का दल तो मेले-ठेले की भीड़-भाड़ की तलाश में रहता ही है। पुलिस की ऑखो मे धूल झोंक कर अपने हाथों की सफाई से आँखों से काजल चुरा कर चम्पत हो जाता है। इसके लिए वे नए-नए तरीके भी खोज लेते हैं। अपने दल के चतुर चालाक लड़के को अकारण ही पिटाई करने लगते हैं और लड़का जान बचाने के लिए किसी से लपट-झपट कर बचाने की गुहार लगाता है। बेचारे भोले नाथ से लड़के की मार न देखी जाती है और ना सही जाती है। वह बीच-बचाव की कोशिश में जब उलझ जाता है तो लड़का अपने हाथ की सफाई दिखाकर रफू-चक्कर हो जाता है। ऐसे जेब कतरों की मेले की पुलिस बड़ी सतर्कता से नज़र तो रखती है किन्तु उनकी नज़र बचाकर ऐसी वारदात हो जाती है। तब पुलिस धर पकड़ की कार्यवाही करती तो है लेकिन अपराधी पकड़ में आ जाय तब ना।

माघ मेला ग्रामीण जनता का प्रतिनिधि मेला होता है। इसमें अधिकतर ग्रामीण जनता की भागीदारी होती है। इसलिए इसमें ज्यादातर ग्रामीण खाद्य पदार्थ जैसे गुडही जलेबी, रामदाने की करारी लइया, मक्का-जोंधरी के लड्डू, चावल की ढूढी, लाई चना-चबेना, मटर की छीमी, होरहा, उबले आलू सकरकन्द आदि की बिक्री कहीं छोटी-मोटी दुकान के रूप में तो कहीं खोमचे के रूप में डट कर होती है। पूडी-कचौड़ी की दुकानों, हलवाई की मिठाई की दुकानों पर भले ही भीड़ कुछ कम हो किन्तु इनकी दुकानों पर तो अर्रातोड़ भीड़ मची रहती है। लोग सामान खरीद लेते हैं और रास्ता चलते खाते-पीते जाते हैं। कभी कभी इन्हें भिखमगे घेर लेते हैं और गिड़गिड़ाते हुए इन्हें कुछ धर्म-कर्म के लिए देने को मजबूर कर देते हैं और भीख में बिना कुछ लिए पिण्ड ही नहीं छोड़ते। वैसे ये भिखारी दो तरह के देखे जाते हैं। कुछ तो अपनी दुकाननुमा भिक्षा पाट बिछाकर बैठ जाते हैं और आने-जाने वालों से सुरताल में घिसीयाते हुए भीख माँगते हैं। इसमें कुछ तो कई रूप बना कर बैठते हैं जैसे विकलांग, कुष्ठ रोगी की चित्कार भरी आर्त आवाज़ में भिक्षा माँगते हैं। कुछ साधु तो एक पैर से खड़े होकर, गड्ढा खोदकर सारा शरीर उसमें छिपाकर केवल सिर बाहर रख कर, कांटों पर लेटकर, गाल

मे त्रिशूल गड़ा कर भिक्षा माँगते हैं तो कुछ साधु बाबा भिखारी चलते-फिरते भीख माँगते यहाँ मिलते हैं। ये मेले के अंग-प्रत्यंग हैं जिन्हें कोई कानून-व्यवस्था, रीति नीति भंग नहीं कर सकता। ये पुरातन परम्परा को बड़ी संजीदगी से सजीव किए है। जब महाराज हर्ष भी धर्म संगत में प्रयाग में आते थे तो ढेर सारा सोना-चाँदी, रुपए-पैसे, रत्न, आभूषण दान करके जाते थे। आज भी दाता-दानी, भिखारी-दुखियारी की कमी नहीं है। दोनों के रिश्ते आज भी यहाँ देखने को मिल जायेगे इसमें जो आध्यात्म का रहस्य छिपा है तो कोई इसे समाप्त नहीं कर सकता है। यहाँ का दिया हुआ दान तो स्वर्ग में सुरक्षित मिलता है। इस भाव भरे विश्वास को कोई नहीं तोड़ सकता। इसी विश्वास के बूते पर तो पण्डे-पुजारी अपने जजमानो से भी अच्छा खासा दान कृष्णार्पण अस्तु बोल कर ग्रहण कहते हैं। इतना ही नही धार्मिक कर्मों अनुष्ठान के अवसरों पर ये पण्डे-पुरोहित जिद पर उतर कर उलझते-उरझते भी खूब हैं और धार्मिक-रीति-रिवाज से भयभीत कर मनमानी रकम ऐठते हैं जो कि एक तरह से तो लूट लगती है तो दूसरी तरह से धार्मिक छूट लगती है। धार्मिक विश्वास यह भी प्रचलित है कि यदि इस जन्म में पत्नी को भी कृष्णार्पण किया जाय तो अगले जन्म में यही पत्नी पुनः मिलेगी। इस भाव में जब कोई जजमान पत्नी को कृष्णार्पण कर देता है तो पुरोहित जी पूरा दबाव डालकर अधिकाधिक दान वसूलते हैं। कभी तो ऐसा धर्मसंकट खड़ा करते हैं कि दान दी गयी वस्तु अब हमारी हो गयी है। हमारी शर्त पूरा करो तभी हम वापस करेगे। वैसे वापस न करने का अवसर तो नहीं आता किन्तु मोटी रकम दान-दक्षिणा तो वे ले मरते हैं। इसी तरह बहुत से अनुष्ठानों में घाट पर जजमान को टेंट की गाँठ तो खोलनी ही पड़ती है। घाट पर लगे अपने झण्डे के निशान से जजमानों को याद दिलाते रहते हैं कि वे ही उनके वंश के पुरोहित-पण्डे हैं। उनके पुरखे भी हमारे जजमान थे। घाट पर स्नान के बाद फूल-दूध चढ़ाने के लिए भी लोग खूब घेरते हैं। और चढ़ौती चढ़ाने के लिए भी लोग खूब घेरते हैं फिर चढ़ौती चढवा कर ही मानते हैं। इसके साथ-साथ गऊदान के अनुष्ठान का भी कार्य जजमानो से पूरा कराते हैं। मेले में एक ओर पिण्डा पारने वालों के मुण्डन के लिए नाऊ बाडे का इन्तज़ाम रहता है। जिसमें नाई लोग जजमानों के बाल मूँड़ते हुए कहते हैं। 'गया पिण्डे प्रयाग मुण्डे' इस आधार पर लोग मुण्डन कराना ठीक समझते हैं। और भरपूर विश्वास दिलाते हैं कि गऊदान करने से वे और उनके पुरखे नरक से बचकर सीधे स्वर्ग जायेंगे। गऊ की पूंछ पकड़ाकर वे गऊदान कराते हैं। वहीं

घाट पर बधइया बजाने वाले ढपली लिए घूमते रहते हैं। दान-दक्षिणा पाने पर उनके नाम की बधाइया भी बजाते हैं जिससे जजमान क्या यश सूर्य-चन्द्र जैसा बढता रहे और वे सदा सुखी रहें।

मेले की सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए अतिरिक्त पुलिस बल, स्काउड गाइड तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं के स्वयं सेवकों की सेवाएं लगायी जाती हैं जिससे मेले में किसी प्रकार की अव्यवस्था अफरा-तफरी, गड़बड़ी न आए। किन्तु जब गड़बड़ी होने वाली है तो हर हाल में होकर ही रहती है। उसे कौन रोक सकता है। सन् 1954 की माघ मेले की त्रासदी आखिरी कौन भूल सकता है। जब मौनी अमावस्या के पर्व पर तीर्थयात्रियों का सैलाब फूट पड़ा था और सारी व्यवस्था को धता बता दिया था। पुलिस, स्काउट, स्वयंसेवकों की सीटी नक्कार खाने में तूती की आवाज़ जैसी बजती रही और कुछ भी साज-सम्भाल न सकी। ऐसे कई संयोग कुछ आ गए थे इस त्रासदी के लिए किसे दोष दिया जाय। वी आई.पी. लोगों का आना और कुछ पुलिसबल का उनकी सुरक्षा के लिए जाना। नागा बाबा के अखाड़े का उसी समय स्नान के लिए आना और बँधवा पर तीर्थ यात्रियों का रेला, रात में पानी गिरने से भूमि में जबर्दस्त फिसलन बढने से कुछ ऐसी स्थिति-परिस्थिति बन गयी थी कि सारी व्यवस्था को चौपट होना ही था। किसी के बूते में नहीं था उन्हें संभाल-सही कर पाना। फिर तो जो होना था वही हुआ भी। इधर नागा बाबा लोगों का त्रिशूल-चिमटे-संसा से लोगों को डरवाना उधर ढाल पर लोगों की रेलमपेल बढ़ने से यात्रियों में भगदड़ मच गयी। लोग दब कर गिरने लगे तो उठने का नाम नहीं लिया। एक पर एक लोग गिरते गए दबते गए और वजन से दम घुटने से मरते गए, हताहत होते गए। चारों ओर शोर-गुल, चिल्लाहट-चिल्लापों, बचाओ, मरे, दौड़ो- भागो का आर्तनाद एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूंजता गया और प्रकृति का मरने-बचने का निराला खेल चालू हो गया जो काफी देर तक चलता रहा। लोग एक-दूसरे पर ऐसे गिरे की उठ नहीं पाये फिर सदा के लिए वहीं सो गए। इसमें मर्द-औरत-बच्चे-बूढे सभी किस्म के लोग शामिल थे। उसी रेले में सुगिया ने चिल्ला कर कहा -

- आई दइया! दद्दा किधर अहा। हमार तो मोटरिया गिर गै। पाछे वाले चढा आवत अहैं। संभालब मुश्किल होत बा। संभाला नाही तो हम गिरे। का जबरजस्त धक्का-मुक्की चलत अहै।

संभर के चल रे सुगिया। हाथ कस के पकड़। छोड़ जिन। नाही तो हमार तोर संगत छूट जाइ अउर मिलना बहुतै मुश्किल होइ। तनी मजबूती से हमार पिछौर पकड़ ले। भीड़ बढ़तै जात बा। धक्का-मुक्की भी तेजै होत जात बा। सुगिया संभल औ संभाल अपन के।

- अरे दद्दा पाँव टिकावत मुश्किल लागत है। ऊपर से गीली माटी तकलीफ देत है। पाँव बिछुलत जात है। का करी दद्दा।

- फिर भी कोशिश करतै जा। देख लोग गिरत जात हैं कि नाही...

दद्दा अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाये थे कि सुगिया जोर से चीख कर जमीन पर कटे पेड़ की तरह गिर पड़ी और उस पर दस-बीस लोगों का वजन लद गया। चिल्लाते हुए वह खूब छटपटाती भी रही किन्तु उसकी आवाज़ और लोगों की चीख-पुकार, रोने-धोने में डूब गयी। दद्दा सीता राम जिनकी पकी पिलपिली उमर थी भीड़ की रेल-ठेल में छिटक कर गड़े हुए बाँस के पास गिरे। बॉस को मजबूती से पकड़े वे दबे-कुचले बैठे रहे। व्यवस्था के नाम पर बॉस और रस्सी द्वारा बना आने-जाने का मार्ग मिट गया। उसका नामो-निशान भी नही बचा। जिसको जहाँ मौका मिला जान बचाने के लिए पूरी ताकत से भागा। जो नही भाग सके अशक्त अपंग थे वे तो भीड़ में पीस गए, मर-खप मिट गए। थोडी देर के ही लिए मान लीजिये प्रलय आ गया था शिव ताण्डव शुरू हो गया था और यमदूत लोगों को पकड़-पकड़ कर यमराज के सामने धकेलते-घाकियाते ले जा रहे थे। मौत का मुख खुल गया था और बच्चे-बूढ़े, मर्द-औरत-जवान उसमें समाते जा रहे थे। कोई शक्ति उन्हें बचा ही नहीं सकती थी। कराल-काल सभी को निर्दयता से कुचलता जा रहा था। भला उसके कठोर कुठार की मार से कौन बच पाता। इस महाप्रलय की बेला में सिर्फ दो ही शक्तियाँ थीं एक तो मिटने वाली तो दूसरी मिटाने वाली। ऐसे मे जीत किसकी हो सकती है इसे आसानी से अन्दाज़ लगाया जा सकता है। मानवी शक्ति मिटने को मजबूर थी और दैवी शक्ति मिटाने को मजबूत थी। इस तरह चलते-फिरते, रोते-गाते, बोलते-चालते हजारों लोग देखते-देखते मौत के मुँह में समा गए।

जब व्यवस्था कुछ पुलिस के पकड़ने के काबिल हुई तो समूचा शासन तंत्र जैसे सकते में आ गया। कुछ करने के लिए सबसे पहला काम तो यही किया कि चीखते-चिल्लाते, घायल लोगों को, जो चलने-फिरने के क़ाबिल थे उन्हे

अस्पतालों में पहुँचाया गया और जो चलने-फिरने के क़ाबिल नहीं थे उन्हें स्ट्रेचर पर लिटाकर पहुँचाया। उधर डाक्टरों के दल के दल आ पहुँचे और लोगों को देखने उपचार करने लगे। जिनके प्राण-पखेरू इस पुण्य क्षेत्र में उड़ गए थे और वे आवागमन से मुक्त हो गए थे। उनके शव शिविर में एक-एक कर पहुँचाने जाने लगे। जहाँ पंक्तिबद्ध शवों का अम्बार लग गया था। वे सब शिनाख्त के लिए पर्ची टाँक कर रखे गए थे कि उनके परिजन परिवार जन पहचान कर ले जा सकते हैं किन्तु जिनका अता-पता कुछ भी नहीं चल पा रहा था उनके सामूहिक दाह संस्कार शासन की ओर किया जाने लगा। यह संस्कार भी सौ-पचास का एक साथ किया गया। वैसे तो पुण्य-प्रयाग में जिनका अन्त हुआ था वे सभी स्वर्ग के अधिकारी तो धार्मिक मान्यता के हिसाब से हो ही गए थे भले ही उनकी दाह क्रिया मिट्टी के तेल, कुछ लकड़ियों, घास-फूस द्वारा किया गया हो या चन्दन की चिता बना कर पाँच मन लकड़ी या सवा पाँच मन लकड़ी से किया जाय मुर्दे को तो कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ता है तो देखने वाली नजरों को जिसे सिर्फ देखने के अलावा और कुछ नहीं करना पड़ता।

इलाहाबाद की इस त्रासदी ने एक जीता जागता इतिहास ही गढ़ दिया था। कि तमाम मानवी सुव्यवस्था को अंगूठा दिखाते हुए कैसी दैवी दुर्घटना घटी की हजारों लोग कीड़े-मकोड़े की तरह मौत के पैरों तले कुचल कर मर गए, मिट गए। इस हादसा के बाद की स्थिति तो बड़ी बेढब थी। घायलों का इलाज कराना, ठीक होने के बाद उन्हें घरों तक पहुँचाना। जिनके सारे सामान भीड़ में गुम गए उन्हें भी पहुँचाना। बिछुड़े परिवार जनों तथा परिजनों से मिलाना, महिलाएं तथा बच्चे जो अपने घरों का ठीक-ठाक पता नहीं बता पा रहे थे उन्हें भी परिवार जनो से मिलाना, उन सबके भोजन की व्यवस्था करना, मेले में आए लोगों को उनके घरो तक पहुँचाने के लिए स्पेशल ट्रेनों-बसों द्वारा भेजने की व्यवस्था आदि बहुत जरूरी कार्य थे जिसे शासन ने सामाजिक संस्थाओं की मदद से तुरत - फुरत किया और निष्कर्ष के रूप में एक बेहद कड़ुआ अनुभव यह भी ग्रहण किया कि मेले की भीड़-भाड़ को करागर ढंग से नियंत्रित करने के लिए भविष्य में गंगा पार, झूसी में साधुओं-संतों के अखाड़े आदि टिकाए जायेंगे। वास्तव में ऐसे नतीजे तो अनुभव के आधार पर ही निकाले जाते हैं जिसे इलाहाबाद ने दही से मक्खन जैसा निकाल फिर घी बनाकर सहेज कर रख लिया या सोच-समझ कर दस्तावेज़ जैसा लिख लिया कि वक्त-जरूरत काम आए।

यहाँ की आम जनता पर इसका असर यह पड़ा कि जिन लोगों ने महाकुभ के अवसर पर दो पैसा फेंक कर चार पैसा कमाने के लालच में थे उनके गॉठ का तो दो पैसा गया ही और बदले में दो पैसा भी गँवा बैठे या कुछ को आधा पैसा एक पैसे से ज्यादा लाभ तो हुआ ही नहीं। मन में यह संतोष करके रह जाना पडा कि व्यापार-रोजगार धन्धे में तो उलट फेर, ऊँचा-नीचा देखना ही पड़ता है। यही तो व्यापार का जोखिम होता है। कभी मिट्टी सोने का भाव दे जाती है तो कभी सोना मिट्टी के भाव बिकता है। इसे छोटा से लेकर बड़ा व्यापारी तक जानता है। मेले के इस हादसा ने बहुत से व्यापारियों को नंगा कर दिया। वे सडक पर आ गए जैसे पहले कभी थे। उनके मन में लाभ का पेड़ मुरझा गया निर्मूल हो गया। और वे आसमान ताकने लगे। जिस आशा में चले थे उस निराशा में उनके पैर ठिठक गए जैसे उनका चलना ही इस मौके पर गलत था। लेकिन बढ़ा हुआ कदम पीछे तो पलट नहीं सकता भले ही वह कीचड़ में भरपूर सन ही क्यों न जाय। जो मेले की आस में बैठे थे निराशा की कम्बल ओढ़ कर चुपचाप बैठ गए और चारों ओर टुकुर-टुकुर देखते हुए चारों खाने चित्त हो गए।

इसी तरह सीधा असर उन यात्रियों के परिवार वालों पर पड़ा जो आए थे तो तीर्थ करने पर भीड़ में दबकर सीधे स्वर्ग सिधार गए। उनके परिवार वाले मारे फिकर में मरे जा रहे थे पर उनकी सही जानकारी नहीं मिल रही थी। कितने तो खोज खबर लेने मेले में आ भी पहुँचे और सही खबर न मिलने पर हाथ मलते लौट गए या गलती से दूसरे के शव को अपना समझ कर ले भी गए और बाद मे वापस कर गए। कुछ ऐसे भी थे जो आशा में आए थे किंतु निराशा में लौट गए। उन्हें अपने सगे संबंधियों का कुछ भी अता-पता न चला था। गॉव वालो के बताने-सुझाने पर या पण्डितों की राय से उन्होंने उनका तेरही-दसवाँ आदि करके रो-पीट लिया कि उनसे अगले जनम में फिर भेंट होगी। बस उनका सबसे बडा संतोष यह था कि वे तीर्थराज प्रयाग में मरें हैं इसलिए उन्हें स्वर्ग तो मिलेगा ही। इस विश्वास को उनसे कोई नहीं छीन सकता था।

सुगिया और दद्दा के लिए सारे गाँव में जंगल की आग की तरह खबर फैल गयी कि वे दोनों भीड़ में दबकर स्वर्ग सिधार गए। घूरपुर गाँव के लोग न तो इतने घूर हैं कि उन पर किसी तरह का असर नहीं पड़ता। मरने-जीने, मौत-गमी, छट्ठी-बरही, निकासन से बेअसर हों। यह तो नाम भर की बात है। पुरखो ने जैसा भी नाम धर दिया उसे लोग ढोते चले आ रहे हैं। गाँव के लोग जरा

आस-पास आमने-सामने घूरने के आदी कुछ ज्यादा ही होते हैं। आज सबेरे से ही लच्छू के घर पण्डितों का आना जारी था। सबकी रजामन्दी से लच्छू आज सुगिया और दद्दा की एक साथ तेरही कर रहा था। उनकी आत्मा की शान्ति के लिए तेरही, दोना-पत्तल, अगियारी, मुण्डन, तिलांजलि देना जरूरी था। भा भिसारे लच्छू की घर वाली उठकर दलान में बैठकर जोर-जोर से गाने की लय मे रोते-रोते कह रही थी - 'कहाँ गएव मोर महतारी औ बबुआ। कहाँ बिलाय गएव। तनी मुँहना तो दिखाय जाव।' महतारी-बाबू जब होते तब न दिखा जाते। लच्छू की घरवाली को घेर कर आस-पास की कई औरतें उसे समझाने लगी - 'सबुर करव बहिनी। इतै दिना की उनकी जिन्दगानी रही तुमरे साथ रहै बरे। अब उनका भूल जाव।' अब क्या था लच्छू की घरवाली ज्यादा ऊँचे स्वर में रोना शुरू कर दिया। जमीन पर सिर-हाथ पटक-पटक कर शरीर और धोती लूगा की परवाह किए बिना गाते-गाते रोती जाती। 'कहाँ गएव मोर महतारी औ बबुआ। कहाँ बिलाय गएव....।' अब की बार लच्छू ने डपटकर कहा- 'छोप रोना-धोना बन्द कर रे परवतिया। बहुत होइगा। चल काम देख पण्डित-महाराज तेरही बदे आवत हैं। भूल जा उ दूनौ जने का। उ हमार दुसमन रहे जो हमका मजधार मे छोड़ चले। हमार तो करेजा फटा जात है। औ तोका रोए के पड़ी है।

लच्छू के डर से उठकर परवतिया काम-धन्धा में लग गयी। गाँव के जात-परजात की औरतें तथा सगी-संबंधी मिल-जुलकर चूल्हे-चौके में खाना-पीना बनाने में टूट पड़ीं। सबके मन में एक भाव समाया था कि महतारी और दद्दा सीताराम की आत्मा की शान्ति के लिए वे जितना जो करेंगी उन्हें उतना ही वे लोग स्वर्ग से आशीष-आशीर्वाद देंगे। इस स्थायी भाव से वे सारी महिलाएँ चने उरद की दाल, भात, रोटा, आलू बैगन की सब्जी, आलू गोभी-मटर-टमाटर की रसेदार सब्जी, माठा-बरा सब कुछ जोश-जोश में बनाती गयीं। हालांकि इसमें भी उन्हें कम से कम तीन घण्टे तो लग ही गये। रसोई घर के दोनों चूल्हे दहक रहे थे फिर भी अस्थायी दो चूल्हे काम काज के लोड को देखते हुए धड़ाके से सुलग रहे थे। इस तरह सारे काम को औरतें धुएं में डूबकर पल्लू से आँखें पोछ पोछकर, खाँसते खखारते अंजाम दे रही थीं।

उधर पण्डित तुलाराम अपने सहयोगियों के साथ पंक्ति में बैठकर तेरही की सारी क्रिया प्रारम्भ कराने बैठे थे और पुजापा की एक-एक सामग्री माँगते जा रहे थे। वे गँवारू पण्डित थे। अतः एक-एक सामान को जरा ऊँचे स्वर में माँग

रहे थे। सामान आने में देरी के लिए लच्छू के घर आयी औरतों की खबर भी ले रहे थे। जिस सामान के आने की गुंजाइश उन्हें नहीं होती उसके लिए लच्छू की चुटकी लेकर तुरंत किसी लड़के को दौड़ा कर बाजार से मँगाने की फरमाइश कर बैठते। आज तो पण्डित तुलाराम की ही चलनी थी। जो कुछ माँगते सब कुछ लच्छू को लाना था। चाहे तो आसमान के तारे और चिड़िया का दूध भी माँगते तो लच्छू को कहीं न कहीं से लाना ही था। क्योंकि उसकी महतारी-बाप की आत्मा की शान्ति के लिए सारा कर्मकाण्ड होना था। भला इसमें कौन बाधक बनता। पण्डित जी की आत्मा दान-दक्षिणा प्राप्त कर शान्त होती तभी तो सीताराम सुगिया को असली शान्ति मिलती और उनकी भटकन समाप्त होगी अन्यथा भूत बनकर उनकी आत्मा माघ मेला से लेकर घूरपुर गाँव तक दर-दर भटकती रहेगी जैसे कोई रास्ता भूलकर भटकता है और बेचैनी में दिन काटता है। आत्मा की यह भटकन तो बहुत खराब है।

तभी दद्दा सीताराम अपने गाँव घूरपुर में थके हारे प्रवेश किया। गाँव के लच्छन देखकर उनके मन में तमाम शका-कुशंका का रेला आया। जैसे मेले में आया था। फिर भी अपने को सम्भालते हुए वे भारी-भरकम कदमों से अपने घर की ओर बढते गए। दूर से ही अपने घर के द्वार पर लोगों की भीड़ देखकर उनका माथा ठनका। मन कुशकाओं से भर गया। पता नहीं कौन सी दुर्घटना की मार उन्हें यहाँ भी सहनी है। अभी तक तो एक से उबर नहीं पाये हैं कि दूसरे का घाव वे कैसे झेल पायेंगे। बडे भारी मन से वे आगे बढ़ते ही गए कि उनका सामना अपने बेटे लच्छू के बेटे अर्थात् पोते गंगाधर से हो गया। वह चौंकते हुए घबराते हुए बोला-

- अरे दद्दा तुम हो या तुम्हार भूत। भागो दद्दा भूत बनकर आए हैं। भागो बच्चों भागो....

(कहते-कहते उसके हाथ की डलिया में पूड़ियों का ढेर था डालिया हाथ से छूट कर गिर गयी)

- अरे बेटा गंगाधर सुन तो.....

- नाही - नाही हम एक न सुनब। दद्दा तुम भूत हो।

- अरे बेटा सही बात तो सुन। हम पर का का बीता है हमही जानत हौ।

(तभी लच्छू अकस्मात आ जाता है।) जिसे पहचान कर दद्दा सीताराम कहते हैं -

- लच्छू हम लोग तो मर के जिए हैं। ई बताओ तुम पचन घर में का करत हो।

(लच्छू को काटो तो खून नहीं। उसे साँप सूँघ गया कहा)

- दद्दा घरे में का बताई.... का बताई तेरही होय जात है।

- के के बेटवा के के....। कोई असुगुन होइ गवा का। इस बुढ़ाई में हमका का... का... देखब बदा बा।

- कुछौ नाही दद्दा गलती से तुम्हरै तेरही का काज होई जात है। चलो अच्छै भा जो अबै आय गएव। सब काम रोक दोइत है। इ बतावा दद्दा कि महतारी कहाँ है। ओकर का हाल बा।

- बेटवा महतारी तो अस्पताल में भर्ती अहै। फुरसत से बताइ देब। समझ लो हम लोग मौत के मुँह से निकलके आए हई। उ कहाँ फंसी रही हम कहाँ जूझत रहे। हमका जरकौ अता-पता नाही रहा।

(इस दौरान लच्छू जोर-जोर से चिल्लाकर पण्डितों को कहने लगा)

- बन्द करो पण्डित यह सब तेरही-बरही रहने दो। हमका कोई दान-दक्षिणा नाही करना है। हमार तो दद्दा जिन्दा लौट आये हैं रामापुरी से। तुम सब जाव अपने-अपने घर। सब बन्द करो पण्डिताइ किरिया करम...)

(सीताराम दद्दा ने विरोध करते-करते कहा)

- नाही बेटवा पण्डितन का सूखे हाथ लौटावा नाही जात। इनका खाना-पीना तो कराइ देव। समझ लेव हमरे सकुसल लौटबे की खुशी में बाभन भोज कराइ देव।

(लच्छू ने सहमति जताते हुए कहा)

- दद्दा जब तुम्हार मन बा तो चलो यही सही। इन पाँच के भोजन तो कराइ ही देय के अहै। मुला खटकरम कुछ न करय देव।

- चलो ठीकै अहै। पण्डित लोग खाय लेहैं तो समझो कि मेला में मरै लोगन की आत्मा सान्त होइ जाइ। बेचारे कइसे तड़प-तड़प के सब मरे रहन। आपनी आखिन से देखा हय। उनहूँ के आत्मा की सान्ति के लिए पण्डित जी कुछ मंत्र तो करबै करिहैं।

(बीच में ही गंगाधर उबलते-उबलते कहने लगा)

दद्दा इ पण्डितन के हम कुछ करै न देब। इ जिन्दा रहत में खूब लूटत हैं और मरे में भी दूनौ हाथे लूटत हैं। जैसे भगवान इनका इतनी छूट दिहे हय....।

- चुपबे उ सब सुन लेहैं तो का कहियैं। चुप एक दम चुप। जबान मत खोल।

पण्डित जी ने धर्म संकट से बचने के लिए सबके बीच कहा -

सारे लोगन के अकाल मौत के लिए महामृत्युञ्जय मंत्र का पाठ कराना ठीक होई जजमान। सुनो -

ओम् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मु क्षीय माऽमृतात्।

# (सात)

भूगर्भ-शास्त्रियों या जियोलॉजिस्ट लोगों ने इलाहाबाद की भूमि का कितनी बार सर्वेक्षण-परीक्षण किया होगा और आगे भी बड़ी बारीकी से करेगे इसमें कोई शक़ नहीं है। वे यहाँ की भूमि में पानी, खनिज, लवण, लौह आदि का पता लगाकर अपने-अपने निष्कर्ष निकालते आए हैं। कृषि वैज्ञानिक इसकी उर्वरता का पता लगाते हैं जबकि खनिज वैज्ञानिक इसमें छिपे खनिज पदार्थों की खोज खबर लाते हैं। जल स्तर का पता लगाने वाले जल भण्डार कितनी गहराई मे स्थित है। इसका पता लगाते हैं और भूकम्पन वैज्ञानिक तमाम तरीके से पता कर लेते हैं कि कहाँ-कहाँ और कौन-कौन भूकम्प क्षेत्र है। सबके निष्कर्ष अलग-अलग उद्देश्य के लिए होते हैं। सब मिलकर देखा जाय तो पता चलता है कि इलाहाबाद की भूमि में ग़ज़ब की उर्वरता है जो कहीं नहीं मिलेगी। भले ही वह खेती-बारी के काम की उतनी न हो जितनी होनी चाहिए किन्तु दूसरे मामलों मे जैसे राजनीति, साहित्य-संगीत कला के लिए तो यहाँ की भूमि की उर्वरा शक्ति बेहद है बेमिसाल है। सब तरह के मिले-जुले तत्व इसमें मिल जायेंगे। जिन सबके मेल से बनता है एक खास तरह का इंसान। जिसकी इंसानियत का परचम उसके जीते जी किंबदन्ती की तरह तो फहराने लगता ही है किन्तु उसके न रहने पर भी उसके चेहरे के चारों ओर तेज वलय का घेरा बन जाता है। जिससे लोग आसानी से पहचान लेते हैं वह कितना तेजवान-तेजपुंज, तेजाबी तेहवान शख्स है।

मन को समझाने के लिए कहा जा सकता है कि जीन्सवादी सिद्धान्त के अनुसार वे सारे गुण-दोष जो हममें वर्तमान हैं वे तो सीधे हमारे पूर्वजों की धरोहर के रूप में हमें मिलते हैं हम उनके मालिक-मुख़तार बन जाते हैं और मजे से मालिकाना हक़ के हवलदार बन जाते हैं। यदि इस मत को शत प्रतिशत सही मान लिया जाय तो चोर, डाकू, कातिल, तस्कर, अड़ीबाज का बेटा भी वही

बने जो उसके वंशज थे और डॉक्टर, इन्जीनियर, जज, वकील, मास्टर का बेटा भी अपने माँ-बाप जैसा बनें किन्तु आमतौर से ऐसा होता नहीं देखा जाता है। जीन्स वाले तो कम किन्तु मीन्स वाले ज्यादा अच्छी जगह बैठने-खड़े होने के लिए समाज में जगह बना लेते हैं जैसे ट्रेन में ज्यादा चतुर-चालक व्यक्ति खड़े होने के लिए ही नही बैठने-लेटने की जगह तलाश लेता है। भरोसा न हो तो ट्रेन-बस की यात्रा में नंगी आँखों देख लीजिए।

फिर यह कहावत बनाने वाले कहते ही क्यों - दीपक तले अंधेरा और बल्ब ऊपर अंधेरा। ज़ाहिर है कि इलाहाबाद की मिट्टी में खेला-खाया व्यक्ति अपनी अलग से पहचान बनाने में सफलता पा ही जाता है। भले ही वह किसी भी क्षेत्र में हाथ-पाँव चलाए। इलाहाबाद गंगा-जमुना तथा सरस्वती नदियों के सगम पर बसा है। ये नदियां अपने उद्गम स्थल से लेकर यहाँ तक की यात्रा करते-करते पर्वतों बनों को लांघते-फलांगते पता नहीं कितने खनिज पदार्थों जड़ी-बूटियों के सत्व-तत्व लेकर यहाँ आती हैं और इसे भरपूर मालामाल बनाती हैं। इस तरह इलाहाबाद को भरपूर उर्वरता से भर देती हैं फिर तो यहॉ कोई कहीं से आया हो वह उर्वर-उच्छल-उत्तुंग हो ही जाता है। यह इलाहाबाद की मिट्टी की तासीर है जिसे यह छू ले वह सोने का ही नहीं स्वर्ण आभरण भी बन जाता है। इस तरह कितने सारे लोग इलाहाबाद में जन्म लेकर या इलाहाबाद मे पलकर पनपकर समाज के भूषण भी बन गए जिसे समूचे देश ने कण्ठहार के रूप मे ग्रहण किया। उन्हें इस रूप में बनाने में गंगा-यमुना-सरस्वती नदियो की गरिमा की गंध एक ओर थी तो दूसरी ओर पुण्य प्रयाग की पूंजी थी जिसने उन्हें पुरुषों में पुरुषोत्तम बना दिया। इससे वे देश के क्षितिज पर जगमगाते नक्षत्र बन गए और अपनी चमक आज तक बनाए रखा है। और जो नहीं बन पाए समझ लीजिए कि वे इस क़ाबिल ही नहीं थे जैसे चन्दन हर वन में नही मिलता और मुक्ता हर हाथी से प्राप्त नहीं होता।

इलाहाबाद को यदि मटकी भरा दूध मान लिया जाय जो कामधेनु से प्राप्त है तो यहाँ के ऊष्म वातावरण की गर्मी में पके दूध पर अच्छी खासी मोटी मलाई पड़ना स्वाभाविक है। जिनमें दम-खम होता है वे दही-मही से मक्खन बन ही जाते हैं। बहुत सारे लोग यहाँ मक्खन बन कर निकले हैं। नाम से तो मक्खन लाल यहाँ ढेरों मिल जायेंगे किन्तु काम से मक्खन से मनोहर लाल तो उंगली

पर ही गिने जाने क़ाबिल हुए है। उनका मनोहारी रूप कितना मनोहर लगता है इस पर कौन इलाहाबादी गर्व नहीं करेगा। आखिरी गर्व की बात यह क्या कम है कि इलाहाबाद की उर्वर खदान से एक से एक रत्न निकले हैं, एक से एक बहुमूल्य विभिन्न वजन के हीरे निकले हैं और जो जिस जगह रहे और हैं वहाँ अपनी चमक-दमक से सभी की आँखें चौंधिया रहे हैं। भला बताइये आज तक कोई ऐसी खदान देखने-सुनने को मिली है कि उसमें लोहा-तांबा पीतल चाँदी सोना हीरा आदि सब एक साथ मिले हों। मिलना तो दूर रहा ऐसे खदान की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लेकिन ऐसे खदान को साकार रूप में देखना हो तो इलाहाबाद चले जाइये और अपनी आँखों सब कुछ देखकर इतमीनान कर लीजिये कि इलाहाबाद ऐसी खदान है जो दुनिया में तो नहीं कह सकता किन्तु भारत में तो इसके मुक़ाबले की दूसरी कोई जगह नहीं है। यहाँ एक से एक सुपर मैन, जीनियस, जाइण्ट आफ माइण्ड तथा जाइण्ट आफ हार्ट से लेकर जाइण्ट आफ सोल हुए हैं। जगत में ऐसे जीव होते तो कम हैं किन्तु इलाहाबाद की धरती मे कुछ अधिक ही पाये गये हैं। इसका प्रमाण भूगर्भ शास्त्र तथा इतिहास है जो एक से एक बहुमूल्य नगीने को अपनी दसों उंगलियों में पहने दूसरों को अंगूठा दिखाता है कि मेरा सौभाग्य तो देखो।

यदि कोई पूछे कि इलाहाबाद कैसा है तो साफ-साफ बताया जा सकता है कि यह चुस्त-दुरुस्त है और सुस्त-सोता हुआ भी है। यह चतुर-चालाक भी है और निहायत बोदा-बुद्धू दिन-रात मेहनत-मस्सक्कत करने वाला है तो टाग पसार कर मुँह ढंक कर सोने वाला इस कहावत का हिमायती है कि किस-किस को रोइये, किस-किस को गाइये, आराम बड़ी चीज है मुँह ढंक कर सोइये। इलाहाबाद सादा जीवन उच्च विचार वाला नगर है। लोगों की सादगी के बीच ऊँचे ही नहीं बहुत ऊँचे-ऊँचे विचारवान भी हैं। शान्ति प्रिय लोग भी हैं तो मरने मारने, गला घोंटने, गला काटने, हत्या-कत्ल, लूटपाट डकैती, तस्करी, पुलिस की हिरासत से भागने वाले लोग भी हैं। भौतिक सुखों को भोगने वाले है तो आध्यात्मिक सुख-शांति, पूजा-पाठ, उपासना-उपवास वाले भी हैं। नित्य प्रति गगा जल पीने वाले हैं तो रोज देशी ठर्रा पीने वाले भी हैं। एक तरह से इलाहाबाद द्वंद्व में जी रहा है। उस दार्शनिक मत को सिद्ध कर रहा है कि जगत मात्र द्वंद्व का संघात है। यह द्वंद्व ही जगत की विशेषता है जिसे द्वंद्वी ने बडे

कौशल से रचा है। इसी से इलाहाबाद में समाज के थिंक टैंक या विचार बम हैं तो वेस्ट बास्टकेट कचरा पेटी भी हैं। देश के कर्णधार नेता हैं तो सभाओं में दरी बिछाने समेटने वाले, रैलियों में इंक़लाब -जिन्दाबाद के नारे लगाने वाले पिछलगुए भी हैं तथा कथित शंकराचार्य, गादीदार, संत-महंत हैं तो उनके भक्तों की मण्डली भी है। साहित्य के सेनापति भी हैं तो उनको मारने-काटने वाले प्रतिद्वंदी भी हैं। भाषणबाज, कूड़ा करकट लिखने-छपने वाले ढिंढोरची भी मिलते हैं। कुकुरमुत्ते की तरह पनपने वाली साहित्यिक, समाज सेवी संस्थाएं भी है तो जवास जैसा वे मिट भी जाती हैं। इतना जरूर है कि इलाहाबाद देश के और नगरों की तरह कदम से कदम मिला कर दौड़ नहीं पाता। उसमें उतनी कूव्वत-ताक़त नहीं है क्योंकि यह ज़रा बुढ़ापे की दौर में है। किन्तु इसके पास है जोड़ी जुहाई गयी अमूल्य पूंजी। यही इसकी ज़िन्दगी भर की कमायी है।

इलाहाबाद की अपनी कुछ खासियत है जिसके दम पर वह सदा से से जाना जाता रहा है और आगे भी जाना जाता रहेगा इसमें जरा भी संदेह नही है। यहाँ गरीबी इतनी अधिक है कि दो जून की रोटी नहीं मिलती और अमीरी इतनी ज्यादा है कि कुछ के लिए कहा जाता है कि उन्हें और जमीन-जायदाद खरीदी पर सरकार की ओर से रोक लगी थी। यहाँ की मण्डियां दो कामों के लिए अपनी पहचान बनायें रखी हैं। एक तो रहने के लिए दूसरे खास तरह के व्यापार-व्यवसाय के लिए। रहवासी मण्डियां भी पूरी तरह से एक ही उद्देश्य के लिए नही है। अगले भाग में पहले तो बनिया - महाजनों की आढ़त की गद्दियां होती थी जहाँ दिन भर नाप-तौल, गिनती की धूम मची रहती थी। पैंकारों, पल्लेदारो, दलालों की धमा चौकड़ी मची रहती थी। खरीददार और बेचने वालों की चिल्ला-पों चलती रहती थी। गद्दी तो खालिस कमीशन के दम-खम पर चलती है। बाहर के व्यापारियों ने अपने अनाज के बोरे भेज दिए फिर बेफ़िकर हो गए उसकी बिक्री के बारे में। जो भी बाजार भाव रहा उस पर उनके सामान बेच दिया जाता है। लेकिन मण्डी के दूसरे हिस्से में रहवासी लोग भी कोई न कोई कुटीर उद्योग चलाते ही हैं। पहले ज्यादातर लोग अरहर के दाल बनाने का धंधा करते थे जिसमें उन्हें चार पैसे की बरकत होती थी। सुबह-सुबह आदमी इस काम को देख लेते थे तो दोपहर से लेकर शाम तक औरतें अरहर के दाल के काम को अंजाम देती थीं। इस काम में अनदेखे बहुत से लाभ होते थे एक तो औरतें पड़ोसियो

से लड़ने का समय नहीं पाती थीं। दूसरे आपस में बैठकर चुगली-जुगाली नही कर पाती थीं। तीसरे सास-बहू के रार के दृश्य भी कम ही दिखते थे। चौथे दस-बारह बच्चों के परिवार में उनके आपसी मार-पीट में माताओं द्वारा उनकी धुनाई के अवसर भी कम आते थे। किन्तु दूसरे तरह के अवसर तो दिन में कई बार आते थे जैसे गाय-बकरी पालने वाले उन्हें दोपहरी में छुट्टा छोड़ देते थे तो वे टाट पर बिछी अरहर की दाल की पीतिमा पर जब टूट पड़ती थीं तब तो औरतो का लाल-पीला होना बड़ा स्वाभाविक होता। वे या तो एक - डण्डा धुन देतीं या ऐसा अवसर न पातीं तो उनके पालनहार-राखनहार को मोटी भद्दी सी गाली- 'पलवैया गाड़ो तोर खटिया उठै' देकर ही संतोष करतीं। इस कुटीर उद्योग ने उन्हे बड़ा कटु बना दिया था।

दोपहर में न तो औरतों की आँखों में नींद रहती और न चैन। चार पैसे की आमद ही उनकी आँखों के सामने दिखाई देता था। अरहर की दाल की प्रक्रिया मे वे अपने को होम देतीं और चार पैसे का लालच उनके स्वास्थ्य को चौपट करता रहता था। इस काम में लगने वाली मण्डी थी- बाबूगंज की मण्डी, सुन्दरगंज की मण्डी-मखनूगंज की मण्डी, गाजीगंज की मण्डी, सालिग गंज की मण्डी आदि।

दूसरी तरह की मण्डी भी इलाहाबाद में कम महत्वपूर्ण नहीं हैं वैसे तो आज भी वे जीवित हैं और उन्हें कोई मार भी नहीं सकता क्योंकि वे इलाहाबाद की पहचान सजीव बनाये बैठी हैं। इन मण्डियों में कुछ खास तरह की गंध सदा बनी रहती है जो उन वस्तुओं का प्रचार करती हैं जिसके लिए ये मण्डियाँ हैं। जैसे गुड़ की मण्डी में गुड़ की सुगन्ध के साथ-साथ बरैया-मक्खियां भी खूब मडराती रहती हैं। खरीद-फरोख्त करने वालों की भीड़ लगी रहती है। साथ ही बढिया गुड़ की पहचान परख के लिए ग्राहकों को पहले तो एक-एक भेली ही पकड़ा दिया जाता था। बड़े-बुजुर्ग दलाल थोड़ा सा चखते बाकी वहाँ खडे लडकों की टोली जो गुड़ के पास चीटों की तरह मंडराने की कहावत चरितार्थ करते उन्हें बाँट दिया जाता। अब ज़रूर चखने-चखाने की मात्रा में खोट आयी है। इसे कोई क्या करे। खोआ मण्डी में इलाहाबाद के आस-पास के ग्रामीण खोआ बनाकर बेचने आते हैं। वे अल्युमुनियम-पीतल या फूल की थाली मे खोआ रखकर मैले-कुचैले कपड़े से ढक्कर जो कि खोआ से नहाया रहता है

लाइन से खोआ मण्डी में नाली-नाबदान के किनारे बैठ जाते हैं और ग्राहकों का इन्तज़ार करते रहते हैं। गाँव से वे यही कसम खाकर चलते हैं कि खोआ बेचकर ही लौटेंगे और वे इसका निर्वाह भी खूब करते हैं। कम-देश जो भी भाव बना शाम तक बेचकर ही घर लौटते हैं। वापस तो ले नहीं जा सकते। अब यह तो उनकी तकदीर है कि भाव चोखा और जल्दी मिला तो बेच-बाच कर सौदा सुलफ खरीद कर शीघ्र गाँव लौट जाते हैं। गर्मी के दिनों में या लगन में उन्हें चाँदी काटने का खास मौका तो मिलता है किन्तु ज्यादा मात्रा की मांग के दबाव मे खोआ बेचने वाले ग्रामीण सस्ते में सौदा करने को मजबूर हो जाते हैं। हलवाई उनके खोए की पक्की परख कर पन्द्रह-बीस खोआ वालों की झुण्ड को हाँकता हुआ विवाह कारखाने तक ले जाता है। फिर वहीं पर तौल-नापकर भुगतान करा कर उन्हें चलता कर देता है। घी-मण्डी भी अपने तरह की खास मण्डी होती थी किन्तु उसका स्वरूप अब बहुत बदल गया है। पहले तो गाँव वाले चमड़े के बडे-बड़े कुप्पा में घी भर कर घोड़ों के दोनों ओर लाद कर मण्डी में लाते थे। दलाल अपनी दलाली के आधार पर देख-चख के बाद हथेली के पिछले भाग पर घी रखकर दाहिनी हथेली से घिसकर परखता था कि घी शुद्ध है या अशुद्ध। फिर उसकी बिक्री की व्यवस्था करता था। इस तरह घी मण्डी में रोज दर्जनों कुप्पे घी बिक जाते थे। कहते हैं कि कोतवाली के बगल में भी एक घी मण्डी थी जिसमें घुसते ही घी की जोरदार सुगन्ध उठती थी जिससे सारा वातावरण घी मय लगता था। आज के जमाने की बात कहें तो आज का नौजवान यदि उस मण्डी मे पहुँच जाय तो शुद्ध घी की सुगन्ध के भपके से बेहोश तो जरूर हो जाएगा। इसमें संदेह नही है। ऐसी ही एक मण्डी है सेंवई की। जहाँ प्राचीन काल से लेकर आज तक सेवइयां बनती हैं और जमकर बिकती भी हैं। वैसे तो सेंवइयां हमेशा बनने तथा बिकने वाली चीज है। किन्तु इस पर भी बहार के दिन आते हैं। ईद पर तो इस मण्डी मे भरपूर शबाब ही आ जाता है। सेवइयां मशीन से बनती रहती हैं, धूप में सूखती रहती हैं और कागज की थैलियों में बिकती रहती है। ईद पर इनकी दुकानें देर रात तक खुली रहती हैं। जिससे सजावट के लिए रंगीन कागज, तेज प्रकाश वाले बल्ब, दो-दो-तीन-तीन दुकानदार ग्राहकों को उनकी माँग की पूर्ति करने में बारह से अट्ठारह घण्टे तक का समय खुशी से देने को तैयार रहते है अब ता सेवइयों के स्वरूप मे भी जबर्दस्त परिवर्तन आया है

बढ़िया पैक पैकटो मे सिकी हुई सेवइयां का समय आया है जिससे दुकानदारों का मुनाफा मारा गया तो कम्पनियां उन्हें दाल में नमक के बराबर ही मुनाफा खाने देती हैं। इस क्रान्तिकारी परिवर्तन को रोक पाना सेंवई मण्डी के दुकानदारों के बूते की बात नहीं है। अब तो बहुराष्ट्रीय कम्पनिया भी इस तरह के कुटीर उद्योगों पर हमलाकर क़ब्ज़ा करने के लिए कदम बढ़ा रही हैं। जिससे ये उद्योग लडखड़ा कर गिरने की कगार पर खड़े हैं। इन उद्यमियों और इनके परिवार का क्या होगा। कौन जाने, अभी तो ये पैर टिकाये हैं।

अन्य मण्डियाँ भी अपने-अपने मतलब को पूरा कर रही हैं या उनके मतलब का खुलासा ही नहीं होता। बाध मण्डी भी बाध के इतिहास को अपने में समेटे हैं। यहाँ विभिन्न प्रकार के बाध-मोटे महीन, बढ़िया-घटिया-मध्यम, सस्ते, महगे सब प्रकार के बिकते हैं। जो चारपाई बुनने के काम आते है मिलते हैं। इतना ही नहीं इस मण्डी में बाध से लेकर बुनी-बुनाई चारपाई तक मिल जाती है। आमतौर से टम्परेरी रहन-सहन के लिए लोग बंसखटा खरीद कर काम् चला लेते हैं। ज्यादातर पढ़ने-लिखने वाले लड़के जो एक कमरा किराये पर लेकर अपनी पढ़ाई-लिखाई करते हैं उनके मतलब की बंसखटा खूब काम आती है। ऐसा भी होता है कि जो लोग अपने वृद्ध जनों का पिण्डदान या खटकरम के समय महाबाभन को सेज शैय्या दान करते हैं तो वे बंसखटा यहीं से खरीद कर ले जाते हैं। किन्तु इनके धंधे पर जबसे नज़ला आया है ये बुरी तरह मारे गए है। अब लोग फर्स्ट क्लास सनमाइका की पलंग या लोहे की फोल्डिंग पलंग के जमाने में बाध मण्डी का रास्ता भूलते जा रहे हैं। कौन उन्हें समझाये कि हमारे बाप-दादे, पुरखे सादा जीवन उच्च विचार के पोषण में खाट को ही महत्व देते थे। इस पर कभी खटमल का हमला हो जाय तो चरपाई को धूप में पटक कर डण्डों से पीट-पाट कर, गर्म पानी, मिट्टी का तेल छिड़क कर व्यापक व्यूह रचना द्वारा उनका अन्त करना भी सनमाइका, निमाड या फोल्डिंग पलंगों की तुलना में बहुत आसान है। अब तो यहाँ की दुकानों पर बना बनाई अर्थी भी बिकती है।

सब्जी मण्डी के नाम से ही साफ पता चलता है कि इस मण्डी में तरह-तरह की सब्जियाँ थोक में काफी सस्ती मिलती हैं। इसीलिए जिन्हें ज्यादा सब्जी लेना रहना है या विवाह-शादी में सैकड़ों-हजारों की पंगत को जिमाना रहता है

वे सीधे सब्जी का रास्ता नापते हैं। वे साग-सब्जी खरीदकर बोरों में भर पार पाते हैं। लेकिन खरीदी के समय खूब मोल-भाव, झिकझिक के बिना नहीं टरकते। उनके पास इलाहाबादी रंग-ढंग के हिसाब से समय इफ़रात रहता है। तभी तो इसे वे अपने तरीके से खर्च करते हैं। इस मण्डी की दुकानें बड़ी बेहरतीब, बेहिसाब, बेकायदा तथा बेकसी होती हैं। क्रेता और विक्रेता भी खास लटके में बात करते हैं जिसमें बेअक्ली-बेअदबी बेबाकी बरसती है। शोर-शराबा का तो कहना ही क्या है। यहीं से तो 'सब्जी मण्डी बना रखा है' की कहावत का जन्म हुआ है। जो सचमुच शोर-गुल की खदान है। बिना ऊँचे स्वर में बोले और उसमें भी गाली का ठेका-टप्पा न लगाया जाय तो बात ही नहीं बनती। सब्जी मण्डी में सब्जियाँ इलाहाबाद के आस-पास के गाँवों कस्बों या फिर दूसरे शहरों से ट्रकों पर लद कर आती हैं। मण्डी में ट्रक मुश्किल से घुस पाते हैं और खाली होने पर मुश्किल से ही निकल पाते हैं। बेचने-खरीदने वालों के अलावा मजदूर-मोटिया, रिक्शे वाले, ट्राली वाले सभी घुसकर धमा चौकड़ी मचाते हैं। गाय-बछड़े-सांड भी यहाँ बेरोक टोक मुँह मारने के लिए घुस जाते हैं और जहाँ मौका पाया नहीं कि सब्जियों पर टूट पड़ते हैं। उन्हें कोई बुलाने नहीं जाता वे तो इनकी सुगंध से खिंचे चले आते है। फिर तो भले ही सब्जियों के साथ-साथ डण्डे भी खाने पड़े। इसके लिए वे कोई उज्रदारी नहीं करते। जब माल खाते हैं तो मार भी खानी ही पड़ती है। कभी-कभार शरारती लड़के दो सांड़ों को इधर-उधर से टिटकार कर आपस में भिडाने का माहौल बनाकर भीड़ में गुम जाते हैं। किंतु जब ये सांड़ लड़ने पर उतारू हो जाते हैं तो खोमचे वाले, पैदल लोग, साइकिल, रिक्शा वालों की सांसत हो जाती है। वे अपने सामान आदि लेकर बेतहाशा भागते हैं जिसमें किलनों के खोमचे उलट-पलट जाते हैं। लोगों की साइकिल-रिक्शा की पहिया टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती है। पीछे से उसे उठाए मरम्मत की दुकान तक घसीटते ले जाते लोग खूब मिलते हैं। यह नज़ारा बड़ा बेढ़ब होता है। जब दुकानदार या पहलवान टाइप के लोग साड़ों पर जोरदार डण्डा बरसाते हैं तब कहीं वे काबू में आते हैं और इधर-उधर खिसक जाते हैं। इस कुश्ती के रेफरी को लाख खोजा जाय उस चुहलबाज लडके का कहीं अता-पता नहीं चलता। इस भीड़ भरी मण्डी में कोई जेबकट अपने हाथो की सफाई कर बैठे तो क्या कहा जाय। उसकी सफाई से जेब तो हल्की हो जाती है किन्तु मन जरूर भारी हो जाता है जिसका भारीपन कई दिनों तक बना रहता

है। मण्डी के आस-पास की दीवारें या सार्वजनिक मूत्रालय की दीवारें भी संदेश देती हुई कहती हैं - बवासीर का शर्तिया इलाज, गुप्त रोगों जैसे सुजाक, शीघ्र पतन, धातु रोग का बेजोड़ इलाज करायें डॉक्टर दीवान द्वारा। बिजली से इलाज शर्तिया इलाज। नौजवान अपनी जवानी ले जायं। बीते दिनों पर पछताने की जरूरत नहीं। ठीक न होने पर पैसा वापस की पक्की गारण्टी। शक़ में डूबे हुए को दीवारें दीलासा भरा पैगाम तो देती हैं जो किसी मसीहा के कम बाँह नहीं पकड़तीं।

बाँस मण्डी जो कि टक्कर साहब के पुल पर आबाद है बड़ी अजीब सी मण्डी है। यहाँ बाँस अकेला नहीं बिकता वरन् हर प्रकार की इमारती लकड़ी, लोहा, टियरन, गार्डर, सरिया आदि बहुत कुछ बिकता है। वैसे तो इसका नाम लकड़ी मंडी या लोहा मण्डी होना था पर बाँस को ही महत्व देकर इसका वंश बेरोक टोक चल रहा है। पता नहीं टक्कर साहब कौन थे और उन्होंने कौन सा पुल बनवाया था जिसके नाम पर टक्कर साहब का पुल हो गया। आज भी लोग टक्कर साहब का पुल-बाँस मण्डी के नाम पर इस क्षेत्र को जानते हैं। यद्यपि इस क्षेत्र के आस-पास के मुहल्लों के अपने नाम हैं जो कि अच्छे संस्कार धानी नाम आर्य नगर और गांधी नगर हैं। यहाँ की रोड का भी नाम पंचक्रोशी समिति रोड है पर इससे इन्हें कोई नहीं जानता है। वैसे बाँस मण्डी बाँस-बल्ली आदि की बिक्री के लिए प्रसिद्ध है। प्रायः मकान बनवाने वाले इस मण्डी से बाँस बल्ली लोहा सरिया बार आदि क्रय करते हैं। इस मण्डी वाले अब बाँस बल्ली भी ठेकेदारों को किराये पर देने लगे हैं जो माघ मेले, कुंभ मेले या वी.आई.पी. लोगों की सुरक्षा के लिए घेराबंदी के काम करते हैं उससे इनकी अतिरिक्त आय हो जाती है। लोहे-लकड़ी वालों का व्यवसाय ठीक-ठीक फल-फूल रहा है। आराकशी की मशीनें अच्छी चाल से चल रही है किन्तु अब लकड़ी के धंधे में भारी रुकावटें आ रही हैं। और लोहे की ग्रिल का धन्धा अब इस मण्डी में बहार पर है।

इलाहाबाद में रानी मण्डी बादशाही मण्डी भी है जो कि मण्डी जैसी तो नहीं मुहल्ले जैसे आकार की हैं। लेकिन यहाँ की बेहद कम चौड़ी गलियां बड़ी दूर-दूर तक सफर करती चली जाती हैं। कहीं-कहीं इन गलियों में साइकिल-स्कूटर छोड़ आवागमन का कोई साधन नहीं बचा है। रिक्शे का तो इन गलियों

से कोई रिश्ता ही नहीं। इनकी पहुँच तक जाना है तो पैरों को पराक्रम करना ही पड़ेगा। मकान भी बेहरतीब बेडौल-बेढंगे बेढब बने हैं। किन्तु चबूतरे का चमत्कारिक चरित्र सब जगह है।

बाग़ कहने मात्र से तबीयत बाग़ -बाग़ हो जाती है। और मन में सैकड़ो-हजारों तरह के फूल खिलने लगते हैं। साथ ही फूलों की तेज एवं भीनी सुगंध नाक के रास्ते मस्तिष्क में घुसने लगती है। किन्तु इलाहाबाद में बाग़ों के नाम पर आबाद बस्तियों में ऐसा कुछ नहीं मिलता। अलोपी बाग नाम से एक पूरा मुहल्ला है जो दारागंज जाते समय रास्ते में पड़ता है। इसकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण यह है कि यहाँ अलोपी देवी का सिद्ध मन्दिर है। अलोप शंकरी देवी दुर्गा का ही एक अनन्य रूप है। यह देवी ही शुंभ-निशुंभ, महिषासुर, रक्तबीज का संहार करने वाली उमा, अंबिका महालक्ष्मी, महासरस्वती रूप वाली भी हैं। अलोपी देवी का मंदिर तांत्रिकों और सिद्ध योगियों के लिए भी साधना का प्रमुख केन्द्र है। ऐसा कहा जाता है कि देवी ने भैरवनाथ से छिपकर यहाँ तपस्या की थी। इसलिए यह स्थान अलोपी देवी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ श्रद्धा से शीश नवाने वाले व्यक्ति की मनोकामना पूर्ण होती है। व्यक्ति निरोग होता है, संतति प्राप्त करता है, रोग-शोक पीड़ा मुक्त होता है। यहाँ नवदंम्पत्ति शादी के तुरंत बाद देवी के दर्शन के लिए जाते हैं या शीतलामाता की शान्ति के बाद बच्चो को दर्शन-पूजन के लिए ले जाते हैं। यह इलाहाबाद की ऐसी परम्परा है जो आज भी जीवित है। अलोपी बाग़ के पीछे बाई का बाग़ है। पता नहीं कौन सी बाई जी ने अपने नाम पर बाग़ बनवाया था। अब तो यही अच्छी खासी बस्ती के रूप में बदल गया है। इससे ही लगा हुआ क्षेत्र राम बाग़ है। जहाँ छोटी लाइन का स्टेशन और प्रसिद्ध राम मन्दिर है। इसके पास ही तुलाराम की बाग़ है। जहाँ मध्यम वर्ग के लोग खाते-पीते मजे से रहते हैं। बाग़ नामधारी ये इलाके प्रायः आस-पास, लगे बझे हैं। जी टी रोड से लगे-लगे ऐसे भी बाग़ वाले इलाके हैं जो काफी महशूर है। कैराला बाग़ भी अच्छी खासी घनी बस्ती वाला क्षेत्र है। पता नहीं क्या समझ कर इसका नामकरण किया गया था। चाहते तो इलाहाबादी अमरूद के नाम अमरूद बाग़ या तरबूज बाग भी रखा जा सकता था। हाँ एक ही बाग का ऐतिहासिक नाम खुसरू बाग़ है जिसे बादशाह जहाँगीर ने अपने प्यारे बेटे खुसरों की यादगार में बनवाया था सचमुच यह आज भी बाग के रूप

मे बरकरार है. यहाँ ठीक बाग़ के बीचो-बीच खुशुरू का मकबरा है। इस बाग से लगा बहुत सारा इलाका खुसरु बाग़ के नाम से जाना जाता है। सिर्फ यही क्षेत्र अपने में नाम के साथ एक बाग़ भी लिए हैं जिसे देखकर, बाग़ और मकबरा मन में समा जाते हैं।

इलाहाबाद की महत्ता को दृष्टि में रखकर आस-पास के राजा रजवाडे अपनी कोठियां बनवा रखते थे या तो उनके पूत-सपूत पढ़ने लिखने की गरज से कोठियों में रहते थे या शहरी परिवेश में रहना उन्हें ज्यादा मुफ़ीद होता था या कभी-कभार बड़ी रानी माँ कुम्भ अर्ध कुम्भ माघ मेला स्नान के लिए प्रयाग आती थीं। दूर-दराज के रजवाड़े तो शुद्ध रूप से धार्मिक भावना से कोठी बनवाये थे। कोठियों में राजा माण्डा की कोठी, शंकरगढ़ की कोठी, विजयपुर की कोठी फूलपुर की कोठी, राजा बनारस की कोठी, दरभंगा कोठी हैं भी नहीं भी हैं। अर्थात् अपने मूल स्वरूप को खोकर मुहल्लों, कालोनी, नगर में बदल गये हैं। जिन्होंने उन कोठियों का मूल रूप देखा होगा। अब उन्हें न पाकर दाँतों तले उगली तो जरूर दबायेंगे। लेकिन इसके अलावा कर भी क्या सकते हैं। संसार के परिवर्तन की सार्थक झांकी यहाँ सरलता से मिल सकती है। राजा-रजवाड़ों को पता नहीं क्या सूझी कि कोठी की जमीनें प्लाट काट-काट कर बेच दिए और कोठी की जगह नगर-मुहल्ले उगा दिए जहाँ अब सैकड़ों लोग रहते हैं।

धर्म क्षेत्र में वैराग्य की ओर जनसाधारण को प्रेरित करने वाले उदासीन साधुओं को दो अखाड़े हैं जो नानक शाही साधु हैं। ये अखाड़े मुट्ठी गंज और कीटगंज में स्थिति है जहाँ अनेक साधु-संत बहता पानी रमता जोगी की तर्ज पर आते-जाते रहते हैं। आश्चर्य है कि माया जाल में फंसे और निन्यानबे के फेर मे फिरते मुट्ठी गंज वासियों पर इस उदासीन अखाड़े का कोई प्रभाव नज़र नहीं आता। भले ही गद्दी फर्म का मालिक इन्हें चन्दा-अनाज दे देता हो पर अखाड़े की धूल तक उसकी ओर नहीं आती जिससे वह वैरागी वीतरागी या उदासीन हो जाय। उसने तो सांसारिक जंजाल में अपने को कमल के पत्ते जैसा बना रखा है जिस पर पानी तो क्या पानी की एक बूंद तक नहीं ठहरती। ठीक ऐसे ही अनुरागी पर वीतरागी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। साधुओं के अखाड़े मे जलती धूनी का धुआ गाजे चरस का धुआं आपस में मिलकर साधुओं को साधुवाद देता है।

इलाहाबाद अपने में बहुत सारा इतिहास समेटे है। कहते है कि गगा पार झूसी नगरी बड़ी विचित्र सी नगरी थी। किवदन्ती है कि यह अंधेर नगरी के नाम से प्रसिद्ध थी। अंधेर नगरी अर्थात् झूंसी एक छोटा सा गाँव है जो इलाहाबाद से पाच किलोमीटर दूर है। जहाँ कभी टके सेर भाजी टके सेर खाजा बिकता था और वहाँ के चौपट राजा के फैसले बड़े अनोखे-अटपटे होते थे। कब किसी पर नगी तलवार गिर जाय कोई नहीं जानता था। बीरबल अंधेर नगर के चौपट राजा का मन्त्री था जिसकी सुव्यवस्था से सभी सुखी थे। एक बार अकबर गंगा तट पर डेरा डाल रखा था और अंधेर नगरी के राजा से मिलने की इच्छा की। राजा तो एकदम डर कर घबरा गया था किन्तु बीरबल ने अपनी सूझबूझ का परिचय देते हुए नाव मे ईट-पत्थर-चूना और राजगीर भेजा। बाद में जब चौपट राजा और बीरबल पहुँचे। तब अकबर अपना मनतव्य बताते हुए स्पष्ट किया कि हमारा इरादा आपके राज्य को लेने का नहीं है। लेकिन ये ईंट पत्थर, चूना क्यों भिजवाया। बीरबल ने चतुरायी से बताया कि आप यहाँ महल बनवाना चाहते हैं ना। बीरबल की बुद्धिमत्ता पहचान का अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और बाद में अपने नवरत्नों में स्थान देने के लिए दिल्ली ले गया। यमुना के तट पर बना किला कहते हैं कि अशोक ने प्रारम्भ कराया था जिसे अकबर ने पूरा किया था और उसने ही प्रयाग से नाम बदल कर इलाहाबाद रखा था। यहाँ पर अशोक की लाट और समुद्र गुप्त का स्तम्भ है। किले के अन्दर ही अक्षयवट भी है। इसकी पूजा के लिए कुंभ मेले के अवसर पर लोगों को जाने दिया जाता है। इलाहाबाद से लगभग 53 किलोमीटर पश्चिम में कौशाम्बी एक ऐतिहासिक स्थल है। अजातशत्रु के काल में यहाँ के शासक उदयन थे जो विचित्र वीणा बजाने में अत्यन्त निपुण थे। वीणा वादन के माध्यम से वे मृग-मृगी को सम्मोहित कर अपने पास बुला लेते थे। पौराणिक काल में देवताओं - दानवो मे समुद्र मंथन के समय जिस वासुकी नामक नाग का उपयोग रज्जु के रूप में किया गया था वह दारागंज में गंगा के किनारे रहता था। वहीं अब नाग वासुकी का मंदिर है। भगवान राम वनवास के समय भारद्वाज आश्रम में पधारे थे जो उस समय गगा तट पर स्थित था। आज वही आनन्द भवन के निकट है। अर्थात् उस काल की गगा और आज की गंगा में अन्तर यह आया है कि उसने अपना मार्ग ही बदल दिया है। साहित्यिक गढ़ के रूप हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हिन्दी के प्रचार-प्रसार, उत्थान उन्नयन के लिए समर्पित है जिसकी स्थापना राजर्षि पुरुषोत्तम

दास टण्डन ने की थी। इसी प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए संगीत समिति है जहाँ प्रति वर्ष संगीत सम्मेलन का आयोजन होता है जिसमें देश के सुप्रसिद्ध गायक बुलाये जाते हैं। इन संस्थाओं में आजकल राजनीतिक हवाएं ज्यादा चलती हैं जिससे संस्थाएं प्रभावित हैं। इलाहाबाद के दक्षिण मे नैनी एक नव औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विकसित है जहाँ के उद्योग धंधे अपनी-अपनी बीमारी से ग्रस्त है लेकिन यहीं एग्रीकल्चर इन्स्टीट्यूट अपनी हरीतिमा, धन धान्य से भरपूर है। इलाहाबाद को स्मार्ट सिटी (साधारण, उन्नत तकनीक, जन समस्याओं के प्रति जवाबदेह, दायित्व के बोध एवं पारदर्शी) बनाने की प्रक्रिया विधिवत प्रारम्भ है। जगह-जगह इण्टरनेट बूथ का जाल बिछाया जायेगा जिससे घर बैठे आवश्यक जानकारी मिल सकेगी।

इलाहाबाद का कुल क्षेत्रफल चौबीस किलोमीटर का है जिसमें मुहल्ले, मण्डियाँ, बाजार, दुकानें, रहवासी मकान, गोदाम, स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी, हास्टल, इक्के - तांगे, रिक्शे के अड्डे, अखाड़ा, व्यायाम शाला, मधुशाला, होटल, सिनेमा घर, मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा, आर्य समाज मन्दिर, राजनीतिक पार्टियों के दफ्तर, काफी हाउस, न्यायालय, पुस्तकालय, वाचनालय, भोजनालय, वेश्यालय, स्नानघाट, श्मशान घाट, गाय भैंस की डेरियाँ आदि सब कुछ मिर्च मसाले जैसा मिली-जुली हैं। यह सब कुछ उसी प्रकार है जैसे पान के बीड़े में बारह मसाले या जचकी में जड़ी-बूटियों के बीस मसाले की तरह इलाहाबाद में सैकड़ों मसालों का मेल है। जरा तफ़सील से गिनें तो यहाँ बिगडे जमींदार हैं, नवाब हैं, रईस हैं, नव धनाड्य व्यापारी हैं, दुकानदार हैं, पुलिस महकमा के अधिकारी-कर्मचारी, मैजिस्ट्रेट, कलेक्टर, जज, वकील, मुवक्किल, मास्टर, डॉक्टर, इन्सपेक्टर, प्रोफेसर, पण्डित, पोप, पुजारी, मुल्ला, हिन्दू, मुसलमान सिख, ईसाई, जुन्नीबाज, चोर-डाकू, जेबकट, चाकूबाज, अड़ीबाज, रण्डीबाज, लौंडेबाज, पतंगबाज, जुएंबाज, दारुबाज सभी मिल जायेंगे। पान बीड़ी सिगरेट के लतियल तो लाखों मिल जाएंगे। उसी हिसाब से इनकी अनगिनत दुकानें भी मिल जायेंगी। उच्चकोटि के ख्याति प्राप्त प्रोफेसरों में डॉ गगा नाथ झा, डॉ. अमरनाथ झा, फिराक गोरखपुरी, प्रोफेसर देव, प्रोफेसर मल्होत्रा- डॉ- बाबू राम सक्सेना. प्रोफेसर भट्टाचार्य, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ रामकुमार वर्मा डॉ जगदीश गुप्त डॉ धर्मवीर डॉ ईश्वरी प्रसार डा

मेघनाथ साहा, प्रोफेसर रानडे, प्रोफेसर कौल, प्रोफेसर जे.के. मेहता आदि दिग्गज रह चुके हैं।

मुहल्लों में मुट्ठीगंज, कीटगंज, दारागंज, बहादुरगंज, मीरगंज, जानसेनगंज, कर्नलगंज, ममफोर्टगंज, के साथ साथ जीरो रोड, हीवेट रोड, जी.टी. रोड, एलगिन रोड, महात्मागांधी रोड, क्लाइव रोड, क्रास्वेट रोड आदि हैं। टोलो के रूप में गाड़ीवान टोला, जड़ियन टोला, गुजराती टोला, भुसौली टोला, घाटो मे बलुआघाट, गऊघाट, रामघाट, द्रौपदी घाट, ककरहाघाट, सरस्वती घाट आदि हैं। बाजारों में ठठेरी बाजार, लोहट्टी बाजार, पसरट्टा बाजार आदि अपने पुराने स्वरूप को लिए जीवित है।

वकालत के पेशे में लोकप्रिय पं. मोतीलाल नेहरू, तेज बहादुर सप्रू, कैलाशनाथ काटजू आदि राजनीति में विख्यात मदन मोहन मालवीय, जवाहर लाल नेहरू, शास्त्री जी, पुरुषोत्तम दास टण्डन, इन्दिरा गांधी आदि समाज सेवको में छुन्नन गुरु, कुन्नन गुरु आदि खिलाड़ियों में मेजर ध्यानचंद आदि हो गए हैं।

हाकी खिलाड़ियों में मेजर ध्यानचंद इलाहाबाद के रत्न थे। जन्म से लेकर हाकी खेल की शुरुआती दौर में वे यहीं इलाहाबाद में थे। वे हाकी के बेजोड जादूगर थे। इनका एक दौर ऐसा भी था जब सारी दुनिया में ये हाकी के बादशाह के रूप में जाने जाते थे। हाकी और ध्यानचंद दोनों एक दूसरे के पूरक-पर्याय बन गए थे। जर्मनी में जब ये हाकी खेल रहे थे तब इनके करिश्मा को देखकर जर्मन खिलाड़ियों को शक हुआ कि इनकी हाकी में चुम्बक जैसी कोई चीज है। इस बिना पर एक-एक कर इन्हें कई हाकी दी गयी फिर भी ये उसी जादूगरी से खेलते रहे और गोल पर गोल दागते रहे। लगातार तीन ओलंपिक खेलो में भारत को हाकी में स्वर्ण पदक दिलाने का मुख्य श्रेय मेजर ध्यानचंद को जाता है। बर्लिन ओलंपिक में उन्होंने अकेले ग्यारह गोल दागे थे। इनके करिश्मायी अदाज़ को देखकर हिटलर भी इनके खेल पर मुग्ध हो गया था और इनका जादू उसके सिर पर चढ़ कर ऐसा बोला कि उसने ध्यानचंद को प्रस्ताव तक दे डाला था कि वे जर्मनी के नागरिक बन जायं। उन्हें हर तरह की सुविधा देकर सेना में कोई ऊँचा पद भी दिया जाएगा। लेकिन ध्यानचंद को माटी की पुकार उन्हे विदेशी न बना सकी और वे इसी देश की धरती के सपूत बने रहे। और अपने जादू की जादूगरी दिखाते रहे

जनतंत्र का चौथा स्तम्भ पत्रकारिता के सुदृढ़ स्तम्भ के रूप में गणेश शकर विद्यार्थी इलाहाबाद के अतरसुइया नामक मुहल्ले में जन्में थे। उन्होने पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐसा मानदण्ड बनाया जो एक आदर्श हो गया। बाद मे उन्होंने अपने पैतृक गाँव फतेहपुर (हथगंवा) में बचपन व्यतीत कर कानपुर चले गए। जिसे उन्होंने अपनी कर्मभूमि बनाया था। और वहीं से दैनिक प्रताप का प्रकाशन प्रारम्भ किया जो गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने वाला तथा स्वतन्त्रता संग्राम में कूदने के लिए युवकों का प्रेरणा स्रोत बन गया था। विद्यार्थी जी ने वर्ष 1913 में इस पत्र के प्रकाशन के माध्यम से देशभक्ति और स्वतंत्रता की बलिवेदी पर मर मिटने वाले तैयार किये। वे अत्यन्त निर्भीक, साहसी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके सम्पादकीय से अंग्रेज शासन की नींद हराम हो गयी थी।

इलाहाबाद में इलाज के क्षेत्र में एलोपैथी, होमियोपैथी, आयुर्वेदिक, यूनानी, तिब्बिया, हकीमी, नीम हकीमी सभी चिकित्सा पद्धतियों का प्रचलन है। ऐलोपैथी को छोड़कर सभी शर्तिया इलाज की दावेदारी करते हैं। कुछ तो इससे भी दो-चार कदम आगे बढ़कर मरीज के ठीक होने की पुख्ता गारण्टी देते हैं। और ठीक न होने पर पैसा वापसी का लालच भी देते हैं। इससे उनकी प्रैक्टिस पर जादुई असर पड़े बिना नहीं रह सकता। नामी-गिरामी डाक्टर रोगी के इलाज की पर्ची अपने ही पास जमा करके रखते हैं और रोगी का नाम पता पूछ-ताछ कर उस पर्ची के सहारे आगे इलाज करते हैं। उन्हें शायद इस बात का डर बना रहता है कि दूसरे डाक्टरों के पास उनकी पर्ची पहुँच जायेगी तो उसी फार्मूले को वे अपना कर लाभ उठा लेंगे। ट्रेड सीक्रेट के तहत वे अपनी पर्ची का राज़ नही खोलते। आयुर्वेदिक, यूनानी, तिब्बिया, हकीम वाले भी अपने ट्रेड सीक्रेट पोशीदा रखते हैं। अपने अनुभवों का लाभ अपने बेटों को छोड़कर किसी को नहीं बताते। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि वे अपने इलाज के अकसीर को अपने ही साथ दुनिया से लिए चले जाते हैं। ऐसे लोगों के ही कारण कितनी सारी बहुमूल्य उपचार पद्धतियां इस संसार से लुप्त हो गयीं। नीम हकीमी इलाज वाले तो कमाल के होते हैं। वे ढेर सारे छोटे-बड़े नामी नेताओं के सार्टीफिकेट तक मढा कर रखते हैं कि उनके असाध्य रोग का शर्तिया इलाज कर उन्हें चंगा किस प्रकार किया है। वे इस तरह के सार्टीफिकेट दिखाकर लोगों में विश्वास का दीप जलाकर उसकी रोशनी में नब्ज़ पर हाथ रखते हैं और अपना धंधा चलाते हैं।

चौक बाजार अपने ढंग का एक नायाब बाजार है। यहाँ सब कुछ मिल जायगा। सुई से लेकर स्टील ट्रंक, ड्रम, कपड़े-लत्ते, साड़ियाँ, शर्ट, बनियाइन, गमछा, रुमाल, ऊन, मच्छरदानी, फल-फूल, नमकीन, मिठाई, नारियल, सूखे मेवे, चाट, गुड़हा सेवा, लइया सब मिल जायेंगे। फुटपाथ पर लोहे, ताँबे, पीतल के कड़े-अंगूठी से लेकर साराफ़ में सोने-चाँदी के जेवरात मिल ही नही जायेंगे इस बाजार में बिक भी जायेंगे। घण्टाघर के पास ही गुदड़ी बाजार मे पुरानी चीजें, कल-पुर्जे, पेंच-पार्ट कौड़ी के मोल मिल जायेंगे। पारखी लोग परख देखकर गुदड़ी में लाल पा ही जाते हैं।

इस इलाके के पुराने मकान या दुकानें पारिवारिक बंटवारे के पाटों के बीच ऐसी पिस गयी हैं कि वे अपना पुरानापन ही खो बैठी हैं। मकान या दुकानों का बटाधार बंटवारे में ऐसा हुआ कि वे बड़ी से छोटी से छोटी होती गयीं। जो हिस्से इस्तेमाल के क़ाबिल नहीं बचे वे खण्डहर से भूतघर बन गए। उनके कितने तो आपसी मामले दीवानी या फौजदारी अदालतों में झूल रहे हैं और उनके वकील उन्हे दिलासा पर दिलासा देते हुए झुला रहे हैं। उनकी दीवारें बताती हैं कि उनमें रहने वाले पुरखों ने उन्हें इतनी मजबूती दी थी कि टूटने को कौन कहे वे तो हिलायें से भी नहीं हिल सकती थीं किन्तु काल के कराल कयामत से और रक्त सबधियों के रहमत-करम से हिलने को कौन कहे हलाक हो गयीं।

चौक में ही रिक्शों का अम्बार-आमद मिल जायगी जो पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण चारों दिशाओं में जाना तो चाहते हैं किन्तु उन्हें निर्बाध अवसर ही कहाँ मिलता है। रिक्शों के सामने रिक्शे ही बाधक बन जाते हैं। इस बीच रिक्शे वाले तथा सवारियाँ आपस में चिकचिक, झिकझिक किए बिना आगे बढ़ ही नही सकते। गाली-गलौज के बोल मुँह से न निकले तो बात ही नही बनती। इतना ही नहीं जब रिक्शे आपस में सट जाते हैं और दस-बीस कदम बढ़ने में घण्टो लग जाता है तो कुछ मत पूछा जाय किन्तु जब पुलिस का जवान रिक्शे पर या रिक्शे वाले पर डण्डे बरसाकर गालियाँ बरसाता है तो यही रिक्शे वाले फुर्ती दिखाकर आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ भागने लगते हैं। इससे ज़ाहिर होता है कि डण्डे मे कितना जोर होता है और भीड़ पर डण्डा कितनी आसानी से कब्जा कर लेता है।

इसी चौक से लगा हुआ एक बाजार लोकनाथ है जहाँ नाश्ता करने से लेकर भरपेट भोजन करने का अच्छा खासा इन्तज़ाम है। मिठाई, नमकीन जो कई तरह की होती हैं यहाँ जितनी चाहें मिल सकती हैं। हम दो हमारे दो के परिवार से लेकर शादी ब्याह में लोगों को नाश्ता कराने के लिए कई किलो लोग खरीदते हैं। मिठाइयों में विभिन्न प्रकार की बर्फी दोरंगी, तिरंगी, खोपरे की, बेसन की, खोआ की, इमरती, बूंदी के लड्डू, बेसन, खोआ के लड्डू, परवल की मिठाई, छेने की मिठाइयां, गुलाब जामुन, रस गुल्ला, पेठा, कलाकन्द, लौकी का लच्छा, रेवड़ी, गजक आदि पूड़ी कचौरी, गरम दूध, लस्सी, मलाई, रबडी, कुल्फी, भंग की ठण्डाई आदि सब कुछ लोकनाथ बाजार में मिलता हैं। कभी भी किसी भी समय इस बाजार में नाश्ता खाया-पिया जा सकता है। दोनों ओर की दुकानों के कारण रिक्शे तो नहीं जा सकते किन्तु पैदल, साइकिल या स्कूटर से जाना असम्भव नहीं है। इस बाजार में प्रवेश करते ही नाक में विभिन्न प्रकार की सुगध समाने लगती है और आँखें, मिठाइयाँ, नमकीन देख कर लालच से लद जाती हैं, फिर तो कुछ भी खाने के लिए मन मचल पड़ता है। आश्चर्य होता है कि इनके विक्रेता उदासीन भाव से इन्हें देखते हुए भी इन्हें खाने की इच्छा नहीं करते। कहते हैं कि ये तृप्त भाव में तपे होते हैं। इसीलिए इनमें इसके लिए कोई लोभ नहीं होता।

इसी चौक बाजार में अब नीम का मात्र एक पेड़ बचा है जो अपने में कोई दो सौ साल का इतिहास लिए है। कहते हैं यहाँ सात पेड़ थे जिसने स्वतन्त्रता का पहला आन्दोलन देखा था। लोगों को ब्रिटिश सरकार के विरोध में आवाज उठाते देखा था और ब्रिटिश सरकार को उन्हें कुचलते भी देखा था। छह पेड़ तो गिर गए शेष यही पेड़ गवाह के रूप में खड़ा है कि ब्रिटिश सरकार के लोगो ने कितनी क्रूरता से भारतीयों को इस पेड़ पर फाँसी दी थी। आठ सौ निर्दोष लोगों को बड़ी बर्बरता पूर्वक फाँसी के फँदे पर लटका दिया गया था। क्रातिकारियों को सजा देने, सबक सिखाने और 6 जून 1857 को इलाहाबाद से उठी क्रांति की चिंगारी को बुझाने के लिए ढूंढ़-ढूंढ़ कर लोगों को क्रूरतापूर्वक फाँसी दी गयी थी। लोगों को गाड़ी के ऊपर बैठा कर नीम के पेड़ के नीचे ले जाकर गले में रस्सी का फंदा डालकर गाड़ी हटा ली जाती थी। लटके हुए लोग तडपते हुए मर जाते थे। बाद में नीम के पेड़ों के सामने स्थित कुंए में लाशों को

दफना दिया गया था। जिन्हें देखकर इस पेड़ के आँसू आज भी सूखे नहीं हैं। इसने गुलामी की काली रातें देखी हैं तो आज आज़ादी का दिन देख रहा है। जनता की अदालत में आज भी इसका दर्द मुखर हो जाता है कि आज़ादी सस्ती नहीं होती। उसके लिए प्राणों की आहुतियाँ तो देनी ही पड़ती है। उन आहुतियों का फल आज की आज़ादी है जिसे हर कीमत पर सुरक्षित रखना है। इस नीम के पेड़ की यही व्यथा है कि आज़ादी के लिए जितने लोगों को मैंने मिटते-मरते देखा है उसकी रक्षा के लिए उसी भावना से लोगों को जीते-जागते नहीं देख रहा हूँ। इस नीम के पेड़ का दर्द साल में एक बार पतझड़ के रूप में इसीलिए झड़ता है कि लोग इसकी व्यथा समझ सकें।

# आठ

केबिन मैन राम अधार उर्फ नारद जी वेस्टर्न रेलवे की नौकरी करते हुए अच्छा खासा पैसा कमा लिया। इसके लिए न रात देखा न दिन देखा लगातार दो-दो पाली की ड्यूटी बजाई है। गाँव देस के पोट्टों को बम्बई में रेलवे की नौकरी लगवाकर एक ओर बेकारों का उपकार किया तो दूसरी ओर डटकर कमाई की। दूध के काम को दो कैन से शुरू करके आठ-आठ, दस-दस कैन तक पहुँचा कर आखिरकार तबेला चालू ही कर लिया था जिससे उन्हें खूब आय हुई। करमा गाँव में अपने पुराने मकान को तुड़वाकर फिर से नया दल्लाननुमा बनवाया जिसका आजकल चलन बड़े लोगों के घरों में बढ़ा है। अपने भाई-बहनों की शादी-ब्याह गाँव में खूब धूम धाम से किया। कथा-कीर्तन, गृह प्रवेश बरही छट्ठी जी खोलकर किया जिसमें पैसा पानी जैसा बहाया जिसकी चर्चा गाँव में लम्बे समय तक चलती रही। नारद जी के दूर के रिश्तेदार-पट्टीदार उनकी दिन-दूनी रात चौगुनी कमाई से मन ही मन जलते हुए आपस में कहते-कमाई करना हो तो नारद जैसी कमाई की जाय। मुला भगवान सब को केबिन मैनी कहाँ देता है जहाँ बेतहाशा पैसा बरसता हुआ आता है। नारद जी की कमाई की तासीर हर जगह दिखायी देती है। मकान-दुकान, खेत-खलिहान, बाग-बगीचा के फलाँग फैलाव में सब को नज़र आती है।

वैसे नारद जी ने अपनी नौकरी के जमाने में अपने रक्त संबंधियों को गाँव समाज में अच्छा खासा खड़ा होने क़ाबिल बनाया। रुपये-पैसों से तो मदद सबकी की तथा चचेरे-ममेरे-फुफेरे भाइयों को तो मकान बनाने खेत बढ़ाने में जी खोलकर मदद की। लेकिन उन्हें क्या पता कि सगे संबंधी कब रंग बदल दें, आँखें फेर लें या पीठ में छुरा भोंक दें कुछ भी अता-पता नहीं था। जब तक वे बम्बई में आँख ओट पहाड़ ओट थे तब तक तो सब कुछ ठीक था किन्तु जब वे रेलवे की नौकरी से रिटायर होकर करमा गाँव में मुस्तक़िल रहने लगे तब तो

नारद जी उनकी आंख की किरकिरी बन गए थे। वे सभी से खेती-बारी में अपने परिवार के लिए अनाज में हिस्सा चाहने लगे। पहले तो उनसे साल भर के लिए एक-एक, दो-दो बोरा गेहूँ, चावल, दाल, गुड़, सरसों आदि आदत के अनुसार घुमा फिरा कर माँग की तो उन लोगों ने जले-बुझे आधे मन से माँग से चौथाई मात्रा में भेज तो दिया। साथ ही पटवारी के लगान का पुर्जा, चकबंदी के खर्च और खाद खरीदी की पर्ची भी नादान बेटों के हाथों भेज दी जिससे कोई सवाल-जवाब न कर सके। उन्हें तो भरोसा हो गया था कि नारद दद्दा बम्बइया वाला से करमावाला कभी बनेंगे ही नहीं। वहीं जवाहर नगर में बनायी अपनी खोली मे हमेशा रह लेंगे। आखिर वहाँ भी तो उनकी बुनियाद है उसे करेंगे क्या। लेकिन उन चचेरे-ममेरे-फुफेरे भाइयों को क्या पता कि बुढ़ापे में अपने गाँव-देस की मिट्टी ऐसा बुलाती है, महकती है कि गाय के बछड़े की तरह मन मातृभूमि के लिए मचल पड़ता है। इसी भाव के भंवर जाल में फंस कर उन्होंने बिना किसी की राय लिए या बताये खोली को बेचकर लौटने का फैसला कर लिया। उनके साथ एक और दुर्घटना घटी कि उनकी धर्मपत्नी अधर्म कर उन्हें ज़िन्दगी की सफर में साथ चलते-चलते ऐसे मोड़ पर मुड़ कर अन्तर्धान हो गयी कि नारद जी उसे कितना भी ढूंढें वह अब कभी भी उन्हें मिलने वाली नहीं है। पाँच तत्व का उसका चोला पंचत्व में विलीन हो गया। इसके पहले उनका छोटा भाई रामनाथ जायदाद का बाँट बखरा पंचायत द्वारा कराकर घर के दो टुकड़े कराकर अपने बाल-बच्चों में मगन हो गया था। फिर तो उसने पीछे पलट कर देखना भी ठीक नहीं समझा कि बड़े भइया क्या खा रहे हैं क्या पी रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं कहाँ आ रहे हैं। यद्यपि मकान तो वही पूर्वजों का पैत्रिक था। जिसे नारद जी ने तोड़ा-फोड़ा कर नौकरी के जमाने में ही एक तरह से नया बनवा लिया था फिर भी जिस भूमि पर मकान खड़ा करवाया था वह तो पैत्रिक था इसलिए रामनाथ का पूरा हक़ बनता है। यह पंचायत का फैसला था और अदालत से तो रामनाथ दात तोड़ कर अपना हक़ ले ही लेता। नारद जी ने यही ठीक समझा कि चलो पचायत का फैसला सिर आँखों पर जितना हिस्सा चाहता है ले ले। घर की मरजाद छिपी रहे लेकिन उनकी पत्नी यह बँटवारा बर्दास्त न कर सकी। उसे लगा जैसे उसकी छाती ही चीर कर दो टुकड़ों में बाँट दी गयी हो। आखिर उनकी आल-औलाद थी ही कहाँ। बाद में सब कुछ तो रामनाथ का था। नारद जी की धर्मपत्नी ज्यादा दिन तक यह सदमा न झेल सकी और एक दिन सारे संसार और उसके सारे रिश्ते को असार मानकर छोड़ दिया

अब नारद जी एकदम अकेले हो गए। पेंशन के पैसे से गुज़र-बसर करते थे। पूजा पाठ में मन रमाना चाहा पर कितनी देर रमाते। आखिर रमना तो इसी ससार में था। गाँव वालों के बीच बैठक करना चाहते तो ज्यादातर वे लोग रामनाथ और पट्टीदारों-रिश्तेदारों की लगाई-बुझाई करते जिससे नारद जी बेहद दुखी होते। फिर तो उन्होंने सभी से मिलना-जुलना भी कम कर दिया। जो मन मे आता बना खा लेते। कभी खिचड़ी तो कभी रोटी दाल तो कभी सत्तू तो कभी गुड-चबेना तो कभी फाकाकशी में दिन गुज़ार देते। कभी कभार रामनाथ के बच्चों को बुलाकर कुछ देना चाहते तो वे बच्चे इशारे से मनाकर देते कि बाबू अम्मा मारेंगे। ऐसी स्थिति में नारद जी का दम घुटता कि कहाँ वे बम्बई में सारी चाल को हंसी-ठट्ठों से गुलज़ार किए रहते थे और यहाँ अब दो-दो बोल के लिए मजबूर हो गए। दो-चार बार अपनी ससुराल मुट्ठीगंज भी गए कि उचाट - उदास मन बदल जाय और इसके लिए महीने-पन्द्रह दिन भी वहाँ रुक जाते पर ढाक के तीन पात की तरह वहाँ भी उनका मन न रम सका। वे दिल पर बोझ लिए इधर-उधर भटकते रहते जहाँ उस बोझ की हिस्सेदारी करने वाला कोई नहीं मिलता था।

पता नहीं राम अधार उर्फ नारद जी को क्या सूझी कि वे मुट्ठीगंज में रहते हुए एक दिन सायं काल राम जतन उर्फ बमबम वकील के आफिस पहुँच गए। वकील साहब अकेले बैठे पेपर पढ़ रहे थे। रमरमी के बाद नारद जी ने मुट्ठीगंज मे ही रामधन के परिवार में अपनी ससुराल का खुलासा किया जिन्हें बमबम वकील मुहल्लेदारी के नाम से खूब अच्छी तरह से जानते थे। नारद जी ने कुछ हिचक झिझक के साथ अपनी बात बताना चाहा तो बमबम वकील ने उन्हें सराहा देते हुए खुलकर अपनी बात कहने की हिम्मत दी और साथ में यह भी लपेट दिया कि सामने बैठे और कोई नहीं हैं हमारे मुंशी हैं इसलिए बेहिचक सारी बात कहो। मैं तुम्हारे ससुर को जानता हूँ। किस पर मुकदमा करना है। सारी बात तफ़सील से कहो।ससुराल के रिश्ते से तो तुम हमारे अपने होते हो और मेरे रहते हुए तुम परेशान नहीं रह सकते। नाते-रिश्तेदार तो परेशान करने के लिए ही पैदा होते हैं। लेकिन मेरे पास उसकी काट भी तो है।

नारद जी भक्ति भाव से हाथ जोड़ कर सारी कथा बयान की कि किस तरह रेलवे की सरकारी नौकरी में खटते-खटते रुपए-पैसे जोड़-जुहा कर रिश्तेदारों

पट्टीदारों के लिए मकान बनवा दिए खेत बढ़ा दिए और अब जब उनसे अनाज मे हिस्सा माँगते हैं तो जी चुराते हैं। आधी-तिखुरी और वह भी बेमन से देना चाहते हैं। सीधे-सीधे तो नहीं पर घुमाव देकर अंगूठा ही दिखा रहे हैं। यह अच्छी बीमारी उन लोगों ने लगा दी है। इसकी दवा है आपके पास वकील साहब। पैसा-कौड़ी सब कुछ मेरा लगा और मुझे ही आंख दिखा रहे हैं वे सब वकील साहब यह मेरे जी पर बड़ा बोझ है।

बमबम वकील ने सब सुनने के बाद राम अधार उर्फ नारद जी को बताया कि कायदे से तो यह मुकदमा दीवानी का बनता है जिसमें तुम्हें मालूम होना चाहिए बाप मुकदमा चलाता है और बेटे के जमाने में फैसला होता है। कभी-कभी तो बाबा-दादा का मुकदमा लड़ते-लड़ते पोता या परपोता को फैसला मिलता है। हम तो ऐसा करेंगे कि इस मुकदमे को फौजदारी की रंगत में रंग देंगे। सीधे-सीधे पट्टीदारों पर धोखाधड़ी चार सौ बीसी का मुकदमा ठोंकेंगे। अमानत में ख़यानत का केस उन सब पर दायर करेंगे। और उन्हें जेल न भिजवा दिया तो मेरा नाम बमबम वकील नहीं। मैं जब खेलूँगा तो कच्ची गोलियां नहीं खेलूंगा। सब पर बराबर पकड़ रखूंगा और उन्हें दाग़ी तो बना ही दूंगा। यह मैं दावे के साथ कहता हूँ। मेरी फीस और मुकदमें का खर्चा-बर्चा दो हजार रुपइया दे दो तो कल ही पट्टीदारों पर मुकदमा ढोंक दूंगा। वे सब भागे-भागे आयेंगे।

जिस उबाल और उत्साह में नारद जी बमबम वकील के पास एक दिन पट्टीदारों पर मुकदमा ठोंकने की बात करने गए थे उसी उतावली-उमंग में एक दिन नारद जी ने बमबम वकील को मुकदमे की पेशगी देकर लाइन क्लीयर की हरी झण्डी दिखा दिया। अब क्या था गाड़ी पटरी पर तो थी ही धड़धड़ाती चाल से चल पड़ी। बमबम वकील का नोटिस मिलते ही सबके कान खड़े हो गए। वे सब मिसकाउट कर एक हो गए और लगे कहने कि नारदवा बौराय गवा। ओका लालच समाय गवा। हम लोगन की खेती-बारी देखके जरा जात है। हमहू देख लेबै ओके हैंकड़ी। गाँव में रहब मुसकिल कर देब। बम्बई न खदेड़ देब तो हमार नाउ नहीं। नारद जी अच्छे घर बैना बाँटे हैं। हमहू बडा से बड़ा वकील करके उनका नचाय डालब। इ जिन समझै कि उन्हई के पास बम्बई के कमाई है। हमरौ भैकरन कलकत्ता कमाथै। अब तो बिगुल बज चुका है। आगे-आगे देखैं का होत है।

मुकदमे की क्रिया प्रक्रिया पेशी चालू हो गयी। इधर से बमबम वकील तो उधर से सभी के गुप्ता वकील। बमबम वकील मुकदमे को खरगोश की चाल से चलाना चाहते थे। किन्तु गुप्ता वकील इसे कछुए की चाल से चलाने के कायल थे। वे केस की कमजोरी समझ चुके थे जिसने खेत खरीदी के पैसे दिए, पटवारी ने कागज पर जिसका नाम चढ़ाया उसका हक़ तो है। पर जो क़ाबिज़ है और पन्द्रह साल से खेती करता आया हो उसे बेदख़ल तो कोई नहीं कर सकता। इतने पर भी गुप्ता वकील अच्छी तरह समझते थे कि बमबम वकील को पार पाना मुश्किल है। वे कब पैंतरा बदल दें कब हल्ला बोल दें कोई नहीं जानता। उनकी जिरह में ग़ज़ब की जान होती है जो बड़े-बड़ों के छक्के छुड़ा देती है। जब सवाल पर सवाल दागने लगते हैं तो गवाह के पैरों तले की जमीन खिसकने लगती हैं। गवाह के मुँह सूखने लगते हैं। जबान लड़खड़ाने लगती है। फिर गवाह कुछ का कुछ बोलने लगता है। इस घबराहट-हड़बड़ाहट में बमबम वकील गवाह से जो कहलवाना चाहते हैं आसानी से कहलवा लेते हैं। इन्हीं सबसे गुप्ता वकील ऐसी तारीखें रखना चाहते थे जब बमबम वकील बाहर गए हों और उनका असिस्टेण्ट ही केस देखे।

अब नारद जी को नया काम मिल गया जहाँ वे ऊबे-ऊबे डूबे-डूबे अनुभव कर रहे थे वहीं अब उन्हें दम मारने की फुर्सत नहीं। कभी वे पटवारी के पास, कभी वकील, कभी अपने गवाहों, कभी तहसीली, कभी कचहरी, कभी बमबम वकील का बस्ता कमर टेढ़ी कर ढोते-ढोते हलाकान हो जाते थे। वकील से ज्यादा तो उनके मुंशी उनके असिस्टेण्ट की झिड़की सुनते थे। नाश्ता-पानी की सेवा करते थे और बदले में फीस भी देते थे। इतना ही नहीं आए दिन वकील से लेकर गवाह तक को कचौरी समोसा, गुलाब जामुन, बर्फी, चाय, लस्सी का भोग तक सभी को कराते थे। बेचारे खुद तो खाते नहीं थे या बमुश्किल चाय ले लिया तो ले लिया किन्तु लंगर लुटाने को तैयार रहते थे। अब मुकदमेबाजी में उनका इतना समय चला जाता था कि पूजा पाठ भी धरी की धरी रह जाती थी। जहाँ उनकी ज़िन्दगी में निराशा की कालिमा बढ़ रही थी वहीं अब रात की कामिला में ही वे कितना काम निपटा देते थे जिससे सुबह-सुबह वकील के घर पहुँचने में देरी न हो। और मुकदमे की पैरवी अच्छी तरह हो सके क्योंकि वकील भी खूब अच्छी तरह समझते हैं कि पैरवी में कमी आयी नहीं कि वे भी ढीले पड़ जाते हैं। फिर मुकदमा लड़ने में वह तासीर नहीं रहती जो जीतने के लिए रहनी चाहिए।

रामअधार उर्फ नारद जी को अब मुकदमेबाजी उसी तरह से रास आने लगी जैसे लोगों को पतंगबाजी, जुन्नीबाजी, जुएंबाजी, धोखेबाजी, छुरेबाजी, रण्डीबाजी, दारूबाजी अच्छी लगती है। नए-नए शौक के कारण नारद जी इसमे जरा ज्यादा ही दिलचस्पी लेने लगे थे। जब वकील या कोर्ट जाने का दिन आता तो एक-दो दिन पहले से ही उसकी तैयारी में जुट जाते। क्या पहन कर जायेंगे क्या खाकर जायेंगे जिससे कुल देवता और 'गणेश जी सदा सहाय' बने रहे। कपड़े के रंग पर विशेष ध्यान देते थे। साथ ही सिर पर रेलवे की नीली टोपी पहनना कभी न भूलते थे। एक तो रेलवे ही उनकी रोजी-रोटी थी और अब भी वही पेंशन तथा फ्री पास दे रही है। रेलवे को तो सिर पर बैठाना ही चाहिए। इसीलिए नारद जी रेलवे की टोपी लगाना कभी नहीं भूले। यह तो उनके जीवन का अंग ही बन चुका है। दूसरी सबसे बड़ी बात तो यह है कि टोपी लगाने से उनकी पहचान बनती है। दूर से ही कोई भी पहचान लेता है कि यह रेल कर्मचारी है जैसे खादीधारी को लोग दूर-दराज से ही भांप लेते हैं कि कोई नेतानुमा आदमी है जरा संभल कर चलो। तीसरी बात रेलवे देश का सबसे बड़ा उद्योग है जो लोगों की सेवा करता है। इस तरह हम भी जनता के सबसे बड़े सेवक है। स्टेशन मास्टर दत्तू ऐसा ही कहते थे। वास्तव में भारतीय रेलवे पर गर्व तो करना ही चाहिए। ऐसा विचार नारद जी के मन में जब-जब आता है तब-तब उनका सीना फूलकर फैल जाता है। आज भी वही स्थिति उनके सामने थी।

नारद जी जब कचहरी जाने को पेशी हाज़िरी की तैयारी करते तो उनमें उत्साह बरसता सा नज़र आता किन्तु शाम को लौटते वक्त सारा उत्साह ठण्डा दीखता था। कचहरी में पता चलता कि तारीख बढ़ गयी और ज्यादातर यही सुनने को उन्हें मिलता कि तारीख बढ़ा दी हाकिम ने। धीरे-धीरे उनका उत्साह बर्फ की तरह पिघल कर बहने लगा जिसे वे लाख कोशिश करके भी नहीं रोक पाते। एक दिन नारद जी तारीख बढ़ने की खबर से मायूस और बमबम वकील की फीस उगलने तथा उनके असिस्टेण्टों को चन्दा बाँटने के बाद गुस्से में काफी दूर तक पैदल ही रंगेटने से जब एकदम थक गए तो इक्का कर गाँव चल दिए। ये सर्दी के दिन थे। अतः अंधेरा जल्दी ही पेड़ों पर बसेरा करने को उतर पड़ा। कुहास-धुंध की एक बड़ी चादर सब कुछ अपने में लपेटने लगी। वैसे भी गाँवो मे रात जल्दी ही आती है क्योंकि यहाँ शहरों की तरह अंधेरे को भगाने की कोशिश नहीं की जाती। गाँवों में गरीबी है इसलिए अंधेरा तो रहेगा ही। कितनी

भी आग जलायी जाय गाँव का अंधेरा दूर होने का नाम ही नहीं लेता। गाँव की गरीबी-बेकारी, भुखमरी, कलह-क्लेश मारपीट, लड़ाई, दंगा, मुकदमा कचहरी थाना पुलिस ये सब अंधेरा ही तो बढ़ाते हैं। तभी तो गाँवों में घोर अंधेर गर्दी है। नारद जी भी उस बढ़ते अंधकार में समाने के लिए जा रहे थे।

इक्के पर से उतर कर वे गाँव की ओर अकेले ही चल पड़े। गाँव की ओर जाने वाला कोई नहीं था इसलिए हनुमान चालीसा गुनगुनाते हुए झोले में मिसिल रखे चल दिए। इतने में आगे बढ़ने पर पेड़ तले क्या देखते हैं कि चार-छह जवान लड़के मुँह पर कपड़े ढंके लाठी फटकारते उन्हें ललकारते उनकी ओर बढ़ चले। नारद जी ने देखा कि आज बुरी तरह गुण्डों से घिर गए हैं अब बचना मुश्किल है। पता नहीं उनमें कहाँ की ताकत आ गयी कि वे चिल्लाते हुए सरपट भागने लगे। फिर भी उतरती उमर का आदमी जवानों का मुकाबला कैसे कर सकता है। अब वे चिल्लाते-चिल्लाते दौड़ने लगे। लेकिन मेंड़ के एक छोर पर उन गुण्डों ने उन्हें घेर लिया और उन पर लाठियाँ बरसाने लगे। नीली टोपी के कारण गुण्डे उन्हें आसानी से पहचान गए कि आदमी तो सही है। आज अच्छी पूजा कर दी जाय। इससे बढ़िया मौका कहाँ मिलेगा। उनमें से एक लुच्चे-लफंगे के हाथ में एक बोतल थी। उसने आव देखा न ताव नारद जी पर घुमाकर फेंक दी। भाग्य से वह उनके सिर के ऊपर से निकल कर खेत में जा गिरा। इतने मे चीख-चिल्लाहट की आवाज़ सुनकर पुलिस का दीवान जो गाँव की ओर दौरे पर गया था साइकिल पटक कर बदमाशों को कड़कदार आवाज़ में ललकारा। गुण्डे दीवान जी को देखकर और पकड़े जाने के भय से भाग खड़े हुए। दीवान जी ने नारद को पहचान कर कि गाँव का ही आदमी है। सहारा देकर उठाते हुए बोतल को साइकिल में टंगे झोले के हवाले कर उन्हें अपनी साइकिल पर बैठाकर थाने चलने को कहा। नारद जी एकदम लहूलुहान थे और दर्द से कराह रहे थे।

थाने पहुँचने के बाद थानेदार सब माजरा समझ गया कि किसने हमला किया होगा और किसने कराया होगा। उसने मुंशी को रपट लिखने और जान से मारने का मुकदमा कायम करने का आदेश दिया। बोतल देखकर ही समझ गया कि तेजाब फेंक कर इसे अपंग-अंधा बनाने की भी उनकी साज़िश थी। रपट लिखने के बाद थानेदार ने रामअधार को सरकारी अस्पताल के डाक्टर को दिखाने तथा इलाज के बाद उसके घर तक पहुँचाने के लिए दीवान जी को निर्देश दिए। गाँव पहुँचने पर जंगल की आग की तरह घर-घर खबर पहुँच गयी कि

आज नारद जी पर बदमाशों ने क़ातिलाना हमला किया और इसमें किनका-किनका हाथ है। इसके लिए किसी का मुँह नहीं खुल रहा था। क्योंकि अन्दर से सब जानते थे कि पट्टीदारी का मामला है। आपसी रंजिश में जो कुछ न हो जाय वह भी थोड़ा है।

नारद जी उस रात दर्द के मारे छटपटाते और कराहते रहे। उससे भी अधिक अपनों द्वारा दी गई पीड़ा से कराह रहे थे। उनके आस-पास सारे गाँव के चेहरे तो इस दुखभरी घड़ी में घिरे थे। किन्तु वे नहीं आए थे जो रक्त संबंधी थे। उनके सान्त्वना के बोल कहीं नहीं सुनाई पड़े जिसके लिए उनके कान तड़प रहे थे। उससे भी अधिक ग़ज़ब यह हो गया कि उनका सगा भाई रामनाथ जो एक घर में अपने हिस्से में रहता है। वह भी नहीं आया। क्या यह गुण्डागर्दी सुनी नही होगी। पर वह भी झाँकने नहीं आया कि देखें बड़े भइया को कितनी चोट लगी है। इन सबसे अच्छे तो गाँव के लोग हैं। जिनसे केवल रमरमी भर है या थाने का थानेदार, दीवान जो उन्हें घायल हालत में घर तक अपनी साइकिल पर छोड़ने आया था। धन्य है जमाना और धन्य है जमाने के अपने लोग जो स्वार्थ मे गले तक डूबे हैं।

इस दर्द भरी रात में ही नारद जी ने फैसला कर लिया कि अब गाँव घर में रहना ठीक नहीं। जब सब अपने-पराये परजात जैसे हो गए हैं तो उनके बीच रहना बेकार है। जिनको अपना समझ कर पाला-पोसा वे ही आस्तीन के साँप निकले। सभी का खून सफेद हो गया है। और तो और अपना रमनथवा भी आँख फेर लिया है। ठीक हो जाऊं तो यह गाँव-घर ही छोड़ दूं। अब यहाँ रखा ही क्या है। अकेली जान चलके ससुराल में ही बची उमर बिताऊं। रामधन ससुर तो कितनी बार कह चुके कि जमाई जी अब आप यहीं रहो। गंगा स्नान, पूजन-भजन में रम कर यहीं वास करो। आप हमारे बोझ थोड़ी न होगे। यही सोचते-सोचते उनके मन में आया-चलो यही सही। देखते हैं आगे क्या होता है।

नारद जी अपने मन की बात मन में छिपाये गाँव वालों से बराबर मिलते-जुलते रहे। उनका मन उन्हें दिन-रात रौंदता रहा कि जब एक फौजदारी मुकदमे ने मेरा कचूमर निकाल लिया है तो दूसरा जान ही ले लेगा। वे एक दिन इलाहाबाद शहर गए तो लौटकर गाँव ही नहीं आये। लोगों ने अन्दाज़ लगा लिया कि ससुराल में मजे कर रहे होंगे' जबकि नारद जी मज़ा में भी सज़ा काट रहे थे वकील के घर कचहरी का चक्कर छूटा कहाँ हा कुछ आरामदेह जरूर

हो गया। अब उन्हें खाना-पीना बनाने, गाँव से शहर तक आने से छुट्टी मिल गयी किन्तु जब नारद जी की शनि की महादशा चल रही हो तो कौन बचाये। एक दिन बमबम वकील के घर से रात करीब आठ बजे लौट रहे थे तो एक अनजान चेहरे ने मोटर साइकिल से उन पर बम फेंका जो नारद जी से दो कदम आगे गिर कर जोरदार धमाके के साथ फट गया। वे बाल-बाल बच गए। सभी ने यही कहा- महाराज जिन्दगानी थी बचे गए नहीं तो ढेर हो जाते। मालूम है किसी दुश्मन की कारस्तानी है। चारों ओर से भीड़ बढ़ गयी और उन्हें घेर लिया। तभी पुलिस वालों की गाड़ी आ पहुँची और सभी के बयान, वाकेआ मुआयना, नक्शा चश्मदीद गवाहों के नाम पता दरोगा लिखने लगा। कत्ल का मुकदमा बनाकर मुट्ठी गंज थाने का दरोगा तफ़तीश करने लगा। इस वारदात से मुट्ठी गंज मे सनसनी फैल गयी। जिसे देखो वही रामधन के दामाद की खोज खबर लेने आने लगे। पूरा मुट्ठी गंज उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़ा। बमबम वकील ने अपने मुंशी को भी राम अधार को देखने भेजा और कहलाया कि अब यह पुख्ता हो गया। पट्टीदारों को जेल की चौदहिया न कटवाया तो बमबम नाम नहीं। सभी को बिना जमानत के जेल में सड़वा दूंगा।

नारद जी ने चुपचाप सुन तो सब लिया। पर अपने मन का भेद बिलकुल नही खोला। पता नहीं इन दिनों उनके मन में वैराग्य जागने लगा था कि दुनिया कुछ भी नहीं है। जो दिखायी देता है। वह तो कुछ भी नहीं है जो नहीं दिखायी देता वही तो सब कुछ। चलो उसी की खोज में निकल पड़े। सारे रिश्ते-नाते मतलब के हैं। मतलब नहीं तो कुछ भी नहीं। उस परमेश्वर से ही मतलब रखा जाय जो सबका मतलब पूरा करता है। नारद जी आजकल इसी सब के सोचने मे डूबे रहने लगे। कचहरी जाते-आते हनुमत निकेतन मन्दिर में घण्टों बैठा करते। वहाँ के साधु-संतों की बैठक उन्हें रुचने लगी। पता नहीं एक दिन उनके मन में क्या आया कि उन्होंने हनुमत निकेतन में ही डेरा जमाने की सोच लिया और ससुराल में कह आए कि मैं मन्दिर में अब भगवान की सेवादारी करूंगा और वहीं रहूँगा। सचमुच नारद जी जो मन में ठान लेते हैं वह करके रहते हैं। इस आदत के अनुसार वे अब बाबा राम अधार हो गए। गेरुआ वस्त्र पहन कर मन्दिर की साफ-सफाई के काम में जी जान से जुट गए। अब उन्हें न तो मुकदमे की फिकर रही और न घर-द्वार की जिसे जो कुछ लेना-देना हो वह जाने उसका काम जाने अब उनका तन-मन सब कुछ बदल गया था वे भक्तों की लाइन

में खड़े होकर अपने पाप गिनाते और अनुनय करते 'प्रभु हौं सब पतितनि कौ टीकौ, और पतित सब दिवस चार कै, हौं तौ जनमत ही कौ।' इससे उनके मन को बड़ी शान्ति मिलती और अनुभव करते कि अब उनका दूसरा जनम हुआ है।

एक दिन अचानक उनकी भेंट झगड़ू से हो गयी। जो वह उन्हें पहचानने में हिचक रहा था। किन्तु उनकी चाल-ढाल और बोली पहचान कर ठिठक गया। वैसे तो वह बिना कुछ बोले ही चला जाता अन्देशों में अटका हुआ। पर बाबा जी ने जब उसके मौलिक नाम से पुकारा तो वह उनके पैर पकड़ प्रणाम किया और यहाँ आने का मतलब बताया कि उसने बम्बई कब की छोड़ दी और अपनी दूध डेरी इसी इलाहाबाद में चलाते-चलाते अपना मकान बनवा लिया है। कल गृह प्रवेश का मुहूर्त है। यहाँ प्रसाद लेने आया हूँ। फुफा आपके आशीर्वाद से मैं चार पैसे का आदमी हो गया हूँ। कल आप आइये गऊघाट में घर बनवाया है। गणेश मंदिर के सामने हनुमान भवन नाम है।

# नौ

आज़ादी से पहले इलाहाबाद आज़ाद होने का खेल खेल रहा था जिसमे ब्रिटिश सरकार की गुलामी से कबड्डी-कुश्ती खेल रहा था और यह पक्का इरादा कर लिया था कि जब तक सांस नहीं टूटती या चित्त नहीं होता तब तक छका-छका कर खेल खेलता रहूँगा। वास्तव में इलाहाबाद ने ब्रिटिश सरकार को छकाया ही नहीं छक्के भी छुड़ा दिए थे। सन् 1857 में तो उसके लड़खड़ाते पैर उखड़ने की कगार पर आ गए थे किन्तु अपने ही लोगों की कारगुजारियों ने ब्रिटिश सरकार के पैरों को सहारा दिया जिससे वे टिक गए टनमना गए। फिर तो उन्होंने टमकी पीटकर बेकसूर बेगुनाह लोगों को पेड़ में लटकाकर फाँसी दी कि कोई उनके ज़ुल्म-ज़्यादतियों को देखकर आगे हिम्मत न कर सके। सैकड़ों लोगों की यह फाँसी ऐसा सबक था कि भूलना चाहे तो भी भूल नहीं सकता। नीम का पेड़ उनकी ज़ुल्म-ज़्यादतियों का ऐसा गवाह है जो बोल तो नहीं सकता किन्तु बिना बोले रह भी नहीं सकता। इसीलिए वह आज भी सर्वांग सहित कड़ुआहट से भरा है। यह तो अच्छा ही हुआ कि उसके छह-छह सखा-संबंधी ब्रिटिश सरकार के अन्याय अत्याचार देख उसी में डूबे-डूबे दम तोड़ दिए नहीं तो आज की स्थितियाँ-परिस्थितियाँ उन्हें खा डालतीं।

आज आज़ादी पाने के बाद इलाहाबाद का सबसे पसंदीदा खेल कोई है तो वह राजनीति है। इस खेल के सामने फुटबाल फीका है, क्रिकेट कसैला है टेनिस टाँय-टाँय फिस है और हाकी हल्का है। हाँ गुल्ली-डंडा, कबड्डी की छाया राजनीति में मिलती है। जो विपक्षियों को पदाने और छकाने का भरपूर मज़ा इसमें समाया है। सारे खेलों का रस और रंग इसमें समाया है। राजनीति तो अब रंगदारी और रंगबाजी का रसूल है। इसीलिए इसके रसिया को ऐसा रस मिलता है कि दूसरे रस रास ही नहीं आते इलाहाबाद में राजनीति रसराज है एक बार

इसका मज़ा जिसे मिला वह इस मज़े में मदमस्त हो जाता है फिर कोई माई का लाल ऐसा नहीं होगा जो इसके मज़े को किरकिरा कर सके। राजनीति निचले तबके के कार्यकर्ता से लेकर ऊपरी सिंहासन पर बैठे सरताज तक को एक ही तरह का सुरूर-सुबास देती है। इसमें एक बार जो फँस गया उसे फँसने मे ही मज़ा आता है। फँसना क्या इसमें तो सदा फलांग-छलाँग ही है। इससे कोई छुटकारा तो मरते दम तक नहीं चाहता किन्तु बीमारी-हकारी में छोड़ना भी पड़ा तो समय से पहले ही असार संसार को छोड़ देता है या करारी मात खाने के बाद दूसरी ही दिशा में मन-पाखी उड़ जाय तो अलग बात है।

आमतौर से राजनीति का दौरा समाजसेवी से शुरू होता है जिसमें गरीब, दुखियारी, समाज के सताये-दबाये-लाचार-लचर लोगों की सेवा, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह, पर्दा प्रथा, जातिबंधन, मृत्यु भोज आदि कुसंस्कारों को तोड़ने के लिए कदम उठाने से लेकर हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई की एकता के लिए कदम बढाने तक के कार्य ऐसे पायदान हैं जिससे राजनीतिक गाड़ी में सवार होना आसान है। किन्तु संयोग से बाढ़, अग्निकाण्ड, साम्प्रदायिक दंगे, भूकम्प आदि दैवी-मानवी प्रकोप आ जाय और उसमें लोगों की जन-धन मन से मदद की जाय तो लोग ऐसे लोकप्रिय सिक्के को माथा लगाते हैं। गणेश प्रसाद उर्फ गप्पी गुरु-शुरू से ही जन सेवा के कार्यों में रुचि लेते थे। आस-पास मुहल्ले, शहर में जब भी और जहाँ भी उनकी जनसेवा की जरूरत हो वे चौबीसों घण्टे तैयार रहते हैं। बीमारी-हकारी में, अस्पताल में, पुलिस थाने में बन्द बेगुनाहों को वहाँ से छुडाना, जमानत दिलाना, दंगा क्षेत्रों से सुरक्षित जगहों में लोगों को पहुँचाना, कर्फ्यू में लोगों को घर तक भेजना गप्पी गुरु का पहला धर्म है। विपदा के मारे लोगों की पुकार पर आधी रात को भी कुर्ता पहना बगल में डण्डा दबाया चल दिए मोर्चे पर। फरियादी किस जाति-धर्म-सम्प्रदाय का है इसमें गप्पी गुरु को कुछ भी लेना-देना नहीं। वह कसूरवार है या बेकसूर इससे भी उनका कोई मतलब नहीं। वह तो मदद की भीख माँगने आया है इसलिए आदत के अनुसार गप्पी गुरु को उसकी मदद का मलहम लगाना होगा। हर सुख-दुख में सभी की मदद करने की जो उन्होंने कसम खायी है। कोई जान पहचान का हो या अनजान मदद करने में इन्कार करना उन्होंने सीखा ही नहीं। कोई रिक्शे वाला, ताँगे

वाला, इक्के वाला, चाट वाले का चालान कोतवाली पुलिस द्वारा किया गया हो तो उसकी फरियाद पर गप्पी गुरु सीधे कोतवाली पहुँच जाते और दरोगा जी से कहते - दरोगा जी गरीब को मत सताओ। गलती भी हुई हो तो माफ करो। बाल बच्चेदार आदमी है बेचारा बेमौत मर जायेगा। दरोगा भी गप्पी गुरु की सिफारिश पर उन्हें छोड़ देता। इसी तरह किसी का भाई, मौसा-बाप, चाचा, जीजा को पुलिस चोरी, बदमाशी, नशखोरी में, औरतों के छेड़छाड़ में पकड़ती तो गप्पी गुरु उसकी बतौर जमानत के कहते-दरोगा जी यह मोहल्ला का लौंडा है चोरी-चमारी नहीं करता। इसे मैं जानता हूँ। गलती से फंस गया। दो-चार झापड़ मार कर छोड़ दीजिये। गरीब घर का है। कचहरी के चक्कर में तो बिक जायेगा या यह लड़का शरीफ घराने का है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ। छेड़छाड़ में इसका हाथ नहीं था। यह तो वहीं खड़ा था। छोड़ दीजिए। मैं समझा दूंगा कि उन सब से दूर रहे। अब यदि पकड़ा जाय तो बिना जमानत के नैनी जेल में सड़ा देना। ऐसे तमाम मामले गप्पी गुरु के पास आते तो वे उसे चुटकी बजाते सलटा देते। सचमुच उनकी चुटकी में बड़ा दम था।

इलाहाबाद में कभी दैवी विपदा-बाढ़, कड़कड़ाती ठण्ड, पाला, भयंकर बारिश से पीड़ित लोगों को राहत पहुँचाने वे अकेले निकल पड़ते जिससे उनके पीछे-पीछे सैकड़ों लोग बाल्टियों में भर-भर खाने-पीने की सामग्री, फटे-पुराने कपड़े-लत्ते, जगह-जगह जाड़ा से बचने के लिए अलाव-कौड़ा-गरम-गरम चाय, लगातार बरसात से बचाव के लिए स्कूल-धर्मशाला में सुरक्षित पहुँचाने आदि जनहित के कार्यों में सहयोग देने में गप्पी गुरु कभी अघाते न थे। इन सबके लिए उन्हें समय का टोटा पड़ जाता था। उनकी बैठक के दो-एक अड्डे नियमित थे जहाँ लोग सरलता से उनसे सम्पर्क करते थे। एक तो सबेरे-सबेरे अपने घर की बैठक में दस-बजे तक मिलते दूसरे शाम को सीता राम लोहावाले की दुकान पर जरूर मिलते। वहीं पर लोगों के काम-धंधे निपटाते। इस तरह गप्पी गुरु जनता और जड़ से जुड़े जन-जन के व्यक्ति थे।

आज़ादी के बाद उनके सहयोगियों साथियों ने उन पर दबाव डाला कि वे उत्तर इलाहाबाद से विधान सभा के लिए समाजवादी दल से चुनाव लड़े। चौतरफा दबाव से दब गए और आम चुनाव के लिए अपने दल-बल सहित

कचहरी में पर्चा भर दिया। दूसरी ओर कांग्रेस की ताकत अपने प्रत्याशी के लिए कम न थी। अन्य प्रत्याशियों के अलावा मुख्य मुक़ाबला तो गप्पी गुरु और कांग्रेस प्रत्याशी में था। दोनों ओर से लाग-डाट जवाबी तैयारी चल पड़ी। बड़े-बड़े प्लाई-उड के गेट, कट आउट, बैनर, होर्डिंग, पोस्टर, पेम्पलेट, फोल्डर छपकर जगह-जगह लगा दिए गए तथा मोहल्ले-मोहल्ले गली-गली घर-घर बाँटे गए। दीवारों पर इतने नाम लिखे गए कि कोई दीवार अछूती न बची। सभी जगह वोट माँगने वाले ही नारे जगमगा रहे थे। गेट पर भी ऐसे चुनिन्दा नारे परोसे गए कि पढ़कर-चखकर लोग फड़क उठें। उन पर बिजली की तेज रोशनी तथा झालरे जमकर लगायी गयीं। इसके अलावा खास-खास चौरास्तों, बाजारों में चुनाव प्रचार के लिए मंच सज गए जहाँ रोज-रोज सांयकल से लेकर देर रात तक भाषणों, गीत, कविता की बौछार होतीं और उसमें लोग जमकर भीगते। जैसे-जैसे चुनाव नज़दीक आता-जाता वैसे-वैसे प्रचार की गर्मी का थर्मामीटर ऊपर ही बढता जाता है। फिर तो पारा नीचे उतरने का ही नाम नहीं लेता। भले ही सर्दी का मौसम रह-रहकर सर्दी उलीच रहा हो।

इलाहाबाद में सर्दी-गर्मी, बरसात के अलावा एक मौसम और चुनाव का होता है। वैसे यह बात भी बहुत सही है कि दूसरों शहरों की तुलना में यहाँ जाड़ा-गर्मी बरसात जरा जमकर होती है। जाड़े में जब हफ्तों धुंध-कुहरा छाया रहता है और ठण्डी हवाएं चलती हैं तब सर्दी से हाड़ कांपने लगता है। आदमी को कौन कहे, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों का बुरा हाल होता है। कितने तो पेड़-पौधे पाला में मर जाते हैं तो कितने पशु-पक्षी सुबह ऐंठे मिलते हैं। जानलेवा गर्मी लू के थपेड़ों से सारा शरीर झुलसा देती है। पानी की कमी शरीर में हुई नहीं कि लू लगी फिर दम तोड़ने वाले की कमी नहीं। गर्मी में न रात-चैन ना दिन। कलपते-तडपते जैसे-तैसे दिन बीत गया तो रात की गुम हवा और अब बिजली गुल जान नहीं लेती बाकी सब करा लेती है। लोग बिस्तर से उठ बैठते हैं और टहल-टहल कर हाथ पंखा डुलाते-डुलाते हैरान हो जाते हैं। छोटे बच्चे तो चिचिया-चिचिया कर गर्मी के मारे जान देने लगते हैं लोग खटिया पर बिना बिस्तर लगाये सिर्फ चड्ढी पहने पसर कर जानवरों जैसा जी भर पीठ रगड़ते हैं इससे उन्हे अंधौरियों से राहत मिलती है। पहले के लोग तो अंधौरियों पर पिड़ोर मिट्टी

का लेप लगा लेते थे। जमाने के बदलाव के साथ लोग न तो खुली खाट पर चड्ढी पहने पीठ रगड़ते हैं और न मिट्टी का लेप लगाते हैं। अब तो लोग पाउडर लगाते हैं। इसी तरह बरसात में छोटे-मोटे नाले-नाली उफना कर सारे बंधनों को तोडकर बेकाबू हो जाते हैं। इसी नाले पर बसा हुआ एक मुहल्ला हैं गंधे नाला जो सचमुच गन्दगी-गंध से भरपूर है। इलाहाबाद में तीनों मौसम अतिवाद से ग्रस्त हैं।

चौथा मौसम चुनाव का जो कि पहले समय से आता था। अब बेमौसमी हो गया। बीच में कभी भी आ सकता है। जिसका कोई ठिकाना नहीं। इलाहाबाद का चुनावी मौसम बड़ा असरदार-अदाकार होता है जो सभी को जनूनी हालात मे पहुँचा देता है। इस मौसम का असर साधारण लोगों- दुकानदार-खरीददार-राहगीर से लेकर असाधारण लोगों-वकील-डॉक्टर-प्रोफेसर-मास्टर वक्तव्यवीर तक ग़जब का रहता है। यों भी कह सकते हैं कि चुनावी मौसम की मार से इलाहाबाद का बच्चा-बूढ़ा कोई बच नहीं पाता। 'गप्पी गुरु की क्या पहचान, हाथ में डण्डा मुँह मे पान। गप्पी गुरु जीत रहा, कांग्रेस को पीट रहा। गुरु का डण्डा राकेट बन कर चन्द्रलोक में जायेगा, खबर वहाँ की सारी लाकर इलाहाबाद में आयेगा। जीत का झण्डा गुरु हमारे चौक में फहरायेंगे, इलाहाबाद के घर-घर में वे सुख-सुविधा बरसायेंगे' आदि। जैसे-जैसे चुनाव की बेला निकट आती-जाती इलाहाबाद इसमे रगता ही नहीं सराबोर होने लगता है। गुरु के कार्यकर्ता न दिन को दिन और न रात को रात समझते हुए अपने को चुनावी आग में झोंक देते हैं और जब तक गुरु की जीत दर्ज नहीं करा देते तब तक चैन से नहीं बैठते। नौकरी-चाकरी, दुकान दौरी, खाना-पीना सब भूल कर भूत बने फिरते हैं। इस लगन और मगन का फल तो मिलना तय रहता। जब से गप्पी गुरु चुनाव लड़ने लगे और जब तक इहलोक छोड़ा नहीं तब तक लड़ते रहे। उनकी जीत पक्की होती रही।

चुनाव की प्रक्रिया चालू होने के पहले ही उसके परिणाम सबको पता थे फिर भी शासकीय कायदे-कानून से तो वह सब कुछ करना जरूरी होता जो इसके दायरे में आता था। हर बार गप्पी गुरु को बैण्ड-बाजे के साथ नामाकंन के लिए उनके समर्थक जुलूस बनाकर ले जाते और रास्ते भर नारेबाजी करते। यह एक परम्परा भर नही थी बल्कि गप्पी गुरु के समर्थक उनकी जीत डंके की चोट

पर दर्ज करा कर विरोधियो को बदहवास भी कर देते थे विरोधियों पर पहले से हल्ला बोलने का मतलब वे कारगर हमला लगा लेते थे। फिर तो वोट देने वाली जनता पर लाख लोभ-मोह कमल के पत्ते पर पानी जैसा ढलक जाता था। ऐसी स्थिति में ज्यादातर लोग अपने मत पर दृढ़ ही रहते और उन्हें कोई डिगा नही सकता था। मुख्य रूप से गप्पी गुरु की यही कमायी थी जिसे यह भी कह सकते हैं कि वे आम लोगों के दिलों पर राज्य करते हैं।

चुनाव शुरू होने पर सही अर्थों में समर्थक और विरोधियों में लड़ाई छिड़ना जरूरी है भले ही चुनाव के उम्मीदवार आपस में न लड़े। एक दूसरे के जुलूस को बगल से निकाल ले जायं या रास्ता बदल दें। किन्तु समर्थकों का लडना-झगड़ना तो जरूरी है नहीं तो चुनाव लड़ने की व्याख्या कैसे की जायेगी और लड़ने का मज़ा कैसे मिलेगा। ऐसे समय तो सभी की जीभ नंगी तलवार होती जिससे भरपूर वार किया जा सकता है जो इससे भी आगे बढ़ जाते हैं और अपने पर काबू नहीं कर पाते वे तो हाथ, लाठी-डण्डा, छुरा-चाकू घातक हथियार बम-बारूद भी विरोधियों पर उठा लेते हैं। ऐसा एक रोचक दृश्य चौक मे उपस्थित हुआ। -

समर्थक - (सिगरेट की लम्बी कश भरते हुए) गुरु को हराना भूल जा बे का खाय के उनका हरौबो सरऊ। जा पहले खाय के आव तब बात कर।

विरोधी - (पान की पिच्च मारते हुए) का कहे बे। कपूर जी का कम हैं। उ भी तपे तपाये नेता हैं। सही पार्टी तो कांग्रेस हैं। उ राज कर चुकी, कर रही और आगेव वही राज करी। पार्टी की बात कर। सोसलिस्ट पार्टी में दमै का है।

समर्थक - सरउ दम देखै चाहो तो सिरफ हमार दम - खम देख लेव। हमका समझत का है तू। हमार तो खुला खेल इलाहाबादी है। चाहे तो खेल के देख ले।

विरोधी - (गुस्से में दीवार पर लम्बी पिच्च मार कर) हमार बाल तो उखाड़ नै सकतेउ। हाथ लगाउब तो दूर हय। रही खेलै की बात तो चल खेल।

समर्थक - (जली सिगरेट फेंकते हुए) का कहे बे। हमका जानत है कि नै

कहते-कहते लाल जी जो गप्पी गुरु का समर्थक है दूसरे कपूर जी के समर्थक बल्लू पर टूट पड़ा और लात-घूंसे बरसाने लगा। लाल जी अपने लोकनाथ के इलाके का शेर था तो बल्लू भी नकास कोने का बाघ था। दोनों ऐसे गुथ गए जैसे खून के प्यासे दो जंगली सिंह हों। दोनों के समर्थक बीच-बचाव करने टूट पड़े। वे आपस में भिड़ न जायं इसलिए बचाव करने के लिए ड्यूटी पर तैनात पुलिस वाला आ धमका और दोनों को लड़ाई- झगड़ा न करने के लिए समझाने लगा। जब उसने देख लिया कि दो साँड़ों की लड़ाई बचाना मुश्किल होता है जैसा कि ड्यूटी के दौरान आमतौर से वह देखा करता था कि कुछ कमजोर सांड़ पर डण्डे बरसाये जायं तो वह लड़ना छोड़कर भाग खड़ा होता है। उसी गुर से उसने लाल जी की कालर पकड़कर और बल्लू का हाथ पकड कोतवाली ले गया। उनके पीछे-पीछे दोनों पक्ष की भीड़ भी कोतवाली चल पडी। दोनों को तो पुलिस मैन अन्दर ले गया और भीड़ कोतवाली को घेर लिया। उनमें कई तो अन्दर की कार्यवाही देखने के लिए लोहे की जाली से ताक-झांक करने लगे। दो-चार पुलिस वाले भीड़ को भगाने के लिए हवा में डण्डे घुमाने लगे। जिसका असर भीड़ पर इसलिए नहीं पड़ रहा था कि यह कोई चोरी-चमारी का मामला तो है नहीं। एकदम राजनैतिक गप्पी गुरु के चुनाव से जुड़ा है जिसमे पुलिस भी कुछ नहीं कर पायेगी। तभी पता नहीं कहाँ से गप्पी गुरु आ धमके। लोगों से जानकारी मिलते ही वे कोतवाली के अन्दर जाने लगे। उनके साथ आठ-दस पक्के समर्थक भी चले गए। उन्हें देखते ही भीड़ की बांछें खिल गयी। वह गप्पी गुरु जिंदाबाद के नारे लगाने लगी। वे दरोगा के कमरे में पहुँच कर कुर्सी पर बैठ गए। दरोगा ने स्थिति भांप कर उनसे कहा-आप इन्हें समझा दें कि ऐसे समय लड़ाई-दंगा न करें चुनाव सिर पर है। इसका गलत असर होगा। गप्पी गुरु ने उन्हें दो मिनट में समझा-बुझाकर अपने साथ वापस लाये जिन्हें देखते ही भीड़ फिर नारे लगाने लगी। इस बार दोनों के संबंधित जय-जयकार करने लगे। गप्पी गुरु के प्रचार करने समर्थक चल दिए।

चुनाव प्रचार बन्द होने के पूर्व की रात एक बलिदानी मशाल जुलूस निकाल गाया जिसमें अधिकतर युवक थे जो अपने हाथों में जलती मशाल लिए थे। वे देश भक्ति संबंधी जोशीले गीत गा रहे थे। इलाहाबाद के प्रमुख मुहल्लो

में यह जुलूस घूम-घूमकर गगन भेदी नारे लगा रहा था और देश में क्रांति करने का संकल्प व्यक्त कर रहा था जिसमें वर्तमान सड़ी-गली सरकार की समाप्ति और नए समाज में रोटी-कपड़ा-मकान मुहैया कराने वाली सरकार को लाने का विश्वास व्यक्त कर रही थी। आगे-आगे समाजवादी पार्टी के बाहर के नेता तथा स्थानीय नेताओं के साथ हर जगह फूल-हारों से स्वागत सत्कार हो रहा था तो मुहल्ला समिति की ओर से चुनाव के लिए गुप्तदान भी दिया जा रहा था। गप्पी गुरु तथा अन्य नेतागण हाथ जोड़कर उनका अभिवादन करते जा रहे थे। यह जुलूस एक तरह से बड़ा ही क्रांतिकारी एवं अनूठा था। जिस-जिस मुहल्ले से घूमता जा रहा था वहाँ के लोग भी इसमें शामिल होते जा रहे थे। अन्त में यह तय था कि यह जुलूस चौक में नीम के पेड़ के तले जो बलिदानी वृक्ष था बारह बजे रात्रि के पूर्व एक सभा होगी जिसे डाक्टर लोहिया सम्बोधित करेंगे। डाक्टर लोहिया का भाषण कुछ कर गुजरने की प्रेरणा से ओत-प्रोत था और चुनाव द्वारा सरकार बदलने का आह्वान था इसके साथ ही इस संकल्प से पूर्ण था कि प्रत्येक नागरिक को कल के चुनाव में अपने मताधिकार कर उपयोग अनिवार्य रूप से किया जाना है। तभी तो उद्देश्य की पूर्ति होगी।

चुनाव वाले दिन लोग समय से पहले मुँह अंधेरे ही उठ जाते और अपने अपने बूथ पर पहुँच कर दुकान लगा लेते। जो पोलिंग एजेण्ट होते वे तो कमरो मे जाकर बैठ जाते और जो मल्टी परपज़ वर्कर होते वे तो मुहल्लों के लोगों को वोट देने के लिए निकालने से लेकर उन्हें गप्पी गुरु के चुनाव चिह्न पर मोहर लगाने तक खूब रटा-रटा कर पक्का कर देते थे। खाने-पीने की चिन्ता किए बिना या जो कुछ अपने से खा-पी पाते सो लेकर अपने काम की धुन में जुटे रहते। जबकि दूसरी ओर तो पूड़ी-सब्जी के पैकट बाँटे जाते और नाश्ते की पुड़िया पहुचायी जाती। एक ओर तो पैसा फेंक का खेल चल रहा था तो दूसरी ओर अपने पैसे से कुछ भी खा-पीकर अपने सिपहसालार के समर्पित सैनिक थे। यही उनका बल था।

जब लोगों के पास कुछ करने के लिए खास काम धंधा नहीं रहता तो लोग अटकलों के बाजार में अपना अटकल पच्चू भिड़ाते हैं। चुनाव के नतीजे के पहले यह स्थिति सावन की घनघोर घटाओं जैसी छायी रहती है। एक कहता

गुरु जी पक्के से जीत रहे हैं। दूसरा कहता अस्सी हजार से जीत रहे हैं। तीसरा कहता - भग साले कौन सी नयी बात तू बता रहा है। वे नहीं जीतेंगे तो क्या स्वतंत्र कैण्डीडेट अज्जू महाराज जीतेंगे। इन सबको काटकर चौथा कहता - तुम्हे नही मालूम इस बार कपूर साहब शर्तिया जीतेंगे। नेहरू जी इसीलिए तो वोट देने दिल्ली से आये थे। गुप्त कमरे में चुनाव के पहले की रात बैठक हुई थी कि हर हाल में इस चुनाव को जीतना है। पानी जैसा पैसा बहा दो। तो क्या इसका असर नही पड़ेगा। पहला कहता- आओ शर्त लगा लो। बातों में नहीं मुझे काम में भरोसा है।

जब काउंटिंग का दिन आता कभी बढ़त तो कभी घटत का खेल चलता। लेकिन तीसरे और चौथे पहर तो बढ़त का तराजू तेजी से झुकता जाता। शाम होते-होते तो कार्यकर्ता जीप-ट्रक-कार जुटा लेते। बैण्ड बजे वालों को बुला लाते और उनकी फिल्मी धुनों पर नौजवान थिरकने में मशगूल हो जाते। फूल-हार गुलाल-अबीर की घूम मच जाती। साथ ही नौजवान अपनी खुशियों इज़हार करने के लिए बम फटाके, अनार, लड़ें भी लाकर रख लेते। किन्तु जब तक जीत की विधिवत घोषणा जिलाधीश नहीं करते तब तक जीत का जुलुस कैसे चले। अत मे वह स्थिति भी आती जब गप्पी गुरु के चुनाव में जीतने की घोषणा जिलाधीश करके उनसे हाथ मिलाकर माला पहनाकर कागज सौंप देते। कितनी बार यही क्रिया-प्रक्रिया झेलते-झेलते गप्पी गुरु की तो एक तरह से आदत बन गयी थी। हा यह जरूर होता कि हर बार जिलाधीश बदल जाते जबकि गप्पी गुरु वही के वही होते।

कचहरी से जुलूस जब सज-धज कर जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता वैसे-वैसे आम जनता कार्यकर्ता अपनी-अपनी गाड़ियाँ, सजा-धजा ट्रक, जीप गाडी रथ जो इस अवसर के लिए खास तरह से प्लाई उड से बनी होती जिस पर गप्पी गुरु विराजते धीरे-धीरे आगे बढ़ता। जगह-जगह, रास्ते-चौरास्ते पर मोहल्लों में रथ को रोककर गप्पी गुरु को फूल-हार, नोटों की माला से हार्दिक स्वागत सत्कार करते। यह सिलसिला आधी रात के बाद तक चलता रहता्। जिसमें अबीर-गुलाल इतना उड़ाया जाता जैसे होली पर सभी जगह रंगों कि बहार छा जाती है। सड़कें एकदम रंग-बिरंगी। लोगों के चेहरे-कपड़े भी अबीर

गुलाल से सराबोर। तमाम नेतागण तथा गप्पी गुरु इतने रंग दिए जाते कि पहचान में ही न आते थे। बीच-बीच में बम-फटाके आदि आतशबाजी छुड़ा जाते। इलाहाबाद की और सीटों पर समाजवादी पार्टी चाहे तो हार भी जाए किंतु इलाहाबाद उत्तर की इस सीट को जीतने पर वह उत्साह में इतना भर जाती थी जैसे सभी सीट उसकी झोली में आ गए हों। पार्टी इस अजेय सीट का इतिहास बना कर रखना चाहती थी जो वास्तव में इलाहाबाद का एक अनूठा इतिहास ही होता था।

# दस

निर्लिप्त जी ने जब साहित्य जगत की नब्ज़ पकड़ ली तब उन्हें शीघ्र ही आभास हो गया कि उसकी गति क्या है। हृदय की धड़कन कितनी है और रक्त सचार कितना है। फिर उस गति को देखकर अपनी मति ही नहीं मनतव्य प्रकट करने लगे। साहित्य में छायावाद तो प्रतिष्ठित हो चुका था उसमें प्राण संचार के लिए निर्लिप्त जी प्राणपण से जुट गए। इसके लिए उन्होंने कोमल-कान्त पदावली का मार्ग चुना और इस पर मज़े-मज़े मंथर गति से चलने ही नहीं लगे वरन् सरपट दौड़ने लगे। इस दौड़ में उन्होंने अपने सहचरों को पीछे नहीं छोडा वरन् धकेलते-धकियाते हुए बहुतों को तो धूल धूसरित भी कर दिया। वे काव्य में अज्ञेय के प्रति चरम जिज्ञासा का भाव व्यक्त करते हुए प्रकृति में उसकी छवि के दर्शन करने लगे। इस दिशा में निर्लिप्त जी ने काव्य रचना करके भण्डार भर दिया। जिस प्रकार वे शरीर से भीम काय सभी अधमरे कवियों से अलग दिखते थे वैसे ही उनके विपुल साहित्य भण्डार के सम्मुख सभी पासंग लगते थे। किन्तु पता नहीं कब और क्यों छायावादियों की गणना में उनका नाम अन्त में लिया जाता था जिससे वे बहुत आहत होते। उन्हें भनक लग गयी कि यह सब किसी साज़िश के चलते किया जा रहा है। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के कथन में एक ऐठन और मार कर कहा जा रहा था कि खदेड़ दो इन बाहरी छायावादियों को कहीं साहित्य की लहलहाती फसल को ये चर न जायं। कैसी तो दुर्भावना का दुराग्रह है। साहित्यकारों में यह चलन आपसी चकल्लस नहीं पैदा करेगा तो और क्या करेगा।

निर्लिप्त जी इस मानसिकता से लबालब भर गए। वे इस बात के क़ायल हैं कि छायावाद एक विद्रोही काव्य विधा है। यह परम्परागत रीतिवादी काव्य विषयों तथा काव्य रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करके एक स्वच्छन्द पथ अपनाता

है जिसमे सामाजिक बधनो, मर्यादाओ, वर्जनाओ की अवहेलना निर्भीक रूप से कर नवीन विषयों और अनुभूतियों का वर्णन है। जो काव्य जगत में पूर्व में कभी नहीं हुआ। इसीलिए यदि सूत्र में लोग कहते हैं कि छायावाद स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह है तो सत्य ही है। कवि तो सर्वथा विद्रोही  ही होता है। जिसके फलस्वरूप वह काव्य के रूप विधान में निरन्तर प्रयोग और परिवर्तन करता जाता है। पराकाष्ठा प्रयोग और परिवर्तन को दृष्टि में रखकर निर्लिप्त जी ने कई काव्य संग्रह-विशाला, विभ्रान्त, विपंचिका, विपरिणमन, विपाशन, विभावन आदि की पाण्डुलिपियां तैयार की। पाण्डुलिपियों के नाम करण को जानकर जिज्ञासु कवि निर्लिप्त जी से डरते-डरते पूछते कि आपने अपने सभी काव्य सग्रह का नामकरण 'व' अक्षर से ही क्यों शुरू किया। इस पर उन्होंने दाशर्निक गूढ भंगिमा में बताया कि 'व' तो विराट ब्रह्म का स्वरूप है और ब्रह्म की ही सृष्टि के सभी अंश हैं। अंश का समर्पण अंशी के प्रति तो होना ही चाहिए। मेरे सग्रहों का एक उद्देश्य यह भी है।

निर्लिप्त जी इलाहाबाद में रहते हुए बम्बई से कहीं ज्यादा काव्य रचना मे जुट गए। दस-दस बारह-बारह घण्टे साहित्य साधना करते हुए पाण्डुलिपियों का ढेर लगा दिया। वे अब साहित्य पहनने, ओढ़ने, जागने, सोने, साहित्य खाने साहित्य पीने साहित्य की जुगाली करने लगे। उनके प्रकाशन के लिए सहधर्मियो ने परामर्श ही नहीं दिया वरन् वीणा प्रकाशन के प्रोपाइटर राजनाथ शर्मा से सम्पर्क भी करा दिया। शर्मा जी को लगा कि जिस प्रकार उभरता कलाकार ज्यादा पैसों की कमायी में नहीं रहता। निर्लिप्त जी को भी थोड़ा बहुत देकर ठण्डा कर देंगे। रायल्टी का तो मामला ही नहीं बनेगा। आखिर इनको कवि से महाकवि भी तो बना रहा हूँ। एक साथ इतनी किताबें छपने के बाद ये जमीन से आसमान में भी तो पहुँच जायेंगे। चलो यह सौदा घाटे का नहीं रहेगा। इस इरादे से राजनाथ शर्मा ने ताबड़-तोड़ निर्लिप्त जी की छह-छह किताबें छापने में लग गये। फटा-फट प्रूफ निकाल कर निर्लिप्त जी के हाथों में पकड़ा दिया जिससे उन्हे भरोसा हो गया कि किताबें जल्दी ही प्रकाशित हो जायेंगी।

पैसों की कड़की के दौरान एक दिन निर्लिप्त जी वीणा प्रकाशन पहुँच गए और राजनाथ शर्मा से तीन हजार रुपए अडवांस माँग बैठे। शर्मा जी स्थिति को

भांपते हुए तथा गरम लोहे को पीटने की मुद्रा में पहले तो निर्लिप्त जी का जलपान-चाय से जोरदार स्वागत किया जिससे उनका दूधिया उबाल शान्त हो गया। इसके बाद व्यावहारिक बुद्धि का भरपूर उपयोग करते हुए कहा -

पंडित जी आप अन्यत्र मत लीजियेगा। मैं एक बात स्पष्ट करना चाहता है कि सहायता-सहयोग सदाशयता अपनी जगह है और संसार में इसे असमर्थ लोगों पर उलीचना भी चाहिए। किन्तु....।

- आपके किन्तु की कन्नी लगाने के पहले मैं आपके कथन का प्रतिवाद करता हूँ कि किस आधार पर आपने मुझे असमर्थ मान लिया है। क्या अपना पैसा माँगना मेरी असमर्थता है।

- पण्डित जी मेरा यह आशय कदापि नहीं था और ना है। आप जैसे समर्थ तो मुश्किल से मिलते हैं।

- मैं सब समझता हूँ। आप ऐसा करिये शर्मा जी कि मेरी छह पाण्डुलिपियों में से दो पाण्डुलिपियों की कापी राइट जिसे मैं बेच देना चाहता हूँ। कितने रुपयों में खरीदेंगे।

- सही फरमाया आपने पण्डित जी। आखिर थोड़े-थोड़े लेन-देन से काम कहाँ बनता है। इधर लिया उधर खत्म हो गया। न देने का मज़ा और न लेने का मज़ा। वैसे भी कितनी बार आप ले चुके हैं। एक बार में हिसाब सब साफ हो जाता तो ठीक था।

- निकालिये सब हिसाब-किताब और कापी राइट सेल से मुजरा कीजिये।

- यह बात हुई कायदे की। पाँच हजार रुपए खाते में आपके नामे है।

- चलिए दो किताबों की कापी राइट का आप कितना तय करते हैं।

- औरों को तो मैं चार हजार से अधिक नहीं देता जिनकी चार-छह किताबें छप चुकी हैं किन्तु मैं आपको पांच हजार रुपए प्रति पुस्तक से अधिक देने में असमर्थ हूँ। जैसा कि पण्डित जी आप तो जानते ही हैं कि कविता का मार्केट कहानी, उपन्यास, निबंध से जरा कम ही है। इसकी मार्केटिंग के लिए मुझे कितने पापड़ बेलने पड़ेंगे। तब कहीं बाजार में बेच पाऊंगा। कमीशन डिस्काउंट अर्चना-पूजन में ही बधिया बैठ जायेगा। हमें बचेगा क्या सिर्फ खुरचन-खुर्दा।

आखिर हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं उन्हें भी तो पालना है।

- शर्मा जी आपने तो ऐसी कथा बयान की कि मुझे आप पर भी कलम चलाना पड़ेगा। आपकी दयनीय स्थिति पर मुझे दया करनी ही पड़ेगी। आपकी हालत खराब है तो चलिए चार-चार हजार से ही मामला खत्म करें।

- वाह पण्डित जी! आप जैसा धर्मात्मा तो कोई मिलेगा नहीं। आपने तो मेरे मन की बात कह दी।

राजनाथ शर्मा वीणा प्रकाशन के प्रोपाइटर ने देखा कि अकस्मात उनके दोनों हाथों में लड्डू आ गया। कहाँ तो उन्होंने सोचा था कि निर्लिप्त जी पहले तो कापी राइट की बात मानेंगे ही नहीं और मान भी लेंगे तो जमकर झिक-झिक करेगे। और अन्य कवियों की तरह मुझे निचोड़ ही लेंगे। ये तो ऐसे दिलदार कवि कोविद मिले जो दिल दुखाना तो जानते ही नहीं। दोनों पुस्तकें यदि चल गयी तो मैं मालामाल हो जाऊंगा। ऐसे आदमियों को भगवान जरा फुर्सत में बनाता है। वे शाहदिल ही नहीं दिलसोज़ होते हैं। बही खाते को उलट-पलट कर सारा हिसाब एक पर्ची पर टांक कर निर्लिप्त जी को उन्होंने दिनांकवार बता दिया कि कब-कब उन्होंने कितना पैसा लिया था जो अब कुल पांच हजार रुपए हो गए। इन्हे मुजरा करने पर शर्मा जी को मात्र तीन हजार रुपए निर्लिप्त जी को देना था। कापी राइट सेल की बंदिश में बाँधते हुए शर्मा जी ने उनसे लिखा लिया कि विशाला और विभ्रान्त पुस्तक के प्रकाशन का सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन रहेगा। ऐसे सुअवसर तो मुश्किल से मिलते हैं जिनका दोहन राजनाथ शर्मा दोनो हाथों से भी करेंगे तो कभी थकने का नाम नहीं लेंगे।

निर्लिप्त जी को लगा कि जब उन्हें छायावाद का भी विरोध करना है तो उन्हे आगे ही बढ़ना है। कविता को कल्पना लोक से उतार कर जीवन की ठोस धरती पर लाना ही होगा। कल्पना लोक में विचरण से जन-जन का हित नहीं है। मात्र व्यक्ति का हित निहित है जबकि साहित्य का उद्देश्य समूह है समाज है। अतः समाज को दृष्टि में रखकर काव्य रचना की जाय। प्रगतिवाद ही समाज की सही मांग है। इसे आन्दोलन के रूप में ग्रहण करना चाहिए। जिसमें सामाजिकता और मानवतावादी दृष्टि को उभारा जाय। वस्तुतः छायावाद एक तरह से          है जो रोमानियों में रमण करता है इसके दिन अब लद गए

भले ही अन्य साहित्यकार इसे मात्र एक नारा मानें किन्तु वह दिन दूर नहीं जब प्रगतिवादी की प्रगति कोई रोक नहीं पायेगा। समाज में उपजा वर्ग संघर्ष क्या बेमानी है। बेमतलब है। समाजवादी समाज की स्थापना के लिए तो वर्ग संघर्ष को तीव्र ही नहीं तीव्रतम करना होगा। सामाजिक न्याय के लिए तो वर्ग संघर्ष की अग्नि प्रज्वलित ही नहीं प्रचण्ड करनी होगी। साहित्य में इसकी अनुगूज अपेक्षित है इस यथार्थ से आँखें कैसे बन्द की जा सकती है कि वर्तमान युग की कविता स्वप्नों में अब नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना ही पड़ेगा। इस भाव भूमि पर चितन-मनन-मंथन करते हुए निर्लिप्त जी ने अपनी काव्य दिशा ही बदल डाली। उनकी काव्य धारा से सर्व सम्पन्न के विरुद्ध सर्वहारा का शोषित स्वर तीव्रता से मुखरित होने लगा।

साहित्य जगत में निर्लिप्त जी ने चहुँतरफा मोर्चा खोल दिया। लेखन से लेकर परिसंवाद-संवाद, संदेश, वाद विवाद, वक्तव्य आदि में अपने साम्यवादी मनोभावों की ऐसी भीड़-भगदड़ उत्पन्न करने लगे कि कितने तो साहित्यकार उसमें दब गए, पिस गए और जो बच गए वे हताहत हो गए या सौभाग्य से मैदान छोड़ भाग निकले तभी जाकर उनकी कुशलता रही। उनकी दोहरी व्यूह रचना बड़ी कारगर थी। एक तो मौखिक दूसरी लेखकीय। मौखिक वक्तव्यों द्वारा वे एक भी अवसर हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। जो भी साहित्यिक गोष्ठी, सवाद, परिसंवाद, वाद-विवाद, वक्तव्य के अवसर आते वहाँ पहुँच कर अपनी उपस्थिति तो दर्ज कराते ही साथ ही गल्लादराज़ी भी जमकर करते। वैसे भी भगवान ने उनके गले में अन्य लोगों की तुलना में कुछ ज्यादा ही तेज-तर्राट तेजाब नवाजा था जिससे वे किसी को आसानी से गला सकते थे। सम्मेलन सभाओं में उन्हें चाहे अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया जाय या न किया जाय। वे अपनी जगह बना ही लेते थे। भले ही वे सबसे पीछे बैठे हों किन्तु बीच में ही जब उन्हें टिप्पणी करने का अवसर मिल जाता और प्रायः वे अवसर तो उत्पन्न ही कर लेते थे। उनकी वाक् शक्ति जाग्रत हुई नहीं कि सारे लोग पलटकर पीछे घूम जाते। तब मंच पर बैठे लोग सबसे पीछे हो जाते थे।

ऐसे कई अवसर निर्लिप्त जी के जीवन में आए थे किन्तु एक धमाकेदार अवसर ऐसा भी आया जब वे सभी को ललकारते हुए कहा साथियों सबसे

पहले हमे देखना चाहिए कि साहित्य का उत्स क्या है और वह किसके लिए है। आदिकवि वाल्मीकि ने काव्य की खोज वेदना से की। उसे खोज भी क्यों कहा जाय वह तो स्वयमेव नर क्रौंच पर वधिक के शर संधान और क्रौंची की वेदना का शोक श्लोक बनकर प्रगट हुआ। वेदना जब साधारणीकृत हो जाती है तब वह व्यष्टि की न रहकर समष्टि की हो जाती है। जब काव्य् का मूल वेदना है तब इसे प्राणी मात्र की वेदना के समाहार के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए। मेरे मत से तो साहित्य सर्वहारा वर्ग के दुःख-दैन्य को मिटाने के लिए होना चाहिए। जब-जब इस उद्देश्य को लेकर साहित्य रचा जायेगा तब-तब कोई वाद या विवाद हो ही नहीं सकता। मेरे मत से जो भी कोई असहमत हों मैं उनसे वाद-विवाद कर सकता हूँ। उन्हें यह मेरी चुनौती है।

इलाहाबाद का ही नहीं देश का कौन सा ऐसा साहित्यकार है जो निर्लिप्त जी से इस विषय पर लोहा ले सके। वे अपने ओज से जब लोहा को पानी बनाने का बीड़ा उठाया है तब कौन उनका सामना करने का साहस जुटा सकता है। जबसे उनकी 'नैतिकता की राह' नामक कविता 'अमर संदेश' में प्रकाशित हुई तब से वे शीर्ष पर चर्चा के विषय बन गए। हर सभा-संगोष्ठी-समारोह मे साहित्यकारों के बीच उसकी गर्मागरम चर्चा छिड़ जाती। कविता हृदय में एक टीस उत्पन्न कर नैतिकता की दुहाई सी माँगती प्रतीत होती है -

पुण्य प्रयाग की धरती पर
यह पाप कैसा उजागर
कि बेटे के आकस्मिक निधन पर
ससुर अपनी बहू को
मीरगंज के कोठे पर बैठाकर
हर सुबह उसके दरवाजे पर जाकर
लौटता है रोटी के पैसे बटोर कर
किन्तु उसमें न तो लौटती है
अमर आत्मा और ना नपुंसक नैतिकता
तभी तो वह ठाठ से रोटी खाता है
और नींद भर सोता है

इस कविता ने साहित्य जगत में ऐसा जोरदार धमाका उत्पन्न किया जिसकी अनुगूंज दूर-दूर तक सुनायी दे रही थी। कुछ तो सहम गए, सतर्क हो गए तो कुछ चौंक गए, चपल हो गए। अनेक कवियों, समीक्षकों, समालोचको ने तो इसे प्रगतिवाद की प्रतिनिधि कविता के रूप में स्वीकार किया तो अन्य कवियों ने इसे छायावाद पर गोली ही नहीं गोला के रूप में मान्यता दी। निर्लिप्त जी अब साहित्य में जाने-पहचाने ही नहीं जानदार-शानदार कवि के रूप मे एकदम से उभर कर आ गए। प्रायः प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविता धडल्ले से छपने लगी और पाठक अनुभव करने लगे कि निर्लिप्त जी के काव्य मे जो बात है वह कहीं नहीं मिलती। यदि किसी कारणवश उनकी रचनाएं पत्र-पत्रिका में स्थान न पा सकती तो पत्रिका सूनी-सूनी लगती। अब निर्लिप्त जी जमकर लेखन में जुट गए और भण्डार बढ़ाने लगे। उन्होंने काव्य संग्रह की आधा दर्जन पाण्डुलिपि तैयार कर डाली और दो बड़े प्रकाशकों की प्रतिद्वंद्विता मे उसे पाण्डुलिपि देना उचित समझा जो शोषण न करते हुए बेहतर एडवास तथा बढ़िया रायल्टी दे सके। निर्लिप्त जी की लोकप्रियता अब सीमाएं तोड़ चुकी थी। साथ ही उनका तेज वलय भी बढ़ता जा रहा था। इसी से उर्दू शायरी के जाने माने जगमगाते सितारे फ़िराक़ गोरखपुरी भी उनके काव्य के कायल थे और यह बेबाक टीप देने में कोई कोताही नहीं करते कि तुम्हारी हिन्दी में यदि कोई कायदे का कड़क कवि है तो वह निर्लिप्त जी हैं। उनके पाये का ऐसा पानीदार हिन्दी मे आज तक मैंने नहीं देखा।

निर्लिप्ति जी का एक-एक वाक्य एक-एक पंक्ति अब कोटेशन के रूप मे कोट की जाती थी। उनका संदर्भ देकर साहित्यकार अपना लेख या बात शुरू करते। प्रायः अब वे कालेज-विश्वविद्यालय के समारोहों-सम्मेलनों के उद्घाटन अवसर पर सम्मानपूर्वक बुलाये जाते जिसमें विद्यार्थी तथा जिज्ञासु कई साहित्यिक प्रश्न करते जिनका उपयुक्त समाधान उन्हें मिल जाता। एक समारोह में एक जिज्ञासु का प्रश्न था -

- आप प्रगतिवाद से पहले प्रयोगवाद की ओर क्यों नहीं उन्मुख हुए। आपके लिए क्या यह कोई बाधा थी।

- सबसे पहले प्रयोगवाद को समझ लें यह तो प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति की देन है। इसमें शुद्धकाव्य तत्व बहुत कम होता है। प्रयोगवादी कविता मे

गद्यात्मक व्याख्या, विवेचन विश्लेषण और व्यग्य की प्रमुखता होती है. प्रयोगवाद मे विलक्षण प्रयोगों, उक्तियों और बिम्बों द्वारा अस्वाभाविक और अद्भुत उपमानों के द्वारा पाठकों को चौंकाना और मानसिक आघात पहुँचाना प्रयोगवादी का प्रमुख कार्य होता है। वह कविता को अकविता बनाने अर्थात पद्य और गद्य के मौलिक अन्तर को मिटाने का प्रयास करता है। मेरे लिए यह निश्चित रूप से एक बाधा थी। अतः मैंने इसे ख़ारिज कर दिया।

निर्लिप्त जी की काव्य रचनाएं कहीं तो एकदम सरल-सरस होती तो कभी गूढ-गम्भीर-गहन भी होती। कितनी बार तो कालेज तथा विश्वविद्यालय के प्राध्यापक इस असमंजस में पड़ जाते कि उनके काव्य की विद्यार्थियों के समक्ष आखिर क्या और कैसे व्याख्या की जाय। बोधगम्यता में कभी-कभी अपनी असमर्थता तो अनुभव करते किन्तु निरुपाय भी हो जाते थे। परस्पर चर्चा भी कर लेते कि चलो अभी तो वे जीवित हैं उन्हीं से इसके वर्ण्य विषय की पृष्ठभूमि समझ लें। उनसे बढ़िया व्याख्या तो कोई कर ही नहीं सकता। बाह्य रूप से तो यह उनके उपहास की बात हो जाती किन्तु आन्तरिक रूप से उनकी बड़ी दयनीय स्थिति होती जिससे छुटकारा पाने के लिए वे बड़े बेचैन रहते।

निर्लिपत जी इधर एक खण्डकाव्य के सृजन में अपने को समर्पित कर दिया। जिसकी कथावस्तु उन्होंने चौक स्थित नीम के पेड़ को बनाया जो वस्तुत दो सौ वर्षों की कथा अपने में समेटे हैं। इसने 1857 का प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध देखा। जिसमें आठ सौ से अधिक बेगुनाह लोग फाँसी पर इसलिए लटका दिए गए थे कि उन्होंने अंग्रेजों की दासता से छुटकारा पाने के लिए स्वतंत्रता की अलख जगायी थी। यही बलिदानी वृक्ष उस नृशंसता का गवाह है। इतना ही नही आज भी यह नीम का पेड़ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी अत्याचार-अनाचार, शोषण, दमन, गुण्डागिरी, उठाईगिरी, जालसाज, रंगबाजी, सेसरबाजी, की शिकार आम जनता का गवाह है। यही नीम का पेड़ गरीबी, बेकारी, बर्बादी बेरोजगारी, पुलिस अत्याचार का भी गवाह है। इसकी गवाही को न तो राजनीतिक दल सुनते हैं न नेता और ना ही मंत्री सुनते-समझते हैं। इसीलिए अब यह नीम का पेड़ अपनी व्यथा आसुंओं में व्यक्त कर रहा है। निर्लिप्त जी ने अपने इस खण्डकाव्य का नामकरण 'नीम के आँसू' रखा है।

'नीम के आँसू' खण्डकाव्य की रचना में निर्लिप्त जी ऐसे डूब गए कि उन्हे अपने खान-पान, तन-मन की भी सुध-बुध न रही। नीम के प्राचीन-स्वरूप की गवाही लेखन में वे एक तरह से संयत-शान्त-सामान्य और संतुलित थे किन्तु ज्योंही निर्लिप्त जी ने इसके वर्तमान साक्ष्य स्वरूप पर लेखनी चलाना प्रारम्भ किया तो वे अन्तर्तम से असंतुलित और असामान्य हो गए। उनकी बैठक मे बैठने वाले साहित्यकारों के बीच चर्चा करते हुए वे कटुतम होकर कहते -

क्या वास्वत में जिस आज़ादी की कल्पना की गयी थी वह हमें मिली है? जितना हमें मिला नहीं उससे कहीं ज्यादा तो हमने खोया है। हमने पुराने मूल्य, मापदण्ड, नैतिकता, सदाशयता, सदाचार, शिष्टाचार आदि को तिलांजलि देकर घूसखोरी, जमाखोरी,भ्रष्टाचार, अत्याचार आदि कुरीतियों को गले लगाया है। क्या हमने मानवी गुणों को बचा रखा है। भारत जो सद्भावनाओं-सदाचारों से भरा था वह अब रिक्त होता जा रहा है। किस सहृदय की आँखों में इस दुरावस्था के लिए आँसू नहीं आयेगा। नीम के आँसू निरर्थक नहीं हैं। उस दृष्टि की आवश्यकता है जो नीम के आँसू देख सके। निर्लिप्त जी की इस पैनी टिप्पणी से सभी सहमति जताते और अनुरोध किए बिना न रहते कि पण्डित जी इस खण्डकाव्य को शीघ्र पूरा करें। हम सभी बड़ी उत्सुकता से इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

निर्लिप्त जी इस खण्डकाव्य के लेखन करते समय प्रायः विचलित हो जाते थे। उनकी अन्तरात्मा उनके इस लेखन के समय बारम्बार उनके कवि धर्म को धिक्कारती, फटकारती, ललकारती कि कवि धर्म का न्याय संगत निर्वाह करो। जिसकी पीड़ा से वे रात-रात भर तड़पते-तरसते, जगते-करवटें बदलते। फिर उठ कर काव्य रचना में लीन हो जाते। वे बारम्बार अनुभव करते कि ऐसी विकलता - विवशता तो उन्हें कभी किसी रचना प्रक्रिया में नहीं हुई। फिर भी वे 'नीम के आँसू' रचना में तल्लीन थे। कभी-कभार एक तेज हवा के बावण्डर की भांति उनके मस्तिष्क में एक प्रज्वलित विचार आ जाता था जिससे वे अन्तर-बाहर से दग्ध हो जाते। एक दिवस में वे संध्याकाल दारागंज में गंगा की ओर ठहलने निकल पडे। मन ही मन कुछ बोलते चले जा रहे थे कि रोड के किनारे सिमटी-सिकुडी एक बुढ़िया को देखा जो ठण्ड से बचने के लिए अपनी फटी-पुरानी साड़ी से लेटे-

लेटे जतन किए जा रही थी। निर्लिप्त जी से यह स्थिति देखते नहीं बनी और अपनी ऊनी चादर उढ़ाते हुए कहा - माँ ठण्डी ज्यादा लग रही है ना लो ओढ़कर सो जाओ। फिर अपने से बातें करने लगे- कितनी गरीबी है कि ठण्ड काटने का इन्तज़ाम नहीं। ऐसे ही एक रात कुत्ते के बच्चे को भूख से चिल्लाते देखा। कहाँ उनका मन मानता। वे उसे गोद में लेकर जगन्नाथ हलवाई की दुकान पर पहुँच गए और कुत्ते को पेट भर कचौड़ियां खिलाकर ही माने। जगन्नाथ हलवाई ने पैसे लेने से लाख मना किया किंतु वे जब माने तब ना।

'नीम के आँसू' खण्डकाव्य बड़े तनावों-तल्खियों में पूर्ण हो गया और उसका प्रकाशन भी हो गया। इसका काफी प्रचार-प्रसार प्रकाशन के पूर्व ही हो गया था। सभी साहित्यकारों ने संकल्प किया कि इसका विमोचन तो बृहत रूप से होना ही चाहिए। उन्होंने इस पर अपनी असहमति प्रगट करते हुए कहा था- मैं भी नीम के पेड़ से कम कहाँ हूँ। जो वर्षों से आँसू बहाने के अलावा कुछ नहीं कर सका... कहते-कहते रोने लगे।

# ग्यारह

बाबूगंज की मण्डी में पितृ पक्ष के अवसर पर मातृ नवमी में कुँआरी कन्याएं घर की दीवारों को गोबर से लीप कर संझिया बनाती जिसमें अबीर-गुलाल, फूल, कौड़ी, चमकदार पन्नी चिपकाकर सजातीं। सायंकाल मण्डी मुहल्ले की लड़कियाँ अपनी सहेलियों के साथ सभी के घर जातीं और दीपक जलाकर एक साथ बैठकर ऐसे उच्चतम आवाज़ में गाती कि पूरी मण्डी-मुहल्ले को पता लगा जाता कि संझिया का त्यौहार आ गया है। जब वे बंधी - बँधायी, रटी-रटायी लीक पर गातीं -

का रे महादेव नेबुला लाएउ<br>
कारे गौरा देइ पूजन जाय<br>
पुजत-पुजत मोरी भौंरी पड़ गयी<br>
अब घर कइसे जाब......

यह स्वर उठान-उड़ान भर ही रहा था कि थाने का दरोगा अपने दो सिपाहियों के साथ मैकुआ के घर के सामने खड़ा हो गया और जोर से चिल्लाकर मैकुआ को आवाज़ दी। मैकुआ घर के अन्दर चारपाई पर बीमार बना लेटा था। उसकी पत्नी रमकलिया ने बाहर का माजरा देखकर उसे बताया कि घर पर पुलिस आयी है। तुम्हें लेने और मण्डी की सारी भीड़ उमड़ पड़ी है। तुमसे कौन सी खता हो गयी जो पुलिस का छापा पड़ा। उसने संकेत से चुप करते हुए उसे जताया कि वह बाहर से अभी आता है किन्तु बाहर गया तो बाहर का ही रह गया भीतर तो लौटा ही नहीं। दरोगा के इशारे पर मैकुआ का कालर पकड़कर एक सिपाही उसे धकियाता ले चला। यह स्थिति देखकर मण्डी के लोग सकपता गए कि आखिर मैकुआ ने किया क्या। लड़कियां-औरतें गाना-बजाना छोड़कर सब बाहर निकल आयी और मैकुआ की हालत देखकर गला फाड रोने लगीं। उसकी

औरत बच्चे तो बारबार पुलिस दरोगा का पैर पकड़ कर हाथ जोड़ती नरियाये जा रही थीं कि हुज़ूर इसे छोड़ दो। हम गरीब हैं बेमौत मर जायेंगे। किन्तु पुलिस यह सब सुनने थोड़ी आयी थी। वह तो मैकुआ को घसीटते-धकियाते-लतियाते ले गयी। पहले तो सारी भीड़ उनके पीछे-पीछे पीछा करती गयी किन्तु मंजिले मकसूद तक डर के मारे सारी भीड़ अपने आप छंट गयी।

मैकुआ की जान रास्ते भर तो नह में समाई थी किंतु थाने पहुँच कर जब उसने पुन्ना गुरु और बमबम वकील को देखा तो उसकी जान में जान आ गयी। उसने मन ही मन तय कर लिया कि पुन्ना महाराज के लिए जान भी चली जायेगी तो कोई बात नहीं। पुन्ना गुरु का पैसा और बमबम वकील का पाँचा सारे कानून को समेट कर उसे बचा ही लेगा। उधर थाने के मुंशी द्वारा कानूनी जाल बिछाये जा रहे थे तो इधर बमबम वकील उसे चूहे की तरह कुतर रहे थे। दरोगा भी जानता था कि बमबम वकील हों जिधर जीत पक्की हो उधर। किन्तु वह कर ही क्या सकता था। उधर पुन्ना गुरु के मुकाबले बच्चू महाराज खड़े हैं। दोनों जोड़ के तोड़ हैं। फिर खून के मामले में जमानत कैसी। बमबम वकील भाँप गए कि कत्ल के केस मे तो थाने से कुछ होने-जाने वाला नहीं है। इसकी जमानत तो सेशन कोर्ट से ही होगी। यहाँ मेहनत मशक़्क़त बेकार है। हां इतना जरूर है कि हल्के का दरोगा केस को कैसा बना रहा है। कितने चश्मदीद गवाह बना रहा है। यह सब पता चल जाय तो हमारी फतह है। इस काम में उन्होंने अपने मुशी को लगा दिया।

पुन्ना गुरु को अलग से बुलाकर समझा दिया कि चलो कचहरी चलना है। मैकुआ की पेशी सिटी मैजिस्ट्रेट के यहाँ होगी। वहाँ से तो केस रिजेक्ट होगा ही फिर हमें सेशन कोर्ट में मैकुआ के जमानत की अर्ज़ी दाख़िल करनी होगी। वहीं से मैं इसे जमानत दिलाने की कोशिश करूंगा। इन सबके पहले आप मैकुआ के घर में खाने-पीने का महीने भर का इन्तज़ाम पक्का कर देना। आखिर उसके बाल बच्चों को भी तो आपको ही देखना है। कोर्ट में आप जमानतदारों को भी लाइयेगा। आज शनीचर का दिन है कोर्ट दो दिनों के लिए बन्द होने वाली है। देखे आज कितना काम होता है। थाने से जाने के पहले जरा उधर की पार्टी की नज़र बचा कर दरोगा और मुंशी को खुश कर दीजियेगा जिससे वे हमारे हक़ मे काम करें। इतना समझा-बुझा कर बमबम वकील तो रिक्शे पर बैठकर कचहरी की ओर चल दिये।

पुन्ना गुरु के लिए यह कोई पहला मौका नहीं था। जिस पेशे को उनके पूर्वजों तथा स्वयं उन्होंने अपनाया था। उसमें तो यह सब होना साधारण सी बात है। पण्डा-पुरोहित राज कोई हंसी-ठठ्ठा तो नहीं है। इसमें भी पुराने जमाने के राज्यतंत्र की तरह सेना, आक्रमण, मार-काट आदि सब बेहद जरूरी है। तभी तो जजमानी राज सही-साट चल सकता है। यह बात पुन्ना गुरु और बच्चू महाराज सब जानते हैं। सभी पर किसी न किसी तरह के फौजदारी मुकदमे चलते ही रहते है। बिरादरी में मुकदमों की संख्या से उनकी हैसियत छोटी-बड़ी मध्यम नापी जाती है। पुन्ना गुरु पर कुल मिलाकर कोई चालीस मुकदमे चल रहे हैं जिसके वे आदी हैं। जिस प्रकार हारी-बीमारी के लिए फेमली डॉक्टर होते हैं उसी प्रकार यहाँ मुकदमेबाजी के लिए फेमली वकील होते हैं। साथ ही एक चतुर चालाक कारिन्दा थाना-कोर्ट कचहरी-वकील मुंशी से निपटने के लिए तैनात रखते हैं। वही पेशी-जमानत-वकील अपील का हिसाब किताब रखता है। पुन्ना गुरु अपने इस कारकून राम चरन को यह काम सौंप जरूरी खर्च के लिए नोटों का बण्डल पकड़ाकर बेफ़िकर हो गए। वैसे तो थाने से लेकर कचहरी तक के सारे काम रमचरनवा को ही करना था किन्तु मैकुआ का हौसला आफ़ज़ाई के लिए पुन्ना गुरु थाने चले गए थे। दूसरे उन्हें बच्चू महाराज की ओर की पैरवी का भी अन्दाज़ लगाना था।

मैकुआ की जमानत तो सिटी मैजिस्ट्रेट की अदालत में रिजेक्ट हो गयी जैसा कि बमबम वकील ने पहले से ही जता दिया था लिहाजा वह सेण्ट्रल जेल नैनी भेज दिया गया। छुट्टी के बाद वाले दिन सेशन कोर्ट में पहली फुर्सत मे बमबम वकील ने जमानत की दरख़्वास्त पेश की। जज ने उनसे सवाल किया-

- कत्ल के केस में मैं जमानत कैसे दे सकता हूँ जबकि मुद्दालेह की मौत हो गयी। डाक्टरी रिपोर्ट में भी यह बात साफ़ है।

हुज़ूर आपकी जगह मैं होता तो मैं भी इस हालात में जमानत नामंजूर कर देता किंतु जरा गौर करें हुज़ूर कि जब मेरा मुवक्किल वाकिआ वारदात इलाहाबाद मे था ही नहीं तब वह कैसे नन्दू पहलवान का कत्ल कर सकता है। बही बताती है कि उस दिन तो वह बिलासपुर में जजमानों के घर पर था। उसका वहाँ ट्रेन से जाना भी पाया जाता है। और उसके नाम का रिजर्वेशन टिकट भी जारी था।

आगे हुज़ूर चश्मदीद गवाह के रूप मे सिर्फ बैजू तांगेवाला है जो हुज़ूर पुलिस के दबाव के बिना जी नहीं सकता। उसकी रोजी-रोटी की नकेल पुलिस के हाथो मे है। उस ग़रीब से जो कहा जायेगा वही बयान दे देगा। मुझे ताज्जुब है हुज़ूर की उन मराठी यात्रियों का क्या हुआ जिनकी आँखों के सामने कत्ल हुआ। उन्हे क्या जमीन खा गयी या आसमान निगल गया जिनका न कोई बयान दर्ज है और न केस में जिक्र है। ऐसी सूरतेहाल में हुज़ूर मैकुआ तो एकदम बेकसूर है। पण्डा की दलाली से बच्चों का पेट पालता है। हुज़ूर रोज कुआ खोदने और रोज पानी पीने वाले की हालत तो वैसे ही खराब रहती है। ऐसी हालत में हुज़ूर मैकुआ की जमानत तो होनी ही चाहिए।

जज साहब को अगले दिन से दस दिनों की छुट्टी पर बाहर जाना था। अतः उन्होंने जमानत की तारीख बढ़ा दी। बमबम वकील ने तो सोच रखा था कि वे लगे हाथ आज ही जमानत करा लेंगे। इसीलिए जोरदार तैयारी के साथ सरकारी वकील के सारे तर्कों को चूहे के पैने दाँतों की तरह अपनी हाज़िर जवाबी से कुतरते गए किन्तु जब हाकिम की हमदर्दी लेनी हो तो उसके तालमेल की ख़िलाफ़त नहीं कर सकते। वैसे भी मैकुआ कौन फाँसी पर चढ़ाया जा रहा है। है तो नैनी जेल में ही जोकि दस दिन बाद जेल से बाहर आ ही जायेगा। बाल बच्चों की देखभाल तो पुन्ना गुरु कर ही रहे हैं। जमानत में तो देर सबेर चलती है। इसके लिए ज्यादा हैरान होने की जरूरत नहीं है। इस आशय की सारी जानकारी रामचरन को देकर उसे चलता किया। और यह भी जता दिया कि पुन्न महाराज से कहना कि घर पर मिल लेंगे।

जमानत दिलाने के मामले में वकीलों का कुछ नहीं जाता वरन् आता ही है। मुँह माँगा उन्हें फीस तो मिलती ही है। साथ में शोहरत भी मिलती है। जिससे आँख मूँद कर मुवक्किल उनके पास आते हैं। कत्ल के मामले में जमानत दिलाना जरा टेढ़ी खीर होता है लेकिन जो दिला देता है समझो आधा केस तो जीत ही गया। शेष आधा केस वह गवाहों से ऐसे-ऐसे सवाल करके उन्हें अपने जाल में फँसा लेता है कि वे चूहेदानी में फंसे चूहे जैसे निरीह हो जाते हैं। फिर वे आसानी से होस्टाइल करार दिए जाते हैं। ये गुरुमंत्र हर वकील अपने ढंग से अपनाता है किन्तु भरपूर सफलता उसे मिलती है जो अपने कानूनी ज्ञान से कोई अवसर खोता नहीं और पग-पग पर अपने तरकश से तीर निकाल अचूक निशाना साधता है।

इलाहाबाद तो एक तरह से वकील-एडवोकेट लोगों की नगरी है। जिला अदालत से लेकर हाई कोर्ट तक इतने वकील मिल जायेंगे कि कुछ मत पूछो। चारों ओर काले कोटधारी काले कोटधारी ही मिलेंगे। कोई ऐसा मुहल्ला-गली, मण्डी-टोला नहीं मिलेगा जहाँ दस-पन्द्रह वकील न रहते हों। यहाँ वकील भी हर रेट-वेट के मिल जायेंगे। जैसे मीरगंज में वेश्याएं मिलती हैं। एक जगह कम उमर की कीमत सबसे ज्यादा है तो दूसरी जगह सबसे कम। एक जगह सबसे ज्यादा उमर की कीमत सबसे कम तो दूसरी जगह सबसे ज्यादा उमर की कीमत सबसे ज्यादा दी जाती है। वैसे यह कथन इस मामले एकदम सच है कि वकील और वेश्या किसी के नहीं होते जो ज्यादा पैसा दे वे उसके हो जाते हैं। इसीलिए इलाहाबाद में लोग ज्यादा पैसा फेंक कर बड़े वकील कर लेते हैं। उनके पास केसों की कमी नहीं होती जबकि छोटे वकील बेचारे मुवक्किलों की बाट जोहते बैठे रहते हैं। आमतौर से उन्हें रुपए-पैसे के लाले पड़े रहते हैं और कभी-कभी तो रिक्शेवालों को भाड़ा देना भी भारी पड़ता है। वे कचहरी से रिक्शे पर लौट कर घर में घुस जाते हैं और जब रिक्शावाला भाड़े की आवाज़ लगाता है तो वकील साहब के पिता जी या बड़े भाई को भाड़े का भुगतान करना पड़ता है। ऐसे वकीलों की दयनीय स्थिति उन्हें जब ज्यादा परेशान करती है तब वे वकालत छोड़कर कहीं नौकरी-चाकरी में अपने को झोंक-झांक देते हैं नामी-गिरामी वकील बनने का सपना अपने हाथों चकनाचूर कर देते हैं। उन वकीलो की हालत फिर भी ठीक-ठाक चलती है जिनके परिवार में अच्छा खासा व्यापार-व्यवसाय चला आ रहा है और वे पार्ट टाइम के रूप में वकालत इसलिए करते है कि उनके खुद के व्यवसाय में वकील की जरूरत रहती है। दूसरे वकालत का पेशा इलाहाबाद में जरा ऊँची नज़रों से देखा जाता है।

वह जमाना तो जैसे लद गया या इतिहास की बात हो गयी जब इलाहाबाद में दिग्गज वकीलों का जमाना था और वे हाकिम से मनचाहा फैसला करा लेते थे या यों कहें कि कानून के इतने पक्के और लगन के इतने सच्चे कि एक ही धक्के में अपराध की धाराओं की दीवार ढहा देते थे। वे एक तरह से दन्त कथाओं के रूप में कानूनी जगत में छाए थे। प्रसिद्धि की उँचाइयों को छूने वालो मे थे पण्डित मोती लाल नेहरू, तेज बहादुर सप्रू, कैलाश नाथ काटजू, मदन मोहन मालवीय, पुरुषोत्तम दास टण्डन आदि जो कोर्ट में बहस के बेताज

बादशाह थे। इनकी बहस नज़ीर बन जाती थी। कितने भी उलझे-उधड़े, बेदम बेजान केस हो ये अपनी बेबाकी से बेजोड़ बनाकर हाकिम के सामने पेश कर ऐसा फैसला करा लेते थे कि लोग दाँतों तले उंगली दबा लेते थे। इससे उन्हे बेशुमार शोहरत मिली थी। इनके पेशे के साथ कुछ ऐसी दन्त कथाएं, परी कथाए जुड गयी थीं कि लोग सहसा अविश्वास नहीं कर सकते। जैसे मोती लाल नेहरू तो ऐसे कानूनदाँ थे कि उन्होंने कानून ही बदलवा दिया था। एक बार वे एक कत्ल के केस में मुकदमा तो लड़े किन्तु मुवक्किल को फाँसी हो गयी। इसके बाद भी उन्होंने हार नहीं मानी और फाँसी वाले दिन जेल पहुँच गए। जब जल्लाद ने अपराधी को फाँसी का फंदा पहना दिया तब वे अपनी पिस्तौल तानकर खड़े हो गए कि अब फाँसी तो हो गयी इसे छोड़ दो नहीं तो मैं पिस्तौल से जल्लाद को भून दूंगा। आर्डर में कहाँ लिखा है कि जब तक अपराधी मर नही जाता तब तक लटका रखा जाय। कहते हैं तभी से फाँसी की सज़ा में लिखा जाता है कि हैंग टिल डेथ अर्थात् मरने तक लटका रखा जाय। ऐसे पानीदार-पायेदार वकीलों की कर्मभूमि थी इलाहाबाद। वह पीढ़ी यदि कानून जगत की क्रीम थी तो बाद की पीढ़ी के बमबम वकील करोनी तो जरूर हैं। कानून पर उनकी पकड़ किसी तरह कमजोर नहीं है। मैकुआ की जमानत उन्होंने सेशन कोर्ट से तो करा ही लिया था। किन्तु बावन गवाहों जो कि ज्यादातर राह चलते, दुकानदार, रिक्शा इक्का ताँगावालों के बयानों को बमबम वकील कानून की नदी मे जिरह का जौहर दिखाते हुए काई की भांति काटते तो चले गए लेकिन मैकुआ की साइकिल जो कि मुट्ठीगंज के एक साइकिल वाले की दुकान से किराये पर ली गयी थी वाक़िआ वारदात वहीं पायी गयी थी। इस बिना पर जज साहब ने मैकुआ को फाँसी की सज़ा सुना दी थी। अब बमबम वकील को फिर से हाईकोर्ट से जमानत-अपील की कार्यवाही करनी पड़ी। अपने एक साथी की मदद से हाई कोर्ट में जमानत और अपील की अर्ज़ी लगा दी। थोड़े से जोड़-तोड़ के साथ अर्ज़ी में यह भी बताया कि साइकिल मैकुआ की है ही नहीं और इलाहाबाद शहर मे एक ही मैकुआ तो नहीं है। असली अपराधी मैकुआ को पकड़ा जाय नकली को तो कतई नहीं। इस आधार पर बमबम वकील तथा उनके साथी ने मैकुआ की जमानत तो करा लिया किन्तु अपील की तारीख बड़े लम्बे से लगी। समझो एक तरह से उन्होंने किला तो फतह ही कर लिया था। अब केवल झण्डा फहराना बाकी है

इस अदावत भरी राह में पुन्ना गुरु अपने जानी दुश्मन बच्चू महाराज के रास्ते में काँटे ही काँटे बिछाते गए और बच्चू महाराज भी कम कहाँ थे वे भी तो पुन्ना गुरु के आगे कुआं और पीछे खाई खोदते गए। जिसके लिए पैसा पानी जैसा बहाते गए। पुन्ना गुरु ने कसम खा लिया था कि मैकुआ के वजन के बराबर पैसा उसे छुड़ाने में लगा देंगे तो बच्चू महाराज ने गंगा माई की सौगध खा लिया था कि मैकुआ को फाँसी के फंदे पर लटकवाने में वे उसके वजन के दूने पैसे बहा देंगे। मैकुआ के बहाने वे पुन्न गुरु को लटकवाने का मज़ा पा रहे थे। यह कोई आज की दुश्मनी थोड़ी न है यह तो सात पीढ़ी की दुश्मनी है। वैसे वे दोनों आपस में परदादा जात भाई ठहरते थे किंतु वैर भाव उन्हें शान्ति से रहने कहाँ देता था। वे तो आपस में मरने-मिटने को तैयार थे। दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे थे। इलाहाबाद के अधिकांश परिवारों में यही राम कथा चलती है। समझ मे नहीं आता और समझने जैसी कोई बात है भी नहीं कि जब वे नादान रहते है तब उनमें नेकी कूट-कूट कर भरी रहती है किन्तु जैसे बड़े हुए नहीं कि बदी की बाढ़ में बहकर बदले की आग में जलते हुए जीते हैं। मिटाने के लिए खुद मिटने को तैयार हैं। यह पुरानी आग इलाहाबाद में घर-घर जलती मिलेगी। जिससे हवा देने का काम थोड़ा बहुत वकील भी करते हैं।

मारामारी के दौर में वकीलों को भी रोजी-रोटी के लिए बहुत पापड़ बेलने पडते हैं। जब बड़े वकील बढ़िया माल हड़प जाते हैं तो छोटों के लिए सूखा मैदान ही बचता है जहाँ थोड़ी-बहुत हरियाली बचती है उसी पर उन्हें संतोष करना पड़ता है। लेकिन जब वे समझ जाते हैं कि यह मैदान अब उनके काम का नही तब वे राजनीति के मैदान में कूद कर हाथ-पैर चलाना चाहते हैं। राजनीति के मैदान में भी वाया वकालत उनके पूर्वज पहले से आते रहे हैं। वास्तव मे पूर्वजों के लिए यह मैदान एक मिशन रहा होगा पर आज तो तर माल उड़ाने का अखाड़ा हो गया है। इस अखाड़े में अपने दाँव-पेंच से जो जब तक टिका रहा तब तक वह लंगोट का सच्चा किन्तु जरा भी दाँव-पेंच में चूका नहीं कि कोई भी उसकी कांछ खोल देता है। वाकवीर, वकील इस अखाड़े में घुस कर जोरदार वर्जिश करके दाँव-पेंच में माहिर होकर गुरु ही नहीं गुरूघंटाल बन जाते है। इलाहाबाद के बहुत से वकील इन अखाड़ों में भी मिल जायेंगे।

राज बहादुर श्रीवास्तव उर्फ रज्जू बाबू वकालत के पेशे मे अपने को शेर से कम तो नहीं समझते थे। उनके पिता-बाबा भी वकालत के पेशे के ऐसे घुड सवार थे कि सबसे आगे ही नहीं चलते थे वरन् जीत में भी आगे रहते थे। उनका ही तो रक्त रज्जू बाबू की धमनियों में दौड़ रहा था। उनके पूर्वज मुट्ठीगंज के व्यस्त मुहल्ले मे रहते थे। उन लोगों में मातृभूमि का प्रेम कुछ ज्यादा ही था तभी तो उस मुहल्ले को छोड़कर पढ़े-लिखे लोगों की सम्भ्रान्त कालोनी में बंगला बनवाने का कभी मन ही नहीं बनाया था। उनके पास रुपए-पैसे की कोई कमी भी नहीं थी। सात गाँव की जमींदारी थी। चाहते तो कुछ जमीन-जायदाद बेचकर एक आलीशान बंगला सिविल लाइन्स में बनवा ही सकते थे। इसके लिए पुरखो ने न कभी मन बनाया और ना ही कोई मुराद पाली। किन्तु रज्जू बाबू ने अपना जमाना आते ही एक ही झटके में पुरानी जमीन जायदाद के लगाव को तड़ातड तोडकर सिविल लाइन्स में 'हैपी होम' नाम का सर्व सुख सम्पन्न एक बंगला बनवाकर पुरखों के जायदाद के पुरानेपन के मोह से मुँह मोड़ लिया। अब वे बगलेवाले बन गए थे जिससे उनकी जाति-बिरादरी, समाज में उनकी नाक लम्बी हो गयी थी और सिर उँचा हो गया था।

इस योजना के कार्यान्वय पर रज्जू बाबू ने कम माथा पच्ची नहीं की थी। सबसे पहले तो उनके दिमाग में फिरकी की तरह यह बात घूमने लगी कि एक जगल में एक ही शेर रहना चाहिए। अन्यथा ताक़त अजमाइशी के लिए आपसी लड़ाई-झगड़ा, तना-तनी जरूरी हो जाता है। वे कानून के जंगल के शेर थे तो बमबम वकील सवा शेर थे। हालांकि खून, डकैती, फौजदारी के मुकदमो मे उनकी दिलचस्पी कुछ ज्यादा ही थी जिससे उन्होंने पैसा और नाम दोनों हाथो खूब बटोरा। लेकिन उतना नहीं जितना बमबम वकील की तूती पुराने इलाहाबाद मे बोलती थी। यद्यपि रुपए-पैसे के मामले में वे उनसे काफी आगे थे किन्तु शोहरत के मामले में वे उनसे बहुत पीछे थे। यह रज्जू बाबू का मन बारम्बार कहता था। इसी अन्तर्आत्मा की आवाज़ के दम पर नाते-रिश्तेदारों की एक न मानते हुए वे 'हैपी होम' नामक बंगले में चले गए।

यह बंगला सचमुच कुछ दिनों में ही नामी-गिरामी बंगला हो गया। मुवक्किलों-पैरवीकारों की भीड़ बढ़ने लगी। उनके बंगले में अब सुबह से देर रात तक लोगों का ताँता बना रहता था। वकील साहब सबेरे जब सोते रहते तभी से

बाहर के मुवक्किल आ धमकते थे। बाहर एक कमरा सण्डास उनके बैठने-उठने नहाने-धोने के लिए खुला रहता था। जहां वे निवृत्त होकर बरामदे में बैठे-बैठे पेपर पढ़ते वकील साहब का अन्दर से आने का इन्तज़ार करते रहते। आस-पास के बंगले वाले कह भी देते थे कि आजकल आपके यहां बड़ी भीड़ रहती है पर वे मुस्कुरा कर बात टाल जाते थे। अब उनके बंगले पर दो-तीन मुंशी और चार-पाँच असिस्टेण्ट वकील भी आते थे जिससे साफ पता चलता था कि रज्जू बाबू की रोलिंग प्रैक्टिस है। सिविल लाइन्स के इलाके में वे अब अपने को ढाई शेर मानने लगे थे। उनका मन उनसे बतियाते हुए कहता कि रज्जू बाबू तुमने मुट्ठीगंज छोड़कर बहुत अच्छा किया। अब तुम्हारी गिनती बड़े वकीलों में होने लगी है। फीस भी बढ़ गयी नाम भी बढ़ गया और चाहिए ही क्या।

किन्तु उनके बूढ़े-बीमार पिता जी को यह सब रास नहीं आ रहा था। उन्हें तो रह-रहकर अपना पुराना मुट्ठीगंज याद आता था। जहां उन्होंने पैसा तो कम किन्तु प्यार खूब कमाया था। हर तीज-त्यौहार पर सौ-पचास की भीड़ उनके घर-द्वार पर लगना तो आम बात थी। होली-दीवाली पर लोगों की जमघट उन्हें खूब याद दिलाती थी और रुलाती भी थी कि लोग दिल खोलकर उठते-बैठते, गाते-बजाते, नाचते-उड़दंग करते थे। वकील साहब के पिता की बूढ़ी आँखों में वे दिन तैरते-तैरते डूबने लगते थे। के रुआंसे होकर इधर-उधर देखने लगते थे। घर बड़ा हो गया, सुख-साधनों, सम्पत्ति-समृद्धि में बढ़ती जरूर हुई किन्तु अड़ोसियों-पड़ोसियों के दिल-दिमाग में तंगी भी देखी। वे किसी से मिलते-जुलते नहीं। जैसे पहचानते ही नहीं या मेल-जोल से परहेज करते हैं। कोई किसी के घर नहीं आता-जाता। बंगले-रोड पर ठहलते मिल गए तो बड़े दबाव में नमस्कार कर लिया। किसके कितने बाल-बच्चें हैं। वे क्या पढ़ रहे, कहां नौकरी-चाकरी कर रहे हैं, अता-पता नहीं। न तो कोई पहचान कराता है और ना कोई किसी को पहचानता ही है। यहां अजब ढर्रा है। वहां तो लोग पूरे मुहल्ले को उनकी सात पुश्तों तक के नाम-धाम काम-काज सहित जानते थे। कैसी तो बंगलों वालों की ज़िन्दगी है। किसी के घर में कोई भी दुःख-सुख हो जाय कोई पुरसाँहाल नहीं। होली-दीवाली-दशहरा, ईद-बकरीद अपने घर में मना लिया बस छुट्टी। कैसी अकेली एकांगी ज़िन्दगी जीते हैं बंगले वाले। इससे तो दम घुटता है। और

सचमुच में वे इस वातावरण में अपना दम घुटता सा अनुभव करते। पर किसी से कह भी तो नहीं सकते थे। उनकी सुनने वाला वहाँ था ही कौन।

सुराख हुए जलयान की तरह रज्जू बाबू के बूढ़े पिता का मन डूबने लगा तो डूबता ही चला गया। वे उदासी के भंवर जाल में चक्कर पर चक्कर खाने लगे। कहते हैं कि बचपन की स्मृतियाँ बुढ़ापे में ज्यादा याद आती हैं। एक तरह से उनकी सारी याददाश्त कपूर की तरह उड़ गयी थी किन्तु बचपन के पुराने मुट्ठीगंज मुहल्ले की याद हींग की तरह उनके दिमाग में बसी थी जिससे वे बडबड़ाते-बड़बड़ाते उनकी याद करते। बेटे रज्जू और बहू रंजो से कहते- मुझे मुट्ठीगंज ले चलो। मैं वहीं अपने पुराने मकान में मरना चाहता हूँ। यहां रहते हुए दिल बैठा जा रहा है। पर वहाँ उनकी सुनने वाला कौन था। पिंजरा तो पहले ही टूट-फूट चुका था अब प्राण-पक्षी इधर-उधर भटक रहा था लम्बी उड़ान भरने के लिए।

वह भी समय आया जब रज्जू बाबू के पिता जी ज्यादा सदमा नहीं झेल पाए और ह्रदयाघात के एक ही झटके में चलता बने। आस-पास के बंगलो मे खबर तो पहुंचायी गयी किन्तु इक्का-दुक्का लोगों ने आने का साहस किया। लेकिन मुट्ठीगंज में जब यह खबर पहुंची तो सभी ने अपनी दुकान-दौरी बन्द की, बगल में गमछा-तौलिया-धोती दबाए पैदल इक्के, साइकिल पर रज्जू बाबू के बंगले सिविल लाइन्स पहुंच गए। यह हजूम कोई सौ-पचास का नहीं वरन् हजारों का था। सभी के हाथों में फूल-हार-माला की पुड़िया थी जिससे रज्जू बाबू के पिताश्री के प्रति उनका अगाध प्रेम झलक रहा था। सभी शुरू से लेकर अन्त तक साथ रहे और 'राम नाम सत्त है' कि सत्यता की पुष्टि करते जा रहे थे। सभी एक शब्द में बयान कर रहे थे कि वकील साहब के पिता को बंगला रास नही आया था। वे तो अपने पुराने घर में ही सुखी थे। उनकी सुनने वाला कोई नही था। बेचारे बंगले में जाकर मुरझा गए थे। बिना खाद-पानी के आखिर कब तक रहते.....।

तेरही के बाद रज्जू बाबू जब कुछ सामान्य हो गए तो अपने दैनिक कार्यो से बंगले के बाहर निकलने लगे। उनका निकलना भी जरूरी था। आस-पास के कुछ लोगों ने सामना होने पर पूछ लिया-आजकल आप दिखते नहीं, कहीं बाहर

गए थे क्या, मुझे तो पता ही नहीं चला..... क्या बीमार थे..... मुझे तो पेपर से पता चला था.... मृतात्मा के लिए खेद व्यक्त करता हूँ.... भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे...। इसी प्रकार कोर्ट में भी कई वकीलों ने अपने-अपने भाव व्यक्त किए। लेकिन बमबम वकील दो बार आए और सबके बीच बेहिचक कहा था कि वे तो मेरे गुरु थे। वकालत मैंने उनसे सीखी थी।

रज्जू बाबू पिता के श्राद्ध कार्य से अभी उबरे ही थे कि बच्चू पण्डा उनके आफिस में हाज़िर हुए और उनके पिता से अन्तरंग संबंध और रज्जू बाबू की लोकप्रियता के कारण बमबम वकील के विरुद्ध अपना वकील मुक़र्रर करने का खुलासा किया। फीस के पैसे तय करने के बाद उन्होंने मुकदमे की मिसिल मांगी जिसे बच्चू पण्डा अपने साथ ले गए थे। उनके हाथों में सौंप दिया। पेशगी फीस देने पर मुकदमे की तारीख के एक दिन पहले शाम को रज्जू बाबू ने उन्हें बंगले पर बुलाया। बच्चू पण्डा विचारों में डूब गए कि अब यह भिड़न्त जोरदार होगी। लोगों को दो सांड़ों के लड़ने का मज़ा आयेगा। इजलास बहस-मुबाहसा सुनने के लिए खचाखच भर जायेगी। इसमें तो कोई शक़ नहीं। बहुत दिनों बाद बमबम वकील के सामने ऐसा मौका आयेगा। उन्हें अब तो पसीना छूटे बिना नहीं रहेगा। मैं भी क़ौल करता हूं कि बमबम वकील को दांतों पसीना न लाया तो कुछ भी नही किया।

इस मुकदमे की कानूनी कमजोरी समझते हुए राज बहादुर श्रीवास्तव उर्फ रज्जू बाबू दो बार तारीख बढ़वा चुके थे जिसे इशारे से समझा जा सकता है कि ऊँट किस करवट बैठेगा। उन्हें तो हर पेशी के मुँह माँगे पैसे मिल रहे थे। इसलिए सबसे कमजोर प्वाइण्ट को सबसे जोरदार ढंग से बोल रहे थे। आख़िर उन्हे भी तो पेशे की पेशवाई करनी थी और आम जनता को दिखाना था कि वकील साहब पसीना-पसीना होकर खूब लड़े जैसे मुर्गों की लड़ाई में मुर्गे जी जान से लड़ते हैं। भले इसे नूरा कुश्ती मानें या न मानें पर दाँव-पेंच तो दिखाना पडता है। आखिर बच्चू पण्डा के आदमी का क़तल तो हो ही गया था रज्जू बाबू को मुकदमा तो लड़ना ही था और मुकदमे में अपना पैतरा बलाना जरूरी था।

लेकिन जो दो नावों पर पैर नहीं रखना चाहते उन्हें वकालत में ही मज़ा आता है। वे अपने बने-बनाये मैदान को छोड़ना ही नहीं चाहते। बमबम वकील

ने भी अपने मैदान को कभी छोड़ने का इरादा नहीं किया। इसीलिए वे अपने मैदान के मालिक हैं। न्याय के मन्दिर के महंत हैं। मठ के मठाधीश हैं। बमबम वकील ने अपील की तारीख पर ऐसी जोरदार तैयारी की कि सरकारी वकील और रज्जू बाबू के छक्के छुड़ा दिए। जब साँस लेने के लिए वे चुप होते तो उनका साथी फर्राटे से बोलता जाता और जब वह चुप होता तो बमबम वकील अपनी गोली दाग़ने लगते। जब गोली से काम चलते नहीं देखा तब तो गोला ही दाग़ते गए। इससे सरकारी वकील बुरी तरह घायल होकर ढेर हो गया। अन्ततः जज साहब को शान्ति स्थापना के लिए अपना सफेद रुमाल दिखाना ही पड़ा। बमबम वकील मुकदमा जीत गए और मैकुआ को बेदाग़ छुड़ा ही लिया।

# बारह

जब किसी को पृष्ठभूमि चबूतरे जैसा बना बनाया मिल जाय या गद्दे जैसा बिछा-बिछाया मिल जाय तो सिर्फ बैठना या लेटना भर शेष रहता है। जो मर मिट कर अपनी पृष्ठभूमि बनाने में अपने को होम करते हैं वे तो प्राय आहुतियों की तरह यज्ञ कुण्ड में भस्म हो जाते हैं लेकिन कृष्णदास को तो विश्वविद्यालय चुनाव का ऐसा चबूतरा मिला कि उसे सिर्फ खड़े होने की जरूरत थी। बाकी घटनाएं तो उसके पक्ष में अपने आप ही हो जानी थी। साथियों ने सारी कार्यवाही पूरी कर कृष्णदास को यूनियन प्रेसीडेण्ट का होनहार हीरो बना कर खड़ा कर दिया। ऐसे वज़नदार हीरो के सामने कौन खड़ा होकर अपनी फ़ज़ीहत कराता किन्तु जनतांत्रिक पद्धति में किसी का निर्विरोध चुना जाना स्वस्थ परम्परा नहीं माना जाता। जननेता को तो जनता के बीच से छन कर छंटकर ही आना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कृष्णदास के विरोध मे चार और उम्मीदवार मैदान में उतारे गए या यों कहें कि राजनीतिक दलों के समर्थन से विश्वविद्यालय चुनाव में वे झोंके गए। सारी प्रमुख पार्टियां अपनी ताकत दिखाने के लिए मैदान में कूद पड़ीं। कृष्णदास के पास अपने बल के साथ-साथ रूलिंग पार्टी कांग्रेस का दल था जिसने इस चुनाव को भी विधानसभा, लोकसभा के तर्ज़ पर तेरा।

चुनाव के पहले से ही लोगों को मालूम हो गया था कि ऊँट किस करवट बैठेगा। बल्कि यहाँ तो यह तय हो गया था कि जिस करवट उसे बैठायेंगे उसी करवट बैठेगा नहीं तो पीट-पीट कर उसका कूबड़ तोड़ नहीं दिया जायगा। ऐसी हालत तो आज जनतंत्र की बन गयी है। विद्यार्थी जीवन में ही बच्चों को पक्का कर दिया जाता है कि ऊंट के मुँह में जीरा जैसा ही जनतंत्र को जानो। बाकी तो

इसके साथ साथ दूसरे तत्र चलते है. जहा भारी भरकम वज़न हो वहा हल्के का हवा में उड़ना तो तय है। यूनियन के चुनाव में हुआ भी यही कि कृष्णदास के अलावा सारे उम्मीदवार चारों दिशाओं में औंधे गिरे। किसी का हाथ टूटा, किसी का पैर टूटा, किसी का सिर फूटा तो किसी की कमर सदा के लिए ऐसी टूटी कि कभी उठ भी नहीं पायेगा। कृष्णदास ने रिकार्ड मतों से जीत दर्ज करायी। इतना ही नहीं विश्वविद्यालय में यूनियन स्थापना से लेकर अब तक सबसे ज्यादा वोटों से जीत कर सारे रिकार्ड तोड़ डाले। उनकी लोकप्रियता का ग्राफ इतना ऊँचा उठा जितना पहले किसी का नहीं बढ़ा था।

कृष्णदास ने चुनाव जीतने के बाद विद्यार्थियों के कल्याण के लिए व्यापक ब्यूह रचना किया। एक ओर विद्यार्थियों के पठन-पाठन के लिए ढेरों सुविधाओ का विस्तार दूसरे इलाहाबाद नगर के आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले विद्यार्थियों के लिए कन्सेशन पास, तीसरे सिविल सेवाओं में जाने वाले योग्य विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क कोचिंग, चौथे शिक्षण संस्थाओं में पुलिस प्रशासन का कोई हस्ताक्षेप नहीं, पांचवे विद्यार्थियों के मनोरंजन में कन्सेशन और छठे बढी फीस में कटौती। विश्वविद्यालय प्रशासन तथा वाइस चांसलर ने पहले ही झटके में यूनियन की पाँच माँगें तो मान ली किन्तु फीस वृद्धि की माँग को यह कह कर लटका दिया कि महंगी शिक्षा पद्धति में कटौती करने में हम असमर्थ हैं। हमारा बजट वैसे ही पहले से आर्थिक दबावों के कारण असंतुलित है। इसे और अधिक असंतुलित नहीं किया जा सकता।

अब क्या था एक ज्वलन्त मुद्दा मिल गया यूनियन को। पहले तो वार्ताओं का दौर चला किंतु जब सारी वार्ताएं भंग हो गयीं तो यूनियन ने अंतिम अस्त्र के रूप में यूनियन प्रेसीडेण्ट द्वारा भूख हड़ताल की धमकी दी गयी। यह सिर्फ धमकी भर नहीं था वरन् आगामी सोमवार से यूनियन हाल में कृष्णदास भूख हड़ताल पर बैठ गए। अब यूनियन हाल में हलचल बढ़ गयी। रोज-रोज भाषण, कृष्णदास के स्वास्थ्य में गिरावट की सूचना ब्लैक बोर्ड पर लिखी जाने लगी। मामला ठण्डा होने के बजाय जब गरम ही होता गया तब यूनियन ने कक्षाओं का बहिष्कार किया। इसके बाद तो हड़ताल हो गयी। विद्यार्थी अपनी

माँग पर अड़ गए तो विश्वविद्यालय प्रशासन भी डट गया। इस गुत्थी को सुलझाने के लिए इलाहाबाद के नेताओं ने हाथ लगाया तो राजनीतिक कहाँ चुप बैठते। उनके बयान-वक्तव्य पक्ष-विपक्ष में जारी होने लगे। मामला जब राजनीतिक दल का बन जाता है तो वहाँ दलदल होना जरूरी है फिर दलदल से फिसलन भी तो बढ़ती है। आख़िर बेमुद्दत हड़ताल कब तक चलती। उसकी कोई न कोई मियाद मुद्दत तो होनी ही चाहिए। राजनीतिक दबावों के कारण विश्वविद्यालय प्रशासन फिसल गया और अपने हाथ-पांव टूटने से बचाते हुए विद्यार्थियों की माँग करीब एक माह की हड़ताल के बाद अन्ततः मान ही लिया। इलाहाबाद के विद्यार्थी जगत में इस जीत का जोरदार जश्न मनाया गया। विद्यार्थियों के हौसले बुलन्द हो गए और वे आसमान छूने लगे। कृष्णदास तो विद्यार्थियों के बीच बेताज के बादशाह ही बन गए।

शिक्षा जगत में स्कूल-कालेज-विश्वविद्यालय सिर्फ समझदार जीव ही नही बनाते वरन् जीवों को जानदार-शानदार, धारदार-मारदार भी बनाते है। इनकी संख्या कम होती है तभी तो ये शेष जीव-जंतुओं को अपनी आवाज़ के दम पर उन्हें हांकते-हुंकारते हैं। जनतंत्र ने उन्हें इस मौके का मालिकाना हक दिया है। जिसमें चुनाव एक चमत्कार है जो जनता के सिर पर जादू की तरह चढ कर असर डालता है। उत्तर प्रदेश में पांचवी विधानसभा के साधारण निर्वाचन का अवसर आया। सारे राजनैतिक दल जो जम्हाई ले रहे थे, ऊंघ रहे थे, सो रहे थे, खर्राटे भर रहे थे चुनाव की घड़ी की घण्टी बजते ही जग गए, उठ बैठे और तैयारी में जुट गए। कांग्रेस पार्टी पर जबर्दस्त दबाव पड़ा कि कृष्णदास को किसी भी तरह से न छोड़ा जाय। उनकी प्रतिभा प्रखरता का कांग्रेस पार्टी में भरपूर उपयोग किया जाय। उन्हें इलाहाबाद उत्तर की सीट का तुरत आफर दिया जाय अन्यथा दूसरी पार्टियां निगल जायेंगी, हज़म कर लेगी। प्रदेश अध्यक्ष ने तुरत-फुरत कृष्णदास से सम्पर्क कर उन्हें चुनाव लड़ने के लिए राजी किया। दक्षिण क्षेत्र से लड़ाना इसलिए ठीक नहीं समझा गया कि गप्पी गुरु की जीत तो वहाँ पक्की है। उस क्षेत्र से कमजोर उम्मीदवार ही ठीक रहेगा। जिसके हारने पर कोई ज्यादा नुकसान होना नहीं है।

कृष्णदास का जन्म भी मुट्ठीगंज में हुआ था अतः जनाधार भी व्यापक था। चुनाव की तैयारी में उनके साथी-संगी, जात-बिरादरी, नाते-रिश्तेदार, पित बमबम वकील का मुवक्किल समाज सभी एक साथ जुट गया चुनावी लड़ाई मे। हो सकता है कि पूर्व में चुनाव खेल भाव से हार-जीत की परवाह किए बिना सम्पन्न होता था। बाद में तो खेल भावना मर गयी और उसकी जगह ले लिया लड़ाई दंगा। जैसे कलह-कल्मष-कलुष भाव से मुकदमा लड़ा जाता है। उसी भाव भंगिमा से अब चुनाव लड़ा जाता है। इस लड़ाई में सभी प्रकार के हथियारों का खुलकर उपयोग किया जाता है। कुश्ती का जमाना गया उससे सुस्ती कहाँ जाती है। अब तो लड़ाई शुरू होती है तो उसके कई-कई मोर्चे खोलने पड़ते हैं। कहीं अस्त्र-शस्त्र का इस्तेमाल होता है। तो कहीं साम-दाम-दण्ड-भेद नीतियों का प्रयोग किया जाता है। कृष्णदास के चुनाव में सबका एक व्यापक उपयोग किया गया। रोज-रोज मुहल्ले-मुहल्ले, मण्डी-मण्डी चुनाव प्रचार, भाषण, जुलूस, रैली, नारे बाजी, पोस्टर, बैनर, पम्पलेट से क्षेत्र की दीवारें पाट दी गयीं। माहौल ऐसा बना कि कभी देखने में नहीं आया था। नौजवान लड़के तू-तू मैं-मैं के तकरार से तरोताज़ा तरबतर हो रहे थे। वही इलाहाबादी अवाजा-तवाजा-बहुत टिल-टिल मत कर बे, मुँह तोड़ देब, सारउ हाथ-पैर तोड़ के जेबे में धर देब, चुनाव बाद तोसे निपट लेब, अबहिन हमार मुँह बन्द रखा गवा है, सरउ पचास जूता भिगोय-भिगोय के मारब अउर गिनब एक, निपटै के मन होय तो आइजा मैदान में .... आदि लटके - झटके महीनो तक हवा में गूंजते रहे।

गर्मी-सर्दी, सीत-बतास के बीच जैसे-तैसे चुनाव बीत गया। कृष्णदास चुनाव में अपने प्रतिद्वंद्वियों को लगभग सवा लाख मतों से हराया था। इतना ही नही उन्होंने सभी की जमानतें भी जब्त करा दी थी। वे इलाहाबाद के उगते सूरज सिद्ध हो रहे थे। जब प्रदेश में सरकार बनाने की बात चली तो हाई कमाण्ड के निर्देश पर कृष्णदास का नाम सबसे ऊपर था। वे सबसे युवा और लोकप्रिय नेता थे। अतः विधायक दल के नेता आसानी से चुन लिए गए। सारा खेल लखनऊ में खेला जा रहा था। इसलिए लखनऊ में ही तय किया गया कि

मुख्यमत्री  कृष्णदास ही होंगे। यह बड़े गौरव की बात थी कि चुनाव ने इलाहाबाद को सुर्ख़ियों में ला दिया। पता नहीं उन दिनों गनीज़ बुक आफ रिकार्ड में नाम दर्ज कराने का चलन था या नहीं। यदि रहा भी होगा तो इलाहाबादी जानते ही नहीं रहे होंगे। नहीं तो उचक-उछल कर कहते-लिखो देश का प्रधान मंत्री इलाहाबादी है और प्रदेश का मुख्यमंत्री इलाहाबादी है। कोई ऐसा शहर इलाहाबाद के बराबर वज़न में है भी....।

मुख्यमंत्री बनने के बाद कृष्णदास जी सरकार चलाने में ऐसे लीन हो गए कि ज्यादातर समय वे बाहर फिर बचे समय में लखनऊ रहते। अब उनके सामने पूरा प्रदेश था जहाँ इलाहाबाद बहुत छोटा लगता। जैसे हवाई जहाज से देखने पर नीले आकाश के अलावा शहरों की हल्की सी झलक तो मिल जाती है किन्तु मोहल्ले-मण्डी, सड़कें गलियां कहीं गुम सी जाती हैं। उसी प्रकार कृष्णदास जी के सामने इलाहाबाद गुम गया। वे शासकीय कार्यों की प्राथमिकताओ मे इतने उलझ गए कि पद ग्रहण के बाद इलाहाबाद लौट ही नहीं पाए। लोग इसके तरह तरह के अर्थ-अनर्थ निकालने लगे। उनकी स्थिति सचमुच उसी प्रकार की हो गयी जैसे भगवान कृष्ण द्वारिका के राज-काज में गोप-गोपियो, गायों, यमुना नदी, करील कुंजों के बीच लौटना भूल गए थे। लेकिन आम जनता के पास  जो तराजू है उसी में तौल लिया कि अब कृष्णदास जी हमारे नहीं हैं। हमारे सुख-दुःख के साथी तो हो ही नहीं सकते।

वैसे इलाहाबाद को गुमान-गर्व है कि उसने ही देश को सबसे ज्यादा प्रधानमंत्री दिए हैं और मुख्यमंत्री देने में भी कोताही नहीं की। देश में यदि उत्तर प्रदेश के हाथ नकेल रहती है तो लगाम इलाहाबादियों के ही हाथों में होती है। देश के राजनीतिक जीवन का प्राण यदि उत्तर प्रदेश में बसा है तो प्राणवायु देने वाले इलाहाबादी हैं। ऐसी हालत में इलाहाबादियों को दर-किनार तो किया ही नहीं जा सकता।

किन्तु घायल की गति सचमुच घायल ही समझ सकता है। उन्हें कितने शर संधान तो नित्य प्रति अपने ही लोगों द्वारा पितामह भीष्म जैसा झेलना पडता है। विपक्षियों की तो मार-काट चलती ही रहती है। अपने-परायों सभी के

वार झेलते हुए जिह्वा की तरह जीवित रहना राजनीति का खेल है। इसके बाद शासन चलाना और जनहित के कार्य करना-कराना दुधारी तलवार पर चलने जैसा है। इन सबके बाद कितना समय मिलता है यह तो उनके जैसा आहत व्यक्ति ही बता सकता है। कृष्णदास के वश में होता तो समय की कमी को दो-चार दिनों को एक दिन में बदल कर सारे पेंडिंग काम निपटा देते। पर ऐसा उनके हाथ में है कहाँ जो कुछ कर पाते। पार्टी के काम, परिचितों के काम, परिजनों के काम को निपटाते-निपटाते कब सुबह से शाम हुई और कब शाम से रात और रात से सुबह हुई उन्हें कुछ भी पता न चलता। इसी का नाम तो जगत-जंजाल है। जो इसमें उलझ-सदा के लिए उलझा।

इलाहाबादियों को लगा कि हमारे ही आदमी हमसे कितने दूर। चाहे वे दिल्ली में बैठे हों, चाहे लखनऊ में। हमारे लिए तो दूर ही बसे हैं। इस दूरी को मिटाने का बस एक ही तरीका है कोई न कोई आयोजन, समारोह, सम्मेलन प्रादेशिक स्तर पर किया जाय तो उसमें मुख्यमंत्री जी का आना अपरिहार्य हो जायगा। फिर तो विवशता में उन्हें आना ही पड़ेगा। अपने ही बिछाये गए जाल कैसे काल बन जाते हैं इसकी बेबसी तो वही बता सकता है जो फँसा हुआ लोगों के दिल के फफोले फोड़ता फड़फड़ाता देखता है या जाल में जकड़े पक्षी की पक्षहीनता जैसी निरीहता की निषंगता मात्र शेष है। इस मनोदशा की पीड़ा बडी दारुण होती है जिससे कोई भी दग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। लेकिन जिसने इसे अपने जीवन का अंग मान लिया हो वह भंग नहीं हो सकता। वह तटस्थ भाव से सारी क्रिया-प्रतिक्रिया देखता रहता है।

इलाहाबाद के बुद्धिजीवियों - साहित्यकारों, वकीलों, पत्रकारों, प्रोफेसरो आदि विद्वानों ने मिलकर स्थानीय नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, समाज सेवियों की एक समिति का गठन किया जिसने निर्णय लिया कि सन् 1857 का शताब्दी वर्ष 1957 में धूमधाम से सम्पन्न किया जाय। जिसके लिए क्रांति के सौ वर्ष पर व्यापक विचार-विमर्श, विद्वानों के भाषण, आलेख, स्मारिका का प्रकाशन किया जाय। साथ ही चौक स्थित नीम के पेड़ पर एक काव्य संध्या का आयोजन हो जिसमें देश भर के प्रतिष्ठित कवियों द्वारा काव्य पाठ भी किया

जाय जिसे नीम के पेड़ को समर्पित पुस्तक प्रकाशित हो। इस अवसर पर हिन्दी साहित्य के महाप्राण निर्लिप्त जी को 'नीम के आँसू' पुस्तक के लिए राष्ट्रीय सम्मान दिया जाय। इस अवसर पर इससे अधिक उपयुक्त व्यक्ति इलाहाबाद मे और कौन मिलेगा जिसने अट्ठारह सौ सत्तावन की जनक्रांति को काव्यात्मक शैली में अपने ह्रदय के खौलते लहू से लिखा है जो वास्तव में आज की पीढी के लिए स्वतंत्रता की बलिवेदी पर प्राणोत्सर्ग का आह्वान है, तो दासता की बेडियों को तोड़ने वाले शहीदों की, स्मृति में विनम्र श्रद्धांजलि भी है। ऐसे अवसर पर निर्लिप्त जी को राष्ट्रीय सम्मान के साथ-साथ जन सहयोग से एकत्र या शासन द्वारा एक लाख की सम्मान निधि भी भेंट की जाय जो कि उनके सृजनशीलता तथा व्यक्तित्व का सम्मान कहा जायेगा। इससे बढ़िया सुखद सयोग और ऐतिहासिक दिग्दर्शन का अनुकूल अवसर और कब मिल सकता है।

सर्वदलीय समिति द्वारा सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत कर पॉच समितियों के गठन द्वारा क्रांति दिवस के आयोजन का निर्णय लिया गया। सारे राजनीतिक दल के नेताओं द्वारा एक मंच पर एक स्वर में एक ही विचार व्यक्त करना अनूठा तो है किन्तु कौन ऐसा राजनीतिक दल होगा जो अट्ठारह सौ सत्तावन की दासता के विरोध में जगायी अलख और स्वतन्त्रता के लिए किए गए बलिदान को नकार सकता है। इस भावभूमि के स्वागत में सभी दलों को स्वर में स्वर, हुंकार में हुंकार और उत्सर्ग में आत्मोत्सर्ग करना समीचीन लगा। सभी ने एक तन-मन से इस आयोजन को आत्मसात कर लिया और इसकी सफलता के स्वप्न संजोने लगे। तन-मन-धन से सभी ने इसमें सक्रिय सहयोग देने की शपथ ली।

समितियाँ अपनी शक्ति-सामर्थ्य और सुनियोजन के अनुसार कार्य करने मे जुट गयीं जिससे सुखद परिणाम स्पष्ट दीखने लगे। दो दिवसीय आयोजन की रूपरेखा में प्रथम दिवस चौक स्थित नीम के पेड़ तले अट्ठारह सौ सत्तावन के शहीदों की स्मृति में स्मारिका विमोचन, स्वतन्त्रता सेनानियों का सम्मान तथा निर्लिप्त जी के 'नीम के आँसू' नामक खण्ड काव्य पर उनका राष्ट्रीय सम्मान तथा दूसरे दिन प्रयाग संगीत समिति हाल में विद्वानों, इतिहास वेत्ताओं के

खोजपूर्ण लेखों का वाचन एवं रात्रि में नीम के पेड़ के नीचे वृहत कवि सम्मेलन सबधी निमंत्रण पत्र वितरित किए गए। समाचारपत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इस आयोजन का विस्तृत प्रचार-प्रसार भी किया गया तथा जन सामान्य की सूचना के लिए रिक्शों पर लाउड स्पीकर द्वारा धुआंधार प्रचार किया गया। इस आयोजन की अध्यक्षता इलाहाबाद के लाड़ले मुख्य मंत्री कृष्णदास जी कर रहे है। अतः लोगों का उत्साह हिलोरें ले रहा था। आम जनता के साथ-साथ व्यापारी-व्यवसायी, उद्योगपति, उद्यमी बढ़-चढ़ कर इस आयोजन में दान-दक्षिणा, चन्दा दे रहे थे। इस क्रांति दिवस समारोह को सभी भव्यता प्रदान करने को उत्सुक थे।

नियत दिनांक को मुख्यमंत्री श्री कृष्णदास पुनीत प्रयाग में पधार कर सिहावलोकन करने लगे कि इसी भूमि ने उन्हें कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया और कितने सारे लोग उनके अनुगामी हो कर सहचर हो गए या मैदान ही छोड़कर पलायन कर गए। वास्तव में जैसा कथन है कि वन में तो एक ही वनराज रहता है यह कितना सत्य है कि शक्ति के सहारे ही तो सिंह सिंहनाद करता है जिससे सभी भयभीत होकर भाग जाते हैं। राजनीति भी तो एक सघन वन है जिसमे वन का राज्य चलता है। सतर्क और शक्ति सम्पन्न ही रह सकता है। अन्यथा एक दूसरे का ग्रास बनना सहज है। मत्स्य न्याय का भी यही नियम है कि शक्तिशाली शक्तिहीन को निगल जाता है। कितने लोग एक-दूसरे को निगलने की ताक में बैठे हैं। इसी आयोजन का कुछ लोग राजनीतिकरण कर रहे हैं किन्तु ऐसा होने नहीं दिया जायगा। वे लोग कितने महान थे और उनकी भावनाएँ कितनी महान थी जिन्होंने विदेशी सरकार की ईंट से ईंट बजाकर फाँसी के फदे पर झूल गए थे।

ज्यों ही मुख्यमंत्री श्री कृष्णदास जी नीम के वृक्ष के निकट मंच पर पहुँचने लगे तभी उनका सिर नीम को देखकर श्रद्धा से झुक गया। सहस्त्रों दृश्य उनकी आँखों के सम्मुख घूम गया। जब वे बचपन से इस वृक्ष को देखते आए हैं। जगह-जगह उसमें मानव आकार के पुतले लटकाए गए थे। जैसा कि अट्ठारह सौ सत्तावन में इसी वृक्ष पर आठ सौ से अधिक लोगों को जीवित

लटका दिया गया था। कितना भयावह वह दृश्य रहा होगा जिसकी कल्पना मात्र से आज भी आत्मा थरथरा जाती है। वास्तव में ब्रिटिश सरकार कितनी दुर्दान्त थी। इसी क्षणिक भाव से कृष्णा दास सिहर गए थे। किन्तु आगामी कार्यवाही की माइक पर अनुगूंज ने उन्हें सम्भाल लिया। वे सामान्य हो गए।

कार्यक्रम के अनुसार सर्व प्रथम सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण, दीप प्रज्वलन के पश्चात सरस्वती वन्दना सम्पन्न हुई। तदोपरातन्त विशिष्ट व्यक्तियो द्वारा मुख्यमंत्री जी का फूलहार से स्वागत सम्मान किया गया। इसके पश्चात इस अवसर के लिए तैयार की गयी स्मारिका के विमोचन का अवसर आया। यह कार्यक्रम भी बड़ी भव्यता और भावना के साथ सम्पन्न हुआ। ईसके पश्चात 'नीम के आँसू' खण्ड काव्य के रचयिता निर्लिप्त जी के राष्ट्रीय सम्मान का अवसर आया। फोटो ग्राफर, प्रेस कैमरा मैन, दूरदर्शन के प्रतिनिधि अपने-अपने कैमरे सम्भाल कर खड़े हो गए और उस भाव पूर्ण क्षण को कैमरों में क़ैद करने को उत्सुक हो गए जब मुख्यमंत्री द्वारा निर्लिप्त जी का शाल-श्रीफल से स्वागत किया जाएगा और उन्हें सम्मान निधि के रूप में एक लाख की थैली भेंट की जायगी। उस क्षण की बड़ी अधीरता से सभी को प्रतीक्षा थी।

वह क्षण आ ही गया जब निर्लिप्त जी को मंच पर सम्मान के लिए दो स्वयं सेवकों द्वारा लाया गया। मंच पर लगे माइक से उनके प्रशस्ति वाचन मे उन्हें विशेषणों से, सर्वनाम से साज्जित किया जाने लगा। मुख्यमंत्री जी ने सर्वप्रथम उन्हें एक बड़ा सा एवं भारी भरकम हार पहना दिया। तत्पश्चात उनके पी ए. तथा पी.आर.ओ. द्वारा तैयार 'नीम के आँसू' खण्ड काव्य की महिमा मे गुणगान प्रारम्भ किया जिससे स्पष्ट झलक रहा था कि उनकी बुद्धि तो नही वरन् अनेक छोटी-बड़ी बुद्धियों का बवण्डर प्रस्तुत था। बुद्धिजीवियों ने इसे सहजता से झेल लिया। इसके पश्चात का दृश्य तो अनुपम रूप लेकर साकार हो गया।

ज्यों ही मुख्यमंत्री जी ने शाल की तहें खोलकर निर्लिप्त जी को सम्मानपूर्वक ओढ़ाने का यत्न करने लगे तो तुरंत ही निर्लिप्त जी वर्जना भाव से अस्वीकार करते हुए माइक सम्भाल लिया और अपनी अदा की अदायगी दिखाने लगे -

भाइयों! आज के सम्मान के लिए मैं सभी को बधाई देता हूँ कि आपने इस 'नीम के आँसू' के भाव तो जान पाये। इस बेचारे का भाग्य कैसा जिसने ब्रिटिश सरकार की क्रूरता-कठोरता, निर्दयता देखा है किन्तु बाद में स्वदेशी सरकार का अन्याय अत्याचार, गरीबी-बेकारी, बदहाली भी देख रहा है। इसकी मर्मान्तिक पीड़ा को कौन समझ सकता है। मैं इस शाल के ओढ़ने का हक़दार नही हूँ। जिस बुढ़िया को मैंने लगभग चाह साल पूर्व ठण्ड से कम्पित स्थिति मे ओढ़ाया था। वह शाल शायद अब तक फट चुकी होगी। कृपया उसे तलाश कर ठण्ड से सिकुड़े शरीर पर ओढ़ाने का कष्ट करे। मेरे लिए आपका दिया नारियल ही अमूल्य निधि है। जब मुझे ज्ञात हुआ कि मुझे एक लाख की सम्मान निधि दी जा रही है तो मैं विनम्रता पूर्वक उसे भी अस्वीकार करता हूँ। इस निधि का उपयोग उनके लिए किया जाय जो स्वतंत्र भारत में आज भी भूख से तड़प रहे है। पहले उनकी भूख मिटायी जाय। कौन मसीहा आयेगा उनकी भूख मिटाने। मै तो शायद नहीं रहूँगा किन्तु यह नीम का पेड़ निरन्तर आँसू बहाता रहेगा। नीम के आँसू पोंछने वाला कौन आयेगा। आप... आप.... आप... या कोई नही कहते-कहते निर्लिप्त जी की आँखों में आँसू छलक आए। वे एक हिचकी भर कर वहाँ से एकदम चल दिए। कहाँ गए किस दिशा में उनके कदम बढ़े किसी ने नहीं जाना।

इस व्यवधान के बाद व्यवस्थापक ने स्थिति को सामान्य बनाते हुए माइक पर उद्घोषणा की-इस विषम और असामान्य स्थिति के लिए मुझे खेद है। निर्लिप्त जी सचमुच में निर्लिप्त व्यक्ति हैं। उन्हें समझना सरल नहीं है। लोग तो सम्मान-सत्कार के भूखे भेड़िए हैं। ये तो परम पुरुष परम हंस हैं।

जब मुख्य मंत्री श्री कृष्णदास के अभिभाषण का अवसर आया तो उन्हे औपचारिकता का निर्वाह करना ही था। बस इतना भर कहा - जिस नीम के वृक्ष के तले यह आयोजन हो रहा है उस नीम की व्यथा को सच्चे दिल दिमाग से हमे आत्मसात करना है। मात्र यह एक वृक्ष या एक साक्षी भर नहीं है। हमारे पास तो वह दृष्टि होनी चाहिए जो अभी थोड़ी देर पहले निर्लिप्त जी ने दर्शायी थी। कवि ही तो सम्पूर्ण सृष्टि की व्यथा का वर्णन कर सकता है। वे तो महापुरुष

महाकवि हैं जिनके हृदय में पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों के लिए गहन वेदना है। ईश्वर हम सबमें भी वही वेदना उड़ेल सके तो मानवता धन्य हो जायेगी। मैं बड़े भारी मन से यहाँ से जा रहा हूँ। ऐसा समारोह भुला पाना असम्भव है। कहते-कहते मुख्यमंत्री का गला भर आया था। आँखें छलछला आयी थीं। बस आँसू निकलना शेष था। 'नीम के आँसू' के सम्मुख उनका आँसू तुच्छ था। इसलिए वह नहीं निकला तो नहीं निकला।

---